UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182763
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H801 P233 Accession No. H 2158

Author

Title सूर निर्णय

This book should be returned on or before the date last marked below.

द्वितीय संस्करण
मार्गशीर्ष शु० ११ सं० २००८ वि०

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है।

मूल्य ५)

मुद्रक, प्रकाशक :
प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा।

ब्रजसाहित्य माला

संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

ब्रजभाषा-काव्य के प्रेमियों
तथा
उच्च हिंदी-कक्षाओं के विद्यार्थियों
के लाभार्थ—
ब्रज-साहित्य-माला की पुस्तकें
[लेखक—प्रभुदयाल मीतल]

★

१. अष्टछाप-परिचय [परिवर्द्धित संस्करण] ५)
२. ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद
[परिवर्द्धित संस्करण] ६)
३. सूर-निर्णय [द्वितीय संस्करण] - ५)
४. ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौन्दर्य ४)
५. सूरदास की वार्ता - - १॥)
६. सूर-विनय-पदावली - - १॥)

★

प्राप्तव्य स्थान :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

परिचय

हिंदी प्रेमी पाठकों को सुयोग्य लेखक द्वय का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य से संबंध रखने वाले आप लोगों के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जो आप लोगों की विद्वत्ता के परिचायक हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में लेखकों ने महाकवि सूरदास से संबंध रखने वाली समस्त प्रमुख समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पाँच परिच्छेदों में क्रम से सामग्री, चरित्र, ग्रंथ, सिद्धांत तथा काव्य का विवेचन किया गया है। ग्रंथ में अनेक स्थलों पर कुछ नवीन सामग्री का उल्लेख दिया गया है। इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा इसकी पूर्ण परीक्षा होनी चाहिए। स्वतंत्रता पूर्वक उद्धरण देने से पुस्तक विशेष रोचक और उपयोगी हो गयी है; यद्यपि साथ ही आलोचनात्मक अंश में कमी करनी पड़ी है।

सूरदास तथा वल्लभ संप्रदाय का अध्ययन हिंदी विद्वानों के द्वारा देर में प्रारंभ हुआ, किंतु यह हर्ष का विषय है कि इस कमी की पूर्त्ति अब शीघ्रता से हो रही है। इस आलोचनात्मक अध्ययन की माला में 'सूर-निर्णय' इस समय अंतिम कड़ी है। आशा है कि यह महत्वपूर्ण ग्रंथ सूर के अध्ययन को अग्रसर करने में सहायक होगा।

(डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट्०)
अध्यक्ष–हिन्दी विभाग,
विश्वविद्यालय, प्रयाग

धीरेन्द्र वर्मा
१४ अगस्त १९४९

द्वितीय संस्करण के संबंध में

हर्ष की बात है कि "सूर-निर्णय" के प्रथम संस्करण का हिंदी जगत् में यथेष्ट आदर हुआ। हिंदी के सर्वमान्य विद्वान और उच्च कोटि के सामयिक पत्रों ने लेखकों के परिश्रम की सराहना कर इस ग्रंथ का गौरव बढ़ाया तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन और विभिन्न विश्व विद्यालयों ने हिंदी की सर्वोच्च परीक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तक निश्चित कर इस ग्रंथ की उपयोगिता स्वीकार की। लेखक इन सब महानुभावों के अत्यंत कृतज्ञ हैं।

सूर-साहित्य के विद्यार्थियों में इस ग्रंथ की इतनी माँग रही कि इसका प्रथम संस्करण शीघ्र समाप्त हो गया और अब यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया है। इस ग्रंथ में सूर संबंधी कुछ नवीन सामग्री दी गयी है और इसके आधार पर कुछ विशिष्ट निर्णय किये गये हैं। हिंदी जगत् में हमारी सामग्री और मान्यताओं की काफी चर्चा हुई, किंतु हमको कुछ ऐसे सुझाव प्राप्त नहीं हुए, जिनके आधार पर हम अपने मत में संशोधन करने की आवश्यकता समझते। इस बीच में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सूरसागर के दोनों खंड प्रकाशित हो गये और कई विद्वानों की सूर संबंधी कुछ कृतियाँ भी देखने में आईं; किंतु कोई ऐसी सामग्री हाथ नहीं लगी, जो हमारी मान्यताओं के विरुद्ध हो। ऐसी स्थिति में यह संस्करण जहाँ-तहाँ कुछ साधारण से परिवर्तन के बाद ही प्रकाशित किया जा रहा है। अब की बार सूरदास का जो रंगीन चित्र दिया गया है, उसका ब्लाक दिल्ली राष्ट्रीय संग्रहालय के प्रामाणिक एवं प्राचीन चित्र के आधार पर बनाया गया है, जिसके लिए मैं आदरणीय डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल का अनुगृहीत हूँ।

अग्रवाल भवन,
मार्गशीर्ष शु० ११ सं २००८

—प्रभुदयाल मीतल

प्राक्कथन

हिंदी साहित्यिक समालोचना के आरंभिक काल से अब तक हिंदी कवियों में सूरदास का सर्वोपरि महत्व माना गया है, किंतु उनके काव्य का वास्तविक अध्ययन अब से कुछ समय पूर्व ही आरंभ हुआ है। किसी कवि के अध्ययन के लिए उसकी कृतियों के सुसंपादित संस्करण की सबसे पहले आवश्यकता होती है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि सूरदास के जीवन-काल में ही उनकी रचनाओं के हस्त लिखित संग्रह होने लगे थे, जो लिपि-प्रतिलिपि के क्रम से बाद में भी बराबर होते रहे। इस समय जो संग्रह उपलब्ध हैं, वे सूरदास के कुछ समय बाद से लेकर अब तक के भिन्न-भिन्न संवतों में लिपिबद्ध किये गये हैं। वे लिपिकर्ताओं की रुचि और उनके ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं; किंतु उनमें कोई संग्रह ऐसा नहीं है, जिसे सूरदास की समस्त रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संकलन कहा जा सके!

यह तो हुई हस्त लिखित प्रतियों की बात; अब सूरदास की मुद्रित रचनाओं पर विचार कीजिये। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी की बहुमुखी प्रवृत्तियों में सूरदास की रचनाओं को भी स्थान मिला था, किंतु उनके असामयिक निधन के कारण इनके संबंध में कोई विशेष कार्य नहीं हो सका। भारतेन्दुजी के कार्य को उनके आत्मीय श्री राधाकृष्ण दास ने आगे बढ़ाया। उन्होंने सूरसागर का संपादन किया और इसके आरंभ में सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी व्यापक प्रकाश डाला। सूरसागर का यह संस्करण बंबई से प्रकाशित हुआ है। उस समय की उपलब्ध सामग्री को देखते हुए राधाकृष्ण दास जी का कार्य निस्संदेह बड़ा महत्वपूर्ण था, किंतु आजकल के अनुसंधान प्रिय पाठकों को इससे संतोष नहीं होता है। फिर भी सूरसागर के अन्य मुद्रित संस्करण के अभाव में इसी का अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि सूरसागर का सुसंपादित अन्य संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और बंबई वाला उक्त संस्करण भी आजकल दुष्प्राप्य हो रहा है!

ब्रजभाषा साहित्य के धुरंधर विद्वान श्री जगन्नाथदास "रत्नाकर" ने भी सूरसागर के एक सर्वांगपूर्ण संस्करण का संपादन-कार्य आरंभ किया था, जो उनके आकस्मिक देहावसान के कारण पूर्ण न हो सका। काशी की

नागरी प्रचारिणी सभा ने रत्नाकर जी के संपादित ग्रंथ का कुछ भाग प्रकाशित किया है। यद्यपि रत्नाकर जी की संपादन-शैली से कुछ लोगों को पूर्णतया संतोष नहीं है, तथापि सभा द्वारा यदि यह ग्रंथ भी पूरा प्रकाशित कर दिया जाता, तो एक बहुत बड़ा कार्य हो जाता और उससे सूरदास के पाठकों का भी भारी उपकार होता। सूरसागर के अभाव में सूरसागरोक्त पदों के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए हैं; किंतु जब तक सूरसागर और सूरदास की अन्य रचनाओं के प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं होते, तब तक यह कार्य अधूरा ही रहेगा।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हुआ कि हस्त लिखित अथवा मुद्रित रूप में सूरदास की समस्त रचनाओं का कोई सर्वांगपूर्ण संकलन इस समय उपलब्ध नहीं है। इस अभाव के कारण सूर संबंधी अध्ययन के कार्य में सदैव बाधा रही है, और जब तक इस की पूर्ति नहीं होती, तब तक आगे भी रहेगी ही। किंतु सूरदास का जितना साहित्य अब तक प्रकाश में आया है, उससे ही उनके काव्योत्कर्ष के मूल्यांकन करने में कोई बाधा नहीं आयी है। यही कारण है कि सूर-काव्य की आलोचना संबंधी साहित्य की हमारे यहाँ कमी नहीं है।

सूर-काव्य के रसिकों और हिंदी की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों में सूर-काव्यालोचना की सदैव माँग रही है, जिसके कारण हिंदी के सर्वोच्च श्रेणी के विद्वान साहित्यकार भी सूरदास की ओर आकर्षित हुए हैं। आदरणीय मिश्रबंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ला० भगवानदीन, डा० जनार्दन मिश्र, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रो० मुंशीराम शर्मा, तथा दूसरे धुरंधर लेखकों ने सूरदास के काव्य की समालोचना की है, जिसके कारण इस प्रकार का साहित्य हमारे यहाँ प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हो गया है।

जैसे-जैसे सूरदास के काव्य की आलोचना होती जाती है, वैसे-वैसे ही उनका महत्व बढ़ता जाता है। सूर-काव्य के विविध पहलुओं पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने से हमारे विद्वान आलोचकों को ज्ञात हुआ कि कवि के रूप में सूरदास निस्संदेह महान् हैं। वे हिंदी ही नहीं, वरन् संसार की समस्त भाषाओं के सर्वोत्तम कवियों में भी आदरपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। किंतु सूरदास केवल कवि ही तो नहीं हैं। वे परम भक्त, सुप्रसिद्ध गायक, धुरंधर सांप्रदायिक विद्वान और नाना प्रकार की विद्याओं एवं कलाओं के अपूर्व ज्ञाता भी हैं। उनके विविध रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन किये बिना उनकी वास्तविक समालोचना नहीं की जा सकती।

जब से विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और छात्रों का ध्यान सूरदास की ओर गया है, तब से उनके वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता का और भी अधिक अनुभव होने लगा है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष विद्वद्वर डा० धीरेन्द्र वर्मा का प्रयत्न सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के कार्य में सब से अधिक प्रशंसनीय है। उन्होंने इस ओर स्वयं प्रवृत्त होकर और अपने छात्रों को प्रेरित कर सूर के वैज्ञानिक अध्ययन को बहुत कुछ आगे बढ़ाया है। उनके प्रयत्न से आज विश्वविद्यालय के क्षेत्र में विविध दृष्टि-बिंदुओं से सूरदास का व्यापक अध्ययन हो रहा है। इस प्रयत्न का शुभ परिणाम डा० दीनदयाल गुप्त और डा० ब्रजेश्वर वर्मा की थीसिसों के रूप में हम लोगों के सन्मुख आ भी चुका है। विश्वविद्यालय के क्षेत्र में साहित्यिक शोध का कार्य करने वालों को उपयुक्त वातावरण, संचित सामग्री और उच्च श्रेणी के विद्वानों के सामूहिक सहयोग के रूप में जो सहज सुविधाएँ प्राप्त हैं, उनके कारण इस प्रकार का बहुमूल्य कार्य होना स्वाभाविक है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि साहित्य की शोध के लिए विश्वविद्यालल का क्षेत्र ही एक मात्र स्थान है और वहाँ पर किया हुआ कार्य ही सदैव निर्भ्रांत, त्रुटिरहित एवं अपरिवर्तनीय होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि एक ही स्रोत से उद्भूत डा० दीनदयाल गुप्त और डा० ब्रजेश्वर वर्मा की थीसिसों की विचार-धाराएँ विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती हुई दिखलायी दे रही हैं!

विश्वविद्यालयों से बाहर के क्षेत्र में भी अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है और वे अब भी कर रहे हैं। इस क्षेत्र में साहित्यिक शोध का कार्य करने वाले व्यक्तियों में हमारा भी एक छोटा सा स्थान है। सूर संबंधी प्रकाशित साहित्य के अनुशीलन और अप्रकाशित विशाल साहित्य के शोधपूर्ण अध्ययन के उपरांत हमारा विनम्र मत है कि अब तक का कार्य निश्चित रूप से महत्वपर्ण होते हुए भी सर्वांगपूर्ण और त्रुटिरहित नहीं है। जहाँ तक सूरदास के काव्य की आलोचना का संबंध है, वहाँ तक यह कार्य बहुत कुछ पूर्ण है और इसमें परिवर्तन की बहुत कम गुंजायश है; किंतु सूरदास के जीवन-वृत्तांत, उनकी प्रामाणिक रचनाएँ और उनके सांप्रदायिक सिद्धांत संबंधी अब तक का कार्य अपूर्ण एवं कुछ अंशों में त्रुटिपूर्ण भी है, अतः इसमें परिवर्द्धन एवं परिवर्तन की शीघ्र आवश्यकता है। यह अपूर्णता एवं त्रुटि उन ग्रंथों में अधिक है, जिनमें सूर काव्य की साहित्यिक समालोचना करते हुए सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी विचार किया गया है। सूरदास का विस्तृत अध्ययन उपस्थित करने वाले शोधपूर्ण ग्रंथों में भी निर्णयात्मक समालोचना

निर्णयात्मक समालोचना का अभाव है†, और उनमें जो निर्णय किये भी गये हैं, वे कहीं-कहीं पर त्रुटिपूर्ण हैं । हमने प्रस्तुत पुस्तक में उक्त निर्णयों की अपूर्णता एवं त्रुटि के संबंध में स्थान-स्थान पर अपना मत उपस्थित किया है। इस प्रकार का मत प्रकट करने से उन आदरणीय विद्वानों की अवज्ञा करने अथवा उनके महत्व को कम करने का हमारा अभिप्राय कदापि नहीं है, बल्कि सत्य-शोधक के आवश्यक कर्त्तव्य वश हमको ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इसके लिए हम उन आदरणीय विद्वानों से विनम्रता पूर्वक क्षमा-याचना करते हैं।

हमारे मतानुसार सूरदास संबंधी शोध में अपूर्णता और त्रुटि रह जाने का प्रधान कारण यह है कि यह शोध उपयुक्त स्थानों में संचित उपयुक्त सामग्री की नहीं की गयी ! यदि किसी शोधक ने उक्त सामग्री के कुछ भाग की कभी शोध भी की, तो उनका मत उसके प्रति सद्भावना का नहीं रहा, बल्कि पहले से बनी हुई भ्रांत धारणा के कारण उदासीन, और कभी-कभी विरोधपूर्ण भी रहा ! निम्न लिखित पंक्तियों में हम अपना अभिप्राय और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करेंगे।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि पुष्टि संप्रदाय के कवि होने के कारण सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री उक्त संप्रदाय के वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य में सुरक्षित है। इस सामग्री का केवल अल्प भाग ही अभी तक प्रकाश में आ सका है, अतः हिंदी साहित्य के अनेक गण्यमान्य विद्वानों को भी इसका यथेष्ट परिचय नहीं है । जिस सामग्री से वे परिचित हैं, उसका भी उन्होंने गंभीरता पूर्वक अध्ययन नहीं किया है और पूर्व धारणा के कारण उन्होंने उसके विरुद्ध मत प्रकट किया है। दुर्भाग्य से हिंदी साहित्य के कतिपय विद्वानों की कुछ समय से यह धारणा बन गयी है कि पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय है, अतः वे प्रमाण रूप में इसे स्वीकार नहीं करते हैं, जिसके कारण पुष्टि संप्रदायी कवियों के संबंध में उनके निर्णय अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण रह जाते हैं। हिंदी साहित्य के शोधकों में डा० दीनदयाल गुप्त ने उक्त साहित्य का अपेक्षाकृत अधिक अध्ययन किया है और उनका दृष्टिकोण भी सद्भावनापूर्ण है, अतः वे अन्य विद्वानों की अपेक्षा पुष्टि संप्रदायी कवियों का विस्तृत एवं विश्वसनीय विवरण उपस्थित कर सके हैं।

---

† देखिये डा० ब्रजेश्वर वर्मा कृत "सूरदास" की प्रस्तावना पृष्ठ ३

हम पिछले कई वर्षों से पुष्टि संप्रदाय के अप्रकाशित वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य की शोध कर रहे हैं। हमने पुष्टि संप्रदायी पुस्तकालयों एवं प्राचीन 'हवेलियों' में संगृहीत प्रचुर सामग्री का विस्तृत अध्ययन किया है। हमने पुष्टि संप्रदायी मंदिरों की सेवा-विधि और कीर्तन-प्रणाली का व्यक्तिगत रूप से अनुभव और मनन किया है तथा पुष्टि संप्रदायी विद्वानों के सत्संग का लाभ उठाया है। इस प्रकार अपनी शोध के फल स्वरूप समय-समय पर हमने जो सूचनाएँ, निबंध एवं ग्रंथ प्रकाशित किये हैं, उनका हिंदी के गण्यमान्य विद्वानों ने भी सन्मान किया है। कई वर्षों के परिश्रम के उपरांत अब हमारी शोध इस स्थिति पर पहुँच गयी है कि हम निर्णयात्मक रूप से कुछ कह सकें। हम अनुभव करते हैं कि हमारी पूर्व कृतियाँ भी सर्वथा त्रुटि रहित नहीं हैं, क्यों कि प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं-कहीं पर स्वयं हमने अपने पूर्व मत के विरुद्ध भी कथन किया है। अपनी पूर्व कृतियों के नवीन संस्करणों में हम उनका परिष्कार कर रहे हैं।

अपने शोध कार्य में हमने सूरदास संबंधी सामग्री का विशेष रूप से अवलोकन किया है। इस सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से अनुशीलन एवं परीक्षण करने के उपरांत हमने सूरदास के जीवन, ग्रंथ और सिद्धांतों पर नवीन पद्धति से निर्णयात्मक रूप में कुछ कहने का साहस किया है। हमारे निर्णय विश्वसनीय अंतःसाक्ष्य एवं माननीय वहिःसाक्ष्य पर आधारित हैं, अतः वे ठोस और प्रामाणिक कहे जा सकते हैं। संभव है अन्य विश्वस्त नवीन सामग्री के प्राप्त होने पर हमको इनमें भी कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता ज्ञात हो, किंतु अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम नम्रतापूर्वक कह सकते हैं कि हमारे निर्णय अपरिवर्तनीय हैं। ये निर्णय पाँच वर्गों में विभाजित हैं, जिनको हमने प्रस्तुत पुस्तक के १. सामग्री-निर्णय, २. चरित्र-निर्णय, ३. ग्रंथ-निर्णय, ४. सिद्धांत-निर्णय, ५. काव्य-निर्णय नामक पाँच परिच्छेदों में समाविष्ट किया है।

प्रथम परिच्छेद सामग्री-निर्णय में हमने प्रकाशित एवं अप्रकाशित उस सामग्री की समीक्षा की है, जिस पर हमारा सूरदास विषयक निर्णय आधारित है। यह सामग्री अंतःसाक्ष्य, वहिःसाक्ष्य और आधुनिक सामग्री के रूप में तीन श्रेणियों में विभाजित की गयी है। अंतःसाक्ष्य में सूरदास के आत्म विषयक कथनों पर विचार किया गया है। यद्यपि इस प्रकार के कथनों की संख्या अधिक नहीं है, तथापि विशाल-काय सूर-काव्य में खोजने पर ऐसे कतिपय कथन भी मिल जाते हैं, जिनसे सूरदास के जीवन-वृत्तांत का निर्णय करने में

महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। हमने ये आत्म कथन सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर से संगृहीत किये हैं। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान सूर-सारावली और साहित्य-लहरी को सूरदास की रचनाएँ मानने में संदेह करते हैं। इन दोनों ग्रंथों के गंभीर अध्ययन के अनंतर हमारा मत है कि सूर-सारावली और साहित्य-लहरी (वंश-परिचय वाले ११८ वें पद के अतिरिक्त) सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ हैं। यद्यपि इन दोनों ग्रंथों में से भी हमने कुछ आत्म कथनों का संकलन किया है, फिर भी अंतःसाक्ष्य के संबंध में हमारा मुख्य आधार सूरसागर है, जिसके सूरदास कृत होने में किसी को भी संदेह नहीं है। वहिःसाक्ष्य में पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य मुख्य है। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान इस साहित्य को अप्रामाणिक मानते हैं, अतः हमने श्रावण शु० ७ शुक्रवार सं० १७४६ के प्राचीन उद्धरण से वार्ता साहित्य के प्रारंभ और विकास का इतिहास बतलाया है। यह एक नवीन खोज है, जिससे वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता पर निर्णयात्मक रूप से प्रकाश पड़ता है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य में चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता एवं भावप्रकाश तथा सांप्रदायिक साहित्य में बल्लभदिग्विजय, वार्तामणिमाला, अष्टसखामृत, संप्रदायकल्पद्रुम, भावसंग्रह आदि प्राचीन ग्रंथों के सूरदास संबंधी उल्लेख वहिः साक्ष्य के रूप में लिये गये हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर हरिराय जी कृत भावप्रकाश प्राचीन एवं विश्वस्त वहिःसाक्ष्य है। यह ग्रंथ अप्रकाशित होने के कारण दुष्प्राप्य था। अग्रवाल प्रेस, मथुरा ने इसे प्रथम बार अभी प्रकाशित किया है। इसकी भूमिका से इसकी प्रामाणिकता सिद्ध है। अन्य प्राचीन वहिःसाक्ष्यों में भक्तमाल और इसकी टीकाओं के उल्लेखों पर विचार किया गया है। वहिःसाक्ष्य में हमने वही उल्लेख स्वीकार किये हैं, जिनकी पुष्टि अंतःसाक्ष्य से भी हो गयी है। सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री तीन श्रेणियों में इस प्रकार विभाजित की गयी है—१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री, २. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री, ३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री। आधुनिक सामग्री में सूर-काव्य की आलोचना महत्वपूर्ण है, किंतु सूरदास का जीवन-वृत्तांत विषयक विवरण अपर्याप्त एवं त्रुटिपूर्ण है। केवल 'अष्टसखामृत' के अतिरिक्त इस परिच्छेद में वर्णित समस्त सामग्री का हमने भली भाँति अध्ययन एवं परीक्षण किया है। इसके उपरांत हमने यह निर्णय किया है कि सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कौन सी सामग्री उपयोगी है और कौन सी अनुपयोगी। हमने अपने निर्णय की पुष्टि में युक्तियुक्त कारण एवं प्रमाण भी देने की चेष्टा की है।

द्वितीय परिच्छेद चरित्र- निर्णय में अपनी शोध के आधार पर हमने सूरदास का प्रामाणिक जीवन-वृतांत उपस्थित किया है। हिंदी साहित्य संबंधी ग्रंथों में अब तक सूरदास की जीवन-घटनाओं एवं उनके काल-निर्णय के विषय में बहुत कम लिखा गया है। जो कुछ लिखा भी गया है, वह विवाद-ग्रस्त एवं त्रुटिपूर्ण है। सूरदास जैसे महाकवि के जीवन-वृतांत की अपूर्णता एवं त्रुटि हिंदी साहित्य के गौरव को क्षति पहुँचाने वाली बात है। विभिन्न क्षेत्रों में सूरदास संबंधी वर्षों के अध्ययन एवं अन्वेषण के अनंतर अब वह समय आ गया है कि उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित किया जा सके। हमको हर्ष है कि इस परिच्छेद द्वारा हमने इस दिशा में ठोस कदम बढ़ाने की चेष्टा की है। हमने सूरदास की जन्म-तिथि, जाति, उनके जन्मांधत्व, शरण-काल, उपस्थिति-काल और देहावसान-काल पर प्रामाणिक रूप से विचार किया है और तत्संबंधी अपने निर्णय उपस्थित किये हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि ये सभी विषय अभी तक विवादास्पद थे। जाति, जन्मांधत्व और अंतिम काल के निर्णय हमने अंतःसाक्ष्यों के आधार पर किये हैं, अतः इनमें परिवर्तन हो सकने की संभावना कम है। जन्म-स्थान के संबंध में हमारे पास "अष्टसखामृत" और "भावप्रकाश" के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं है। इस विषय का अंतःसाक्ष्य भी अप्राप्य है। सूरदास के अंधत्व के विषय में हमने विस्तार पूर्वक लिखा है। सूरदास के काव्य की पूर्णता और उनके द्वारा किये गये दृश्य जगत् के यथार्थ वर्णनों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य के प्रायः सभी आधुनिक विद्वान उनकी जन्मांधता में विश्वास नहीं करते हैं, किंतु हमने विश्वस्त अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार पर सूरदास को जन्मांध सिद्ध किया है। उस परिच्छेद में हमने जो कुछ लिखा है, आशा है हिंदी साहित्य के विद्वान इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे। यदि उनको हमारा कथन युक्तियुक्त एवं प्रामाणिक ज्ञात हो, तो वे अपने सूर संबंधी ग्रंथों में आवश्यक परिवर्तन एवं संशोधन करेंगे।

तृतीय परिच्छेद ग्रंथ-निर्णय में सूरदास की रचनाओं के संबंध में निर्णय किया गया है। सूरदास के नाम से प्रसिद्ध २५ ग्रंथों में से हमने उनके ७ ग्रंथ स्वतंत्र एवं प्रामाणिक माने हैं, जिनमें सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर मुख्य हैं। अब तक अधिकांश लेखकों ने सूर-सारावली को सूरसागर का सूचीपत्र बतलाया है। अब कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना मानने में भी संदेह करते हैं, किंतु हमारे मतानुसार यह श्री बल्लभाचार्य जी कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रची हुई सूरदास की स्वतंत्र एवं प्रामाणिक

सैद्धांतिक रचना है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरसागर और सारावली में २७ अंतर स्थापित कर सारावली को अप्रामाणिक बतलाने की चेष्टा की है, किंतु हमने उनके तर्कों पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण" से ही इसे सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध किया है। आजकल 'साहित्य-लहरी' के सूरदास कृत होने में भी संदेह किया जाता है, किंतु हमारे मतानुसार संख्या ११८ के वंश-परिचय वाले पद के अतिरिक्त यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है। हमारे अनुसंधान से ज्ञात होता है कि सूरदास ने इसकी रचना अष्टछाप के अन्य प्रमुख कवि नंददास के लिए सं० १६०७ के लगभग की थी, और इसकी पूर्ति उन्होंने सं० १६१७ में की। इन दोनों ग्रंथों के संबंध में हमारा विवेचन हिंदी साहित्य शोध के क्षेत्र में कुछ नवीनता उत्पन्न करेगा। सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचना है और इसके सूरदास कृत होने में संदेह भी नहीं किया जाता है, किंतु इसके स्वरूप के संबंध में अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ है। सूरसागर के सुसंपादित संस्करण का अभाव सभी अनुभव करते हैं, किंतु इसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय किये बिना इसका प्रामाणिक संपादन हो भी किस प्रकार सकता है! हमने इस संबंध में अपना निर्णय और सुझाव देकर सूरसागर के संपादन कार्य की एक रूप-रेखा प्रस्तुत की है। हमारे मतानुसार इसका एक रूप 'कथात्मक' है, जिसकी रचना सूरदास ने बल्लभाचार्य जी के उपदेशानुसार श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी। इसका दूसरा रूप 'लीलात्मक' है, जो दैनिक कीर्तन के रूप में श्रीनाथ जी के सन्मुख गाया गया था। पहले रूप में वर्णनात्मक और दूसरे रूप में सेवात्मक पदों की अधिकता थी। इन दोनों प्रकार से रचे हुए पद इतने अधिक थे कि उन सबका संग्रह करना सब के लिए कठिन था, अतः संग्रहकर्ताओं ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनका संकलन कर लिया और बाद में लिपिकर्ताओं की रुचि के अनुसार भी उनमें पदों का न्यूनाधिक्य होता रहा। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियों में क्रम-भेद होने का यही कारण ज्ञात होता है। सूरसागर का संपादन होने के पूर्व उनके अधिक से अधिक पदों का संकलन होना चाहिए। फिर भागवत के क्रमानुसार उनका संपादन होना चाहिए, तब कहीं हम सूरसागर के संपादन करने की स्थिति में होंगे। इस पुस्तक में उद्धृत सूरदास के पदों में से २३५ पूरे पदों की सूची हमने अनुक्रमणिका में देदी है। इस सूची के अतिरिक्त स्थानाभाव से लगभग इतने ही पदों की कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत की गयी हैं। इस प्रकार इस पुस्तक में लगभग ५०० पदों का उपयोग किया गया है। इन पदों में से बहुत से पद

सूरसागर की मुद्रित प्रतियों में नहीं मिलेंगे। इनको हमने कीर्तन संग्रहों में से संकलित किया है। सूरदास के अप्रचलित पदों का संग्रह करते समय इनका भी कुछ उपयोग हो सकेगा। सूरसागर का स्वरूप निश्चित कर हमने उन रचनाओं पर भी विचार किया है, जो सूरदास की स्वतंत्र कृतियाँ मानी जाती हैं, किंतु वास्तव में वे सूरसागर के ही अंतर्गत हैं। सूरसागर का संपादन करते समय इन रचनाओं को उसमें यथास्थान सम्मिलित करना चाहिये। सूरदास की प्रमुख ३ रचनाओं के अतिरिक्त उनकी ४ छोटी किंतु स्वतंत्र रचनाओं पर भी संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। सूरदास के पदों में इसी नाम के कुछ अन्य कवियों के पद भी मिल गये हैं, जिनको पृथक् करने की अत्यंत आवश्यकता है। हमने सूरदास के प्रामाणिक पदों की परीक्षा के संबंध में भी कुछ संकेत किया है, जो प्रक्षिप्त पदों के पहचानने में सहायक हो सकता है। इस परिच्छेद के अंत में हमने सूरदास कृत लाख—सवालाख पद-रचना की किंवदंती पर भी विचार किया है। सूरदास के रचना-काल और रचना-क्रम की गणना द्वारा हमने निर्णय किया है कि यह किंवदंती सत्य हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद सिद्धांत-निर्णय में हिंदी पाठकों के लिए कुछ नवीन सामग्री प्रस्तुत की गयी है। पुष्टि संप्रदायी कवि होने के कारण सूर-काव्य में बल्लभाचार्य जी के सिद्धांत, उनकी भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली के तत्वों का समावेश होना स्वाभाविक है; किंतु उनका स्पष्ट दिग्दर्शन कराने की अभी तक बहुत कम चेष्टा हुई है। हमने शुद्धाद्वैत सिद्धांत के कतिपय प्रमुख तत्वों का विवेचन करते हुए यह बतलाया है कि इनका सूरदास की रचनाओं में किस प्रकार उल्लेख हुआ है। इसके अनंतर पुष्टिमार्गीय भक्ति और सेवा-विधि का विवेचन किया गया है। बल्लभाचार्य जी की भक्ति-भावना को न समझने के कारण सूरदास की शृंगार-भक्ति पूर्ण रचनाओं पर कभी-कभी अन्य संप्रदायों का प्रभाव बतलाया जाता है, किंतु मूल ग्रंथों के उद्धरणों से हमने सिद्ध किया है कि बल्लभाचार्य जी को माधुर्य भक्ति भी ग्राह्य थी, जिसका प्रभाव सूरदास की शृंगारिक रचनाओं पर पड़ा है। हमने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर पुष्टि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली पर प्रकाश डाला है और सूरदास के तत्संबंधी प्रचलित पदों के अतिरिक्त बहुत से बहुमूल्य अप्रचलित पदों को भी एकत्रित किया है। इस प्रकार हमारा विश्वास है कि यह परिच्छेद पुष्टि संप्रदाय का ज्ञान प्राप्त करने वाले पाठकों को उपयोगी और रोचक ज्ञात होगा।

पंचम परिच्छेद काव्य-निर्णय में सूरदास के काव्य की आलोचना की गयी है। इस संबंध में अब तक जितना और जैसा लिखा जा चुका है, उससे अधिक और उत्तम लिखने की हममें योग्यता भी नहीं है। हमारा विचार पहले इस परिच्छेद को लिखने का नहीं था, किंतु हमारे कुछ मित्रों का सुझाव था कि विषय की पूर्णता के लिए इस परिच्छेद को लिखना भी आवश्यक है। जब लिखना आरंभ किया, तब इस विषय की सामग्री इतनी बढ़ गयी कि उसका समावेश इस पुस्तक में संभव ज्ञात नहीं हुआ। इसलिए इस परिच्छेद में सूर-काव्य संबंधी कुछ आवश्यक विषयों पर ही विचार किया गया है। संभव है पाठकों को इसमें भी कुछ काम की बातें मिल जावें। सूर-काव्य की विशेषताओं का विवेचन करते हुए हमने गो० तुलसीदास की कुछ रचनाओं पर सूरदास का प्रभाव बतलाया है। इस संबंध में हमने दोनों महाकवियों की रचनाओं के आवश्यक उद्धरण भी दिये हैं। इस परिच्छेद में हम सूर-संगीत पर भी विस्तार पूर्वक लिखना चाहते थे। इसके लिए हमने संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारों से परामर्श किया और सूरदास के अनेक पदों को राग-रागनियों के अनुसार क्रमबद्ध किया। हमको ज्ञात हुआ कि यह कार्य अत्यंत श्रमसाध्य एवं समयसाध्य है, जिसकी पूर्ति होने तक इस पुस्तक का प्रकाशन रोकना उचित नहीं है। वास्तव में यह एक स्वतंत्र कार्य है, जिसे संगीत शास्त्र का कोई अनुभवी विद्वान ही कर सकता है। हमने इस विषय का संकेत मात्र कर दिया है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी संक्षेप रूप से लिख कर हमने यह परिच्छेद समाप्त किया है।

पुस्तक के अंत में तीन अनुक्रमणिकाएँ दी गयी हैं। प्रथम अनुक्रमणिका में इस पुस्तक के पूरे पदों की अकारादि क्रम से सूची है। दूसरी नामानुक्रमणिका और तीसरी ग्रंथानुक्रमणिका में इस पुस्तक में उल्लिखित व्यक्तियों एवं ग्रंथों के नामों की अकारादि क्रम से सूचियाँ हैं। इसके अनंतर कुछ ऐसे पूरे पदों का संकलन है, जिनकी कुछ पंक्तियाँ पुस्तक में प्रसंगानुसार छापी गयी हैं।

अंत में इस पुस्तक की लेखन-कथा और लेखन-शैली के संबंध में भी कुछ कहना आवश्यक है। हम दोनों लेखकों में से एक गुजराती भाषा-भाषी और दूसरे हिंदी भाषा-भाषी हैं। एक का संबंध कांकरोली से और दूसरे का मथुरा से रहा है। हम दोनों ने विगत कई वर्षों से पृथक् क्षेत्रों में अष्टछाप के कवियों का अनुसंधान एवं अध्ययन किया है और तत्संबंधी अपनी रचनाएँ

प्रकाशित की हैं। साक्षात्कार का सुयोग मिलने के पूर्व ही हम उक्त रचनाओं के कारण एक दूसरे से परिचित हो गये और पत्र-व्यवहार द्वारा अपने विचारों का आदान-प्रदान करते रहे। अंत में हमने मथुरा में अपने सूर-संबंधी अध्ययन-कार्य का सामंजस्य कर पारस्परिक सहयोग से यह पुस्तक प्रस्तुत की है। अपनी शोध के निष्कर्षों की तरह हमने इस पुस्तक की लेखन-शैली में भी सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। ऐसा करने पर भी यदि कहीं पर लेखन-शैली की एक-रूपता और भाषा का समान प्रवाह ज्ञात न हो तो इसका कारण दो भिन्न भाषा-भाषी लेखकों की रचना समझ कर पाठक हमको क्षमा कर सकते हैं। यहाँ पर हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस ग्रंथ के निर्णय शुद्ध साहित्यिक शोध के आधार पर किये गये हैं। इनमें सांप्रदायिक आग्रह की गंध भी नहीं है। विद्वान आलोचकों से निवेदन है कि वे इसी दृष्टि से हमारे निर्णयों पर विचार करेंगे। प्रस्तुत पुस्तक के संपादन और मुद्रण के समय एक लेखक के बार-बार अनुपस्थित रहने और दूसरे के अस्वस्थ हो जाने के कारण इसके प्रकाशन में आशातीत विलंब हो गया है, और इसी कारण इसमें कुछ छापे की भूलें भी रह गयी हैं, जिनको विद्वान स्वयं सुधारने की कृपा करेंगे।

इस पुस्तक की रचना में जिन प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रंथों से सहायता ली गयी है, उनमें से प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची पुस्तक के आरंभ में दे दी गयी है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ ग्रंथों तथा लेखों का उपयोग किया गया है। हस्त लिखित सामग्री के लिए पुष्टि संप्रदायी प्राचीन पुस्तकालयों एवं मंदिरों से तथा कतिपय अप्रचलित पदों के लिए संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारों से बहुमूल्य सहायता मिली है। इन सब सज्जनों के हम अत्यंत अनुगृहीत हैं और उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम अपने आदरणीय डा० धीरेन्द्र वर्मा महोदय के भी अत्यंत आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का परिचय लिखने की कृपा की है।

अग्रवाल भवन, मथुरा — द्वारकादास परीख
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी सं० २००६ — प्रभुदयाल मीतल

किधौं सूर कौ सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर कौ पद सुन्यौ, तन मन धुनत सरीर ॥

—तानसेन

★

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केसवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास ॥

★

तत्व-तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी ।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी ॥

उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी ।
वचन प्रीति निरवाह अर्थ, अद्‌भुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि-लीला भासी ।
जनम, करम, गुन, रूप, सर्व रसना परकासी ॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवनानि करै ।
सूर-कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर-चालन करै ॥

—नाभाजी

कविता-करता तीनि हैं, तुलसी केसव सूर ।
कविता-खेती इन लुनी, सीला विनत मजूर ॥

★

उत्तम पद कवि गंग के, उपमा कौं बलबीर ।
केसव अर्थ-गँभीरता, सूर तीन गुन धीर ॥

★

महा मोह मद छाइ, अंधकार सब जग कियौ ।
हरि-जस सुभ फैलाइ, सूर सूर सम तम हरयौ ॥

★

विषय-सूची

★

प्रथम परिच्छेद

सामग्री-निर्णय

विषय				पृष्ठ संख्या
(१) अंतः साक्ष्य	...	...	...	२
१. सूर-सारावली	...	..	...	२
२. साहित्य-लहरी	..	..	...	३
३. सूरसागर एवं स्फुट पद	...	...	...	७
(२) बाह्य साक्ष्य	...	...	...	१६
१. वार्ता साहित्य का प्रारंभ और विकास		...	..	१६
२. चौरासी वैष्णवन की वार्ता	...		...	२०
३. निज वार्ता	...	...	...	२२
४. भाव प्रकाश	...	...	...	२३
५. बल्लभ दिग्विजय	...	...	...	२५
६. संस्कृत वार्ता मणिमाला	...	.	...	२५
७. भक्तमाल	...	...	...	२६
८. भक्तमाल की टीकाएँ एवं अन्य रचनाएँ		...	. .	२८
९. अष्टसखामृत	...	...	...	२९
१०. संप्रदाय कल्पद्रुम	...	...	...	३०
११. जमुनादास कृत धौल	...	...	...	३०
१२. भाव संग्रह	...	...	...	३२
१३. वैष्णवाह्निक पद	...	...	...	३२
१४. जन श्रुतियाँ	...	...	...	३२
(३) आधुनिक सामग्री	...	...	...	३२
१—सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री			...	३३
१. सूरसागर	...	...	...	३३
२. सूर-संकलन	...	...	...	३४
३. साहित्य-लहरी	...	...	...	३४

विषय	पृष्ठ संख्या
२–खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री	३७
१. मिश्रबंधु विनोद और हिंदी साहित्य का इतिहास	३७
२. हिंदी साहित्य का इतिहास	३७
३. हिंदी भाषा और साहित्य	३७
४. हिंदी साहित्य का इतिहास (डा० रसाल)	३८
५. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	३८
३–सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री	४१
१. हिंदी नवरत्न	४१
२. सूरदास	४१
३. सूर–साहित्य	४१
४. भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास	४१
५. सूर : एक अध्ययन	४१
६. सूर-साहित्य की भूमिका	४२
७. सूर : जीवनी और ग्रंथ	४३
८. सूर-सौरभ	४३
९. सूरदास (डा० ब्रजेश्वर वर्मा)	४४
१०. सूरदास : एक अध्ययन	४४
११. अष्टछाप-परिचय	४५
१२. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय	४५

★

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र–निर्णय

१. नाम	४७
२. जन्म-भूमि और निवास स्थान	४९
३. जन्म-तिथि	५१
४. वंश-परिचय	५४
५. जाति	५६
६. अंधत्व	६१
७. आरंभिक जीवन और गृह-त्याग	७७

विषय				पृष्ठ संख्या
८. शरणागति एवं शरणागति-काल	...	...	...	८१
९. ब्रजवास और कीर्तन-सेवा	...	...	...	८५
१०. श्रीनाथजी के प्रति आसक्ति	...	...	...	८७
११. "सूरसागर" नाम की प्रसिद्धि	...	...	...	८८
१२. अष्टछाप की स्थापना	...	...	...	८८
१३. अष्टछाप के कवियों का पारस्परिक संबंध		...	...	९०
१४. अकबर से भेंट	...	..	...	९१
१५. सूर-तुलसी मिलन	..	...	...	९३
१६. गुरु-निष्ठा	...	...	...	९५
१७. लोक-कल्याण की भावना	...	...	...	९६
१८. उपस्थिति-काल	...	...	...	९६
१९. देहावसान	...	...	...	१०२

*

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ-निर्णय

१. सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ	...	...	...	१०५
२. सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ	..	...	...	१०७
३. सूर-सारावली	...	..	...	१०७
४. साहित्य-लहरी	...	...	...	१४३
५. सूरसागर	...	...	...	१६०
६. सूरसागर के अंतर्गत रचनाएँ	...	..	...	१६६
७. सूर-साठी	...	...	...	१६९
८. सूर-पच्चीसी	...	...	...	१६९
९. सेवाफल	...	...	...	१६९
१०. सूरदास के पद	...	...	...	१६९
११. प्रामाणिकता की परीक्षा	...	...	...	१७०
१२. रचना परिमाण	...	...	...	१७०
१३. अष्टछाप कृत सेवा विषयक वर्षोत्सव के पद		...	...	१७४

*

चतुर्थ परिच्छेद

सिद्धांत-निर्णय

विषय	पृष्ठ संख्या
(१) सूरदास और शुद्धाद्वैत सिद्धांत	१८३
१–परब्रह्म	१८३
१. परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व	१८३
२. परब्रह्म अर्थात् कृष्ण	१८४
३. परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व	१८४
४. परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता	१८८
५. पुरुषोत्तम	१८६
६. पुरुषोत्तम की लीला	१८६
२–अक्षर ब्रह्म	१६४
३–जगत्	१६५
४–जीव	१६६
५–आत्म माया	२०१
२) सूरदास और पुष्टिमार्गीय भक्ति	२०३
१–सूरदास और माधुर्य-भक्ति	२०८
३) सूरदास और पुष्टिमार्गीय सेवा	२१५
१. गुरु का आश्रय	२१६
२. नित्य की सेवा-विधि	२१६
३. वर्षोत्सव विधि	२२७
४. अन्य अवतारों की जयंतियाँ	२४३
५. सेवा के विविध अंग	२४५
६. सेवा मार्ग का शरण-तत्व	२५२
७. सेवा मार्ग का आचार-तत्व	२५६
४) सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्व	२६६
१. पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप	२६६
२. अन्य अवतार और देवी-देवता...	२७०
३. सूरदास के राम विषयक पद	२७०
४. पुष्टि भक्ति का स्वरूप	२७१
५. बाल भाव में किशोर भाव	२७४
६. श्री बल्लभाचार्य जी के वचनों का अनुसरण ...	२७५

पंचम परिच्छेद

काव्य-निर्णय

विषय				पृष्ठ संख्या
(१) सूर-काव्य की भाषा	...	...	...	२७६
१. काव्य का कलेवर	...	...	...	२७६
२. सूरदास से पहले की व्रजभाषा	...	...	..	२७६
३. सूरदास की व्रजभाषा	...	...	...	२८०
४. सूरदास की भाषा विषयक विशेषताएँ	...	...		२८१
५. सूरदास की मिश्रित भाषा	...	...	...	२८१
(२) सूर-काव्य की सरसता	...	...	...	२८३
१. काव्य की आत्मा	..		...	२८३
२. सूरदास के काव्य में रस-परिपाक		..	...	२८३
३. शृंगार रस (संयोग शृंगार, विप्रलंभ शृंगार)			...	२८४
४. वियोग की दश दशाएँ	...	...	...	२८५
५. वात्सल्य (संयोग, वियोग)		...	...	२८७
६. हास्य रस	..	...	...	२८६
७. वीर रस	..	...	...	२६०
८. करुण रस	...	...	...	२६१
६. वीभत्स रस		...	...	२६१
१०. अद्भुत रस	...	...	...	२६२
११. भयानक रस	...	...	...	२६३
१२. रौद्र रस	...	...	...	२६३
१३. शांत रस	...	..	...	२६४
१४. सूर-काव्य का नायिकाभेद	...	...	...	२६५
(३) सूर-काव्य की कलात्मकता	..	..	...	३०१
१. भक्ति और कला का मिश्रण	...	...	...	३०१
२. काव्य कला और अलंकार	...	...	...	३०२
३. दृष्टकूट पदों की कलात्मकता	...		...	३०२
४. सूर-काव्य के अलंकार	...	...	. .	३०३
५. नख-शिख वर्णन	...	...	...	३१२
६. छंद विधान	..	...	...	३१२
७. कला पक्ष की अन्य बातें	...	...	...	३१२

विषय			पृष्ठ संख्या
(४) सूर-काव्य की कुछ विशेषताएँ	...	...	३१३
१. ब्रजभाषा के बाल्मीकि	...	...	३१३
२. परंपरा के निर्माता	...	...	३१३
३. सूर का गीति-काव्य	...	...	३१४
४. सूर और तुलसी	...	...	३१५
५. रूप-वर्णन	...	...	३२३
६. प्रकृति-निरीक्षण	...	...	३२५
७. चरित्र-चित्रण	...	...	३२७
८. कवि की बहुज्ञता	...	...	३३७
९. प्रासंगिक पदावली	...	...	३३९

अनुक्रमणिका

१. पदानुक्रमणिका	...	...	३४३
२. नामानुक्रमणिका	...	...	३५१
३. ग्रंथानुक्रमणिका	...	...	३५३

सहायक ग्रंथों की सूची

★

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
१.	अणु भाष्य (संस्कृत) ...	ब्रह्मसूत्र भाष्य ..	बल्लभाचार्य जी
२.	सुबोधिनी (,,) ...	भागवत टीका ...	,,
३.	पुरुषोत्तम सहस्रनाम (संस्कृत)	,, ...	,,
४.	तत्वदीप निबंध	,, ,,	,,
५.	षोडश ग्रंथ (संस्कृत)	(सिद्धांत मुक्तावली, पुष्टि प्रवाह मर्यादा, संन्यास निर्णय, विवेक धैर्याश्रय, सेवाफल, कृष्णाश्रय, अंतःकरण प्रबोध)	,,
६.	विद्वन्मंडन (,,) ..	... ...	विट्ठलनाथ जी
७.	शृंगाररस मंडन (,,) .	... ...	,,
८.	बल्लभ दिग्विजय (,,) ..	... ...	यदुनाथ जी
९.	शिक्षा पत्र (,,) .	... ..	हरिराय जी
१०.	वार्ता मणिमाला (,,)	... ...	श्रीनाथ भट्ट
११.	हस्त लिखित वार्ता पुस्तक	सं० १७४६ में लिपिबद्ध एवं सरस्वती भंडार, कांकरोली में सुरक्षित	
१२.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	हस्त लिखित एवं मुद्रित ...	गोकुलनाथ जी
१३.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना वाली)	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ...	हरिराय जी
१४.	निज वार्ता, घरू वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र	ललूभाई छगनलाल ...	,,
१५.	संप्रदाय कल्पद्रुम	.. ..	विट्ठलनाथ जी
१६.	भाव संग्रह	.. . ...	द्वारकेश जी
१७.	प्राचीन वार्ता रहस्य (द्वि.भा.)	विद्याविभाग, कांकरोली	द्वारकादास परीख
१८.	खट् ऋतु वार्ता	चतुर्भुजदास कथित	,,
१९.	वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती)	... ...	,,
२०.	श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता	.. ..	सं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या
२१.	सूरसागर	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	सं० राधाकृष्णदास
२२.	सूरसागर	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	
२३.	सूरसागर	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	जगन्नदास रत्नाकर
२४.	संक्षिप्त सूरसागर	... ...	सं० बेनीप्रसाद

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
२५.	सूरदास के पद	हस्त लिखित	निजी संग्रह
२६.	कीर्तन संग्रह	प्रकाशित एवं हस्तलिखित	,,
२७.	साहित्य-लहरी	पुस्तक भंडार, लहेरियासराय	सं० महादेव प्रसाद
२८.	पंचमंजरी	(रसमंजरी, रूपमंजरी)	नंददास
२९.	भक्तमाल-भक्ति-रस बोधिनी	... ..	नाभादास, प्रियादास
३०.	भक्तमाल-भक्तविनोद	... ...	मियाँसिंह
३१.	रामरसिकावली	... ...	रघुराजसिंह
३२.	भक्तनामावली	... ...	ध्रुवदास
३३.	नागर समुच्चय	.. ..	नागरीदास
३४.	मूल गोसाईं चरित्र	... ...	वेणीमाधव दास
३५.	तुलसी ग्रंथावली द्वितीय खंड	कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्ण-गीतावली	रामचंद्र शुक्ल,भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
३६.	तुलसीदास	... ...	माताप्रसाद
३७.	भ्रमरगीत-सार	... ...	रामचंद्र शुक्ल
३८.	सूर-पंचरत्न	... ...	भगवानदीन, मोहनवल्लभ पंत
३९.	सूर-समीक्षा	... .	नरोत्तमदास स्वामी
४०.	सूर-मुक्तावली	... ..	हरदयालुसिंह
४१.	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ..	रामचंद्र शुक्ल
४२.	हिंदी साहित्य	... ...	श्यामसुंदर दास
४३.	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ...	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
४४.	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	..	रामकुमार वर्मा
४५.	हिंदी नवरत्न	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ	मिश्रबंधु
४६.	सूरदास (अंग्रेजी)	... ...	जनार्दन मिश्र
४७.	सूर-साहित्य	... .	हजारीप्रसाद द्विवेदी
४८.	भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास	... ...	नलिनीमोहन सान्याल
४९.	सूर-साहित्य की भूमिका		रामरतन भटनागर, वाचस्पति त्रिपाठी
५०.	सूरदास : एक अध्ययन	... .	रामरतन भटनागर
५१.	सूर-सौरभ (भाग १,२)	... ...	मुंशीराम शर्मा
५२.	सूरदास	... ...	ब्रजेश्वर वर्मा
५३.	अष्टछाप-परिचय	... ...	प्रभुदयाल मीतल
५४.	अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय	... ...	दीनदयाल गुप्त
५५.	सामयिक पत्र (दिग्दर्शन, ब्रजभारती, सम्मेलन पत्रिका, नवीन भारत आदि)		

१. अंतःसाक्ष्य

यद्यपि सूरदास ने अपनी प्रचुर रचनाओं में अपने संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं लिखा है, तथापि उनके कथनों में कहीं-कहीं पर ऐसे उल्लेख अवश्य आ जाते हैं, जिनको हम उनके आत्म-विषयक कथन के रूप में ग्रहण कर सकते हैं । इस प्रकार के उल्लेखों के लिए सूरदास कृत सूरसारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर एवं अन्य स्फुट पद विचारणीय हैं ।

सूरसारावली—यह होली के वृहद् गान के रूप में एक बड़ी रचना है, जो ११०७ छंदों में समाप्त हुई है । इसको प्रायः सूरसागर का सूचीपत्र कहा जाता है, किंतु यह सूरसागर से पृथक् एक स्वतंत्र रचना है । आजकल के कुछ विद्वान इसको सूरदास की कृति नहीं मानते हैं, किंतु हम इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार करते हैं । इस संबंध में हम अपना मत विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों में 'ग्रंथ-निर्णय' प्रकरण में लिखेंगे । यहाँ पर हमको केवल यह बतलाना है कि इससे कौन-कौन से अंतःसाक्ष्य उपलब्ध होते हैं ।

महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व सूरदास की मानसिक स्थिति का उल्लेख—

करम-जोग पुनि ग्यान-उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्री बल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥

श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् ही उन्होंने लीला विषयक पदों का गायन किया था; इसका उल्लेख—

ता दिन तें हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ॥११०३॥

उन्होंने जिन लीलाओं का गायन किया था, उन्हीं के सार रूप में सूरसारावली की रचना की थी; इसका उल्लेख —

ताकौ सार सूरसारावलि, गावत अति आनंद ॥११०३॥
सरस संवतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै ॥११०७॥

उन्होंने अपनी ६७ वर्ष की आयु में सूरसारावली की रचना की थी; इसका उल्लेख—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरष प्रवीन ॥११०२॥

साहित्य-लहरी—यह दृष्टिकूट पदों का एक अत्यंत जटिल एवं क्लिष्ट काव्य ग्रंथ है। इसके विषय में भी प्रायः ऐसा समझा जाता है कि इसके पद सूरसागर से ही संकलित किये गये हैं, किंतु वास्तव में यह भी एक स्वतंत्र रचना है। इसके संबंध में भी कुछ विद्वानों की सम्मति है कि यह सूरदास की कृति नहीं है, किंतु हम इसे भी सूरदास की ही रचना मानते हैं। इस संबंध में अपना विस्तृत कथन हम आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथों का विवरण लिखते हुए ग्रंथ-निर्णय परिच्छेद में उपस्थित करेंगे। यहाँ पर हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि इसके कौन-कौन से कथन हम सूरदास की जीवन घटनाओं के अंतःसाक्ष्य रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

'साहित्य-लहरी' का रचना-काल और उसकी रचना के हेतु का उल्लेख—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद कौ लिखि, सुबल संबत पेख॥
नंदनंदन मास, छै तें हीन त्रितिया, बार—
नंदनंदन जनम तें है बान, सुख-आगार॥
त्रितिय रीछ, सुकर्म जोग, विचारि 'सूर' नवीन।
नंदनंदन दास हित, 'साहित्य-लहरी' कीन॥१०६॥

'साहित्य-लहरी' के ११८ वें पद में सूरदास की वंश-परंपरा का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनके संबंध में इतना इतिवृत्त और कहीं नहीं मिलता है, इसलिए 'साहित्य-लहरी' एवं इसके उक्त पद को प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक मानने वाले प्रायः प्रत्येक लेखक ने इसका उल्लेख किया है। साहित्य-लहरी की समाप्ति इसी पद सं० ११८ पर हुई है, किंतु इससे पूर्व १०६ वें पद में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि एवं उसकी रचना का उद्देश्य बतलाया जा चुका है। पद संख्या ११८ के पश्चात् दो उपसंहारों में ५१ पद दिये गये हैं†। 'साहित्य-लहरी' के ११८ पद सूरसागर में नहीं मिलते हैं, किंतु उपसंहार के ५३ पद सूरसागर से ही संकलित किये गये हैं।

'साहित्य-लहरी के ११८ वें पद का मुख्यांश इस प्रकार है—

प्रथम ही प्रथ जाग तें भे प्रगट अदभुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखि नाम अनूप॥
× ×
तासु बंस प्रसंस में भौ चंद चारु नवीन॥

† पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय द्वारा सं० १९९६ में प्रकाशित प्रति।

तासु बंस अनूप भौ हरचंद अति विख्यात ॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यौ ता सुत बीर ।
पुत्र जनमे सात वाके महा भट गंभीर ॥
× ×
भयौ सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम ॥
सो समर करि साहि सों सब गये विधि के लोक ।
रह्यौ सूरजचंद दृग तें हीन भरि-भरि सोक ॥
× ×
प्रबल दच्छिन विप्र कुल तें शत्रु ह्वै हैं नास ।
× ×
मोहि मनसा इहै ब्रज की बसी सुख चित थाप ।
श्री गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप ॥
विप्र प्रथ के याग कौ हौं भाव भूरि निकाम ।
'सूर' है नँदनंद जू कौ लियौ मोल गुलाम ॥११८॥

इस पद का सरांश इस प्रकार है—

"आरंभ में पृथु के यज्ञ से एक अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ । ब्रह्मा ने विचार कर उसका नाम ब्रह्मराव रखा । उसके प्रशंसनीय वंश में चंद हुआ । उसके वंश में हरचंद विख्यात व्यक्ति हुआ । उसके वीर पुत्र ने आगरा में रह कर गोपाचल में निवास किया । उसके सात महावीर पुत्र हुए । सातवें का नाम सूरजचंद है । उसके छै पुत्र बादशाह से युद्ध करते हुए परलोक वासी हो गये । मैं सातवाँ नेत्रहीन होने के कारण रह गया । भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे वरदान दिया कि दक्षिण के प्रबल विप्र कुल द्वारा तेरे शत्रुओं का नाश होगा । मेरे मन में ब्रजवास की इच्छा हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मेरी अष्टछाप में स्थापना की । मैं पृथु के यज्ञ का ब्राह्मण हूँ । 'सूर' नंदनंद जी का मोल लिया गुलाम है ।"

यदि यह पद सूरदास रचित है, तो उनके वंश-परिचय आदि के लिए यह निःसंदेह बड़ा महत्वपूर्ण है, किंतु इस पद में जहाँ इतिहास विरुद्ध कथन एवं कई शंकाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ इसकी पुष्टि अन्य अंतःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों से भी नहीं होती है, बल्कि विश्वसनीय बाह्यसाक्ष्य इसके विरुद्ध ही प्राप्त होते हैं । हमारे मतानुसार 'साहित्य-लहरी' सूरदास की रचना होते हुए भी इसका यह पद सूरदास रचित नहीं है । किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की है, अतः यह प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक है । हमारा मत निम्न कारणों पर आधारित है —

१—सूरदास ने छोटी-बड़ी कई रचनाएँ की हैं, किंतु उन्होंने अपने संबंध में इतना विस्तृत और स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं लिखा है। उन्होंने अपनी वंश-परंपरा और जाति आदि के प्रति उदासीनता ही प्रकट नहीं की है, बल्कि एक पद में उन्होंने भगवद्भक्ति के लिए अपनी जाति को छोड़ देने का भी कथन किया है*। ऐसी दशा में अपने वंश का ऐसा विस्तृत वर्णन कर 'विप्र प्रथ के याग कौ हौं भाव भूर निकाम' द्वारा गर्व पूर्वक अपने को ब्राह्मण कहना सूरदास की प्रकृत्ति और उनकी रचना-शैली के विरुद्ध है।

२—इस पद में प्रयुक्त 'दक्षिण के प्रबल विप्रकुल' का अभिप्राय निश्चय पूर्वक पेशवाओं है, जो सूरदास से प्रायः दोसौ वर्ष पश्चात् हुए थे। इस कथन के कारण 'मिश्रबंधु' और शुक्लजी आदि हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने इस पद को प्रक्षिप्त माना है। जो विद्वान 'दक्षिण के विप्रकुल' का अभिप्राय पेशवाओं की अपेक्षा महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से, और 'शत्रुओं' का अभिप्राय मुसलमानों की अपेक्षा भक्ति में बाधा डालने वाले काम-क्रोधादि से बतलाते हैं†, वे अर्थ की खींचातानी करते हैं। पद के आद्योपांत पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह अर्थ संगत नहीं है। अपने छै भाइयों की मृत्यु के कारण उनके शत्रु मुसलमान थे, जिनके नाश की वे कामना करते थे। यह समस्त पद सूरदास के भौतिक जीवन से संबंध रखता है, अतः इसकी समस्त पंक्तियों का अर्थ भी भौतिक ही करना चाहिए। समस्त पद का भौतिक और केवल एक पंक्ति का आध्यात्मिक अर्थ करना असंगत है।

३—इस पद में बतलाया गया है कि श्री कृष्ण के दर्शन होने के अनंतर सूरदास की इच्छा ब्रजवास करने की हुई। वहाँ जाने पर गोसाईं विट्ठलनाथ ने उनकी अष्टछाप में स्थापना की। 'चौरासी वार्ता' से ज्ञात होता है कि ब्रजवास करने के पूर्व उन्होंने अपना निवास स्थल मथुरा-आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान को बनाया था। वहीं पर उन्होंने श्री बल्लभाचार्य जी से दीक्षा ली थी। इस पद में सूरदास के गुरु बल्लभाचार्य जी का उल्लेख न होकर गो० विट्ठलनाथ का उल्लेख होने से वह इसे निश्चित रूप से किसी अन्य व्यक्ति की रचना सिद्ध करता है। सूरदास के शरणागत होने के समय तो गोसाईं विट्ठलनाथ का जन्म भी नहीं हुआ था। इस घटना के लगभग ३५ वर्ष पश्चात् गो० विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की थी।

---

* मन, बच, क्रम सत भाउ कहत हौं, मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भगति लगि, तजो जाति अपनी॥

† सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० २० —सूरसागर पद १०७ (वे० प्रे०)

४—ग्रंथ के अंत में उसके समाप्त होने की तिथि और उसकी रचना का उद्देश्य लिखा जाता है, किंतु 'साहित्य-लहरी' के पद सं० १०९ में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि और उसकी रचना का हेतु वर्णित होने पर भी उसके बाद के ११८ वें पद में इस प्रकार का कथन संगत ज्ञात नहीं होता।

५—इस पद की अप्रामाणिक सिद्ध करने का एक और भी कारण है, जिस पर अभी तक किसी भी विद्वान आलोचक का ध्यान नहीं गया है। 'साहित्य-लहरी' के पूर्वोक्त १०९ वें पद में इसका रचना-काल बतलाया गया है। इस पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ लगाने में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इसका अर्थ (०), कुछ एक (१) और कुछ दो (२) लगाते हैं। इस प्रकार 'साहित्य-लहरी' का रचना-काल भिन्न-भिन्न विद्वानों के मतानुसार सं० १६०७, १६१७ और १६२७ बतलाया जाता है। उपर्युक्त पद में प्रयुक्त 'गोसाईं' शब्द साहित्य-लहरी के रचना-काल के विरुद्ध पड़ता है। बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६३४ के पश्चात् ही विट्ठलनाथ जी 'गोसाईं" कहलाने लगे थे, इससे पूर्व वे 'दीक्षित' अथवा 'प्रभुचरण' संज्ञाओं से प्रसिद्ध थे। विट्ठलनाथ जी को 'गोसाईं" उपाधि संभवतः अकबर बादशाह द्वारा प्रदान की गयी थी। ऐसी दशा में अधिक से अधिक सं० १६२७ पर्यंत रची हुई 'साहित्य-लहरी' का गोसाईं शब्द निश्चित रूप से उक्त पद को अप्रामाणिक सिद्ध कर देता है।

६—इस पद में दी हुई सूरदास की वंशावली और उनकी जीवन घटनाओं का उल्लेख इसी रूप में श्री हरिराय जी कृत लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में नहीं है। श्री हरिरायजी की यह भावना-कृति सं०१७५२ में लिखित 'अष्टसखान की वार्ता' के नाम से 'प्राचीन वार्ता रहस्य' द्वितीय भाग में काँकरोली विद्या विभाग द्वारा छापी जा चुकी है और अब वह संपूर्ण रूप में तीन जन्म की लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के नाम से प्रथम बार अग्रवाल प्रेस, मथुरा द्वारा प्रकाशित हुई है। यदि इस पद में दी हुई वंशावली प्रामाणिक होती और वह श्री हरिराय जी से पूर्व स्वयं सूरदास द्वारा कथित होती, तब श्री हरिराय जी को उसके विरुद्ध कथन करने का कोई कारण नहीं था।

७—इस पद की अप्रामाणिकता का सबसे मुख्य कारण यह है कि यह पद दृष्टिकूट शैली का नहीं है। 'साहित्य-लहरी' का प्रत्येक पद दृष्टिकूट है, यहाँ तक कि उसका रचना-काल विषयक संख्या १०९ का पद भी इसी शैली का है; फिर समस्त ग्रंथ की शैली के विरुद्ध इस पद की अप्रामाणिकता निश्चित है।

उपर्युक्त कारणों से 'साहित्य-लहरी' का यह पद अप्रामाणिक सिद्ध हो जाता है, अतः इसे अंतःसाक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह पद 'साहित्य-लहरी' की प्रति में किस प्रकार सम्मिलित हो गया। इसके उत्तर में हम भी डा० दीनदयाल गुप्त के इस अनुमान का समर्थन हैं—

'ज्ञात होता है कि यह पद सरदार कवि तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र जी से पहले 'साहित्य-लहरी' के किसी टीकाकार अथवा लिपिकार ने मिलाया था* ।'

सूरसागर एवं स्फुट पद—सूरदास की सबसे प्रमुख रचना सूरसागर है। सूरसारावली, साहित्य-लहरी तथा कतिपय अन्य छोटी रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास द्वारा रचित समस्त पद-साहित्य सूरसागर के अंतर्गत मान लिया जाता है। हम सूरसागर की रचना-प्रणाली और उसके निश्चित स्वरूप के संबंध में आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथ प्रकरण में लिखेंगे। यहाँ पर उसकी मुद्रित प्रतियों के आधार पर हम अंतःसाक्ष्य के उल्लेखों पर विचार करना चाहते हैं। जो पद वर्तमान छपी हुई प्रतियों में प्राप्त नहीं होते, उनको यहाँ पर स्फुट पद मान लिया गया है। इन स्फुट पदों की प्रामाणिकता की परीक्षा भी आगामी पृष्ठों में सूरसागर के साथ की जावेगी।

अंतःसाक्ष्य के रूप में निम्न लिखित पद उल्लेखनीय हैं—

उच्च जातीयता सूचक उल्लेख—

१. मेरे जिय ऐसी आय बनी।
'सूरदास' भगवंत-भजन लगि, तजी जाति अपनी॥

२. बिकानी हौं हरि-मुख की मुसकानि।
गई जाति, अभिमान, मोह, मद, पति, हरिजन पहिचानि॥

जन्मांधता सूचक उल्लेख—

१, किन तेरौ गोविंद नाम धरयौ।
'सूर' की बिरियाँ निठुर ह्वै बैठे, जनम अंध करयौ॥

२. नाथ मोहि अंध की बेर उबारौ।
करम हीन, जनम कौ अंधौ, मोतें कौन नकारौ॥

३. हरि बिन संकट में को का कौ।
रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आँधरौ 'सूर' सदा कौ॥

* 'अष्टछाप और बल्लभसंप्रदाय' पृष्ठ ६२

गृह-त्याग के समय-निर्देश और आरंभिक जीवन संबंधी उल्लेख—

१. प्रभु मैं सब पतितन कौ राजा ।
आयौ अबेरौ, चलौ सबेरौ, लेकर अपने साजा ॥

२. मन ! तू मूरख क्यों कर रह्यौ ।
पहलौ पन खेलन में खोयौ, वृथा जनम गयौ ॥

स्वामित्व सूचक उल्लेख—

१. हौं हरि सब पतितन कौ नायक ।
सिमिट जहाँ-तहाँ तें सब कोऊ, आय जुरे इक ठौर ॥

२. प्रभु मैं सब पतितन कौ टीकौ ।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में कहत सबै मोहि नीकौ ॥

शरण में आने से पूर्व की रचना का आभास—

१. जियरा कौन नींद करि सोयौ ।
'सूर' हरी कौ सुमिरन करिलै, मिलिजा जातें (भयौ) बिछोयौ ॥

शरणागति सूचक उल्लेख—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उगारौ ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं, बिनु एक सरन तुम्हारौ ॥

२. मन रे ! तू भूल्यौ जनम गँवावै ।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै ॥

३. मन रे ! तैं आयुष वृथा गँवाई ।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्री बल्लभ सुखदाई ।
'सूरदास' सरनागत हरि की, और न कछू उपाई ॥

शरण-काल सूचक उल्लेख—

श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई ।
चिरजीवो अक्का जी कौ सुत श्री बिट्ठल सुखदाई ॥

नाममंत्र-प्राप्ति सूचक उल्लेख—

अजहू सावधान किन होहि ।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ ।
बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु गारुड़ी सुनायौ ॥

समर्पण सूचक उल्लेख—

यामैं कहा घटैगौ तेरौ ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों, यहै साँचौ मत मेरौ ॥

पुष्टि मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

१. हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
जानत को पुष्टि-पथ मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ॥
मारग-रीति उदर के काजैं, सीखि सकल भरमाऊँ ।
अति आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ॥

२. नाम-महिमा ऐसी जो जानों ।
मर्यादादिक कहें, लौकिक सुख लहें,
पुष्टि कों पुष्टि-पंथ निश्चय जो मानों ॥

मार्ग की उच्चता का उल्लेख—

हौं पतित-सिरोमनि सरन परयौ ।
यह ऊँचौ संतन कौ मारग, ता मारग में पैंड धरयौ ॥

ब्रज-बास एवं माता-पिता की विमुखता—

ब्रज बसि का के बोल सहौं ।
तुम बिन स्याम और नहिं जानौं, सकुचति तुमहिं रहौं ॥
धिक माता, धिक पिता विमुख तुव, भावै तहाँ बहौं ॥

गोकुल, वृंदावन, मथुरा-गमन सूचक उल्लेख—

१. ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी ।
मोहन नारि गोकुल की ठाड़ी बोलत अमृत बानी ॥

२. वृंदाबन एक पलक जो रहियै ॥
'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी, भाग्य बिना कहाँ तें पइयै ॥

श्रीनाथ जी का इष्ट विषयक उल्लेख—

१. अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।
श्रीनाथ सारंगधर कृपा कर मोहि,
सकल अघ हरन हरि, गरुड़गामी ॥

२. श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगल कारी ।
उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी ॥

श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख—

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ ।
'सूर' कूर आँधरौ, मैं द्वार परयौ गाऊँ ॥

निवास-स्थान और ढाढ़ी विषयक उल्लेख—

नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ सुनि गोवरधन तें आयौ ।
हौं तौ तिहारे घर कौ ढाढ़ी, 'सूरदास' मेरौ नाँउ ॥

सख्यता सूचक उल्लेख—

१. तुम ही मोकों ढीट कियौ ।
प्रभु, तुम मेरी सकुचि मिटाई, जोई-जोई माँगत पेलि ।
२. आजु, हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै तुमहीं, कै हमहीं माधौ, अपने भरौसैं लरिहौं ॥

प्रकृति सूचक उल्लेख—

(दीनता) १. हरि ! मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
तुम जानत अंतर की बातें, जो-जो उर उपजाऊँ ॥
२. हरि–भक्तन कों गर्व न करनों ।
यह अपराध, परम पद हू तें उतर, नरक में परनों ।
हौं धनवंत, ये भिक्षुक, यह कबहू चित्त न धरनौं ॥
(सत्संग) करहु मन, हरि-भक्तन कौ संग ।

गुरु-निष्ठा सूचक उल्लेख—

१. भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ ।
'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥
२. हरि-हरि-हरि-हरि सुमिरन करो । हरि-चरनारविंद उर धरो ॥
हरि गुरु एक रूप नृप जान । तामें कछु संदेह न आन ॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई । गुरु के दुखित दुखित हरि होई ॥
३. हरि–हरि–हरि सुमिरन करो । हरि चरनारविंद उर धरो ॥
श्रीमद् बल्लभ प्रभु के चरन । तिनकों गहो सुदृढ़ करि सरन ॥
विट्ठलनाथ कृष्ण सुत जाके । सरन गहे दुख नासहिं ताके ॥

'सूरसागर' का नामोल्लेख—

है प्रभु मोहू तें अति पापी ।
सागर सूर विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी ॥

भागवत स्वरूप सूचक उल्लेख—

१. निगम कल्पतरु पक्व फल, सुक मुख तें जु दयौ।

२. निगम कल्पतरु, सीतल छाया।
द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुण तत्व, व्यापै नहिं माया॥

३. श्री भागवत सकल गुन-खानि।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु पोषण, उति, मन्वंतर जानि।
ईस, प्रलय, मुक्ति, आस्रय पुनि ये दस लक्षन होय॥

सुबोधिनी का उल्लेख—

कहा चाकरी अटकी जन की।
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नहिं पाँव धरन की।
श्री सुकदेव वचन आसय, सुनो सुबोधिनी टीका जिनकी॥

गुरु-प्रसाद से भागवत-ज्ञान की प्राप्ति—

१. धन्य सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ।

२. गुरु बिनु ऐसी कौन करै।
भवसागर तें बूड़त राखे, दीपक हाथ धरै॥

खड़ी बोली की रचना-शैली—

१. मैं योगी यस गाया रे बाला।
तेरे सुत के दरसन कारन, मैं कासी से धाया रे बाला॥

२. बरजो जसोदा जी कहाना।
ये क्या जानें रस की बतियाँ, क्या जानें खेल जहाना॥

३. हे दैया मतवाला योगी, द्वारे मेरे आया है।
देखो मैया तेरा बालक जिन मोय चटक लगाया है॥

सूरसागर की मुद्रित एवं अमुद्रित प्रतियों में कुछ ऐसे भी पद प्राप्त होते हैं, जो सूर विषयक इतिहास के परिचायक होते हुए भी प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं। ऐसे पदों के अंतःसाक्ष्य से सूरदास के अनुसंधान में भ्रमात्मक मत बनाया जा सकता है, अतः उनके संबंध में विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

हम इस प्रकार के दो पद देकर यह बतलाना चाहते हैं कि आवश्यक सावधानी बिना अंतःसाक्ष्य द्वारा भी किस प्रकार भ्रमात्मक धारणा की पुष्टि हो सकती है।

निम्न लिखित पद से सूरदास के विट्ठलविपुल के सेवक होने की कल्पना की जा सकती है—

मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै।
तेज, प्रताप राय केसौ कौ, तीन लोक में गाजै॥
कोटिक तीरथ जहँ चलि आवैं मधि विश्रांत बिराजै।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ, जनम-मरन भय भाजै॥
विट्ठलविपुल विनोद विहारन, ब्रज कौ बसिवौ छाजै।
'सूरदास' सेवक तिनही के, कहत सुनत गिरिराजै॥

सार्थक शब्द-योजना सूरदास के काव्य का प्रमुख गुण है, अतः उनके प्रामाणिक पदों का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण अर्थ का सूचक है। उनके पदों में निरर्थक अथवा भरती के शब्द ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। उपर्युक्त पद की जाँच जब हम इस दृष्टि से करते हैं, तब निम्न बातें ज्ञात होती हैं—

(१) इस पद की अंतिम आधी पंक्ति 'कहत सुनत गिरिराजै' निरर्थक शब्द-योजना है, क्यों कि इसका कोई संगत अर्थ नहीं है। इसलिए सूरदास की शैली के विरुद्ध होने के कारण यह पद अप्रामाणिक है।

(२) इसी प्रकार 'सूरदास सेवक तिनही के' वाली पंक्ति भी सूरदास की रचना-प्रणाली से मेल नहीं खाती है। सूरदास ने अपनी किसी भी रचना में इस प्रकार का स्पष्ट कथन नहीं किया है। स्वयं बल्लभाचार्य जी के लिए भी उन्होंने इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि उनके लिए उन्होंने गुरु सूचक शब्दों का प्रयोग किया है।

(३) विट्ठलविपुल निंबार्क संप्रदाय की शाखा टट्टी संप्रदाय के प्रवर्त्तक सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्री हरिदास जी के शिष्य और उनके उत्तराधिकारी थे। यदि सूरदास को बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पूर्व विट्ठलविपुल का शिष्य माना जाता है, तब यह ऐतिहासिक काल-क्रम और उनके स्वामित्व के बाह्य साक्ष्य के विरुद्ध पड़ता है।

(४) बल्लभ संप्रदाय में आने से पूर्व यदि उनको हरिदासी संप्रदाय का शिष्य माना जाय, तो हमको ऐसा प्रबल कारण ढूँढ़ना होगा, जिससे उनको एक वैष्णव संप्रदाय का त्याग कर दूसरे वैष्णव संप्रदाय में आने को बाध्य होना पड़ा। जहाँ तक हमारा सूर विषयक अध्ययन है, हमको उनके पदों के अंतःसाक्ष्य से ऐसा कोई कारण दिखलायी नहीं देता है।

२. बहिःसाक्ष्य

बहिःसाक्ष्य के रूप में सूरदास संबंधी उल्लेखों का सब से अधिक संग्रह बल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य में उपलब्ध होता है। इस साहित्य में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'निज वार्ता' और उन पर श्री हरिराय जी कृत 'भाव' नामक टिप्पणी मुख्य रचनाएँ हैं। इनके द्वारा सूरदास के जीवन-वृत्तांत की जितनी सामग्री प्राप्त होती है, उतनी अन्य समस्त साधनों के सम्मिलित कर देने से भी नहीं होती है। इस लिए वार्ता साहित्य के पक्ष एवं विपक्ष में लिखने वाले सभी साहित्यिक विद्वानों ने सूरदास के चारित्रिक अनुसंधान के लिए उक्त सामग्री का अनिवार्य रूप से उपयोग किया है। हमने भी सूरदास के चरित्र-निर्माण के लिए उक्त सामग्री को प्रधान माध्यम के रूप में स्वीकार किया है, अतः उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के संबंध में यहाँ पर कुछ विवेचन करना आवश्यक है।

वास्तविक बात यह है कि हिंदी साहित्य के विद्वानों ने बल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य का अभी तक अनुसंधान पूर्वक गंभीर अध्ययन नहीं किया है। यही कारण है कि अपने अपर्याप्त ज्ञान के कारण कुछ विद्वान वार्ता साहित्य को अनुपयोगी एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने लगते हैं। हमने कई वर्षों से इस साहित्य की परिश्रम पूर्वक शोध की है और तत्संबंधी अल्प ज्ञान के आधार पर हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता में संदेह करना व्यर्थ है। इस साहित्य की यथार्थ शोध करने पर ऐसी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है, जो प्राचीन हिंदी साहित्य के इतिहास के संशोधन एवं उसके नव निर्माण में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। वार्ता साहित्य संबंधी भ्रम के निराकरण के लिए हम उसके आरंभ का इतिहास बतलाना चाहते हैं।

वार्ता साहित्य का प्रारंभ और विकास

कांकरोली सरस्वती भंडार के हस्त लिखित ग्रंथों में हिंदी बंध संख्या १०१×१ में १२८ प्रसंगों वाली एक वार्ता पुस्तक सुरक्षित है, जिसकी अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—

"सं० १७४६ वर्ष श्रावण सुदी ७ शुकरे पोथी लिखी छे, प्रती गोविंददास ब्राह्मण नी पोथी लख्युं छे"

इस पुष्पिका से सिद्ध है कि यह वार्ता पुस्तक सं० १७४६ में गोविंददास ब्राह्मण की प्रति से लिपिबद्ध की गयी थी। इस पुस्तक के एक उल्लेख से

हस्त सों खोली। तब बीच छोटी चौपरी निकसी तब बाँची। बाँचिकें आँखि सों लगाई अरु हृदौ भरि आयौ। सो नित ग्रंथ पाठ करते। एक वार्ता अरु दोइ। बांधिकें पेटी में धरिकें तारौ मारिकें भोजन कों पधारें।

यों करत बहुत बरस बीते। तब नेत्र कौ प्रकार भयौ। श्रीरायजू सों कही जो पोथी पेटी में है सो लावो। तब श्री रायजू ने पेटी खोलिकें पोथी हाथ में दीनी। लेकै नेत्र सों लगाई। फेरि रायजू कों दीनी। रायजू ने पेटी में धरी सो नित्य यों करै।

सो एक दिवस रायजू ने देखी सो नीकी लागी तब इनके प्रिय श्रीगोपालजू हते सो बात रायजू ने कही हमारे वैष्णवन की बात है। तब गोपालजू ने कही जो देखिए तब इन नाँही कही। वह देखी न जाय अन्नाजी बहुत जतन करि राखत हैं। तारे में है। और मो पास माँगत है तब आनि देत हूँ। फिरि कहत हैं जो धरी, तब कहूँ जो हाँज। तब भोजन कों पाँउ धारत हैं। तब फिरि गोपालजू ने कही 'कि तुम एक बात करो। जब उनकों देत हो तब तुमकों वे फिरि देत हैं तब इतनी करो जो और में धरिकें पेटी कौ तारौ दीजो। अरु वे पूछें तारौ दीयौ तब कहि जो दीयौ। तब कही जो भले। फिरि जब दूसरे दिन श्रीगोकुलनाथजी माँगी तब रायजू ने आय दीनी। तब श्रीजू नेत्र सों लगाय फेरि दीनी तब रायजू और में धरि भोजन कों पधारे। श्रीजू तौ भोजन करिकें पौढ़े। पाछे रायजू तो गोपालजू के घर पधारे। तब पोथी गोपालजू कों दीनी। तब पोथी बाँचि बाँचि कें गद्‌गद कंठ भए पाछे नारायणदास लेखक कों बुलायौ। तब पोथी लिखवाई। सो उनने दो प्रति कीनी। एक उनको दीनी दूसरी लेखक पास रही। सो गोपालजू रायजू ने जानी नाँही। सनेही जी के आगे कहें। सो वाके एक ओर सनेही रहे सो वाने उनकों कही। तब उन कह्यौ यह सिखाय देहु। तब उनने लिख दीनी। एसे पाँच सात प्रति भई। तब एक प्रति धनजी भाई चोपरा के तिन देखी। तब श्रीजू के आगे बात करी। तब श्रीजू चोंके खोज कियौ। वे सब बुलाए। परस्पर पूछे पाछे, जानी जो रायजू कौ काम है। तब कह्यौ गोप्य वस्तु प्रगट भई भगवत इच्छा मानी।"

इस उद्धरण से वार्ता साहित्य का आरंभिक इतिहास ज्ञात होता है और इससे तत्संबंधी कई शंकाओं का समाधान भी हो जाता है। इससे निम्न लिखित महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं—

कृष्ण भट्ट द्वारा लेखबद्ध वार्ताओं की जिस प्रति का ऊपर उल्लेख हुआ है, उसमें 'चौरासी' अथवा 'दोसौ बावन' का क्रम नहीं था। श्री गोकुलनाथ जी ने उन क्रमरहित वार्ताओं को श्री आचार्य जी और श्री गोसाईं जी के सेवकों के अनुसार क्रमबद्ध किया था। वे सुबोधिनी की कथा के अनंतर कृष्ण भट्ट की पोथी के आधार पर उक्त वार्ताओं का विस्तार पूर्वक कथन किया करते थे।

श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित एवं 'चौरासी' और 'दोसौ बावन' के रूप में विभाजित वार्ताओं को बाद में श्री हरिराय जी ने संकलित किया। श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथजी द्वारा कही हुई वार्ताओं का और भी विस्तार किया। गोकुलनाथ जी द्वारा कहे हुए प्रसंगों में जहाँ कुछ न्यूनता अथवा अपूर्णता दिखलाई दी, वहाँ पर श्री हरिराय जी ने अपनी 'भाव' नामक टिप्पणी लिख कर उसकी पूर्ति की। इस प्रकार आचार्य जी एवं गोसाईंजी के समय में जो वार्ताएँ संप्रदाय के कुछ व्यक्तियों तक सीमित थीं, वे कृष्ण भट्ट द्वारा लेखबद्ध होकर गोकुलनाथ जी के समय में प्रसिद्ध हुईं। बाद में श्री हरिराय जी द्वारा विस्तार प्राप्त कर उनका लोक में प्रचार हुआ।

यह वार्ता-साहित्य के आरंभ और उसके विकास का इतिहास है, जिसे जान लेने पर उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता में संदेह नहीं रहता है। इस वार्ता साहित्य में सूरदास संबंधी वाह्य साक्ष्य के लिए चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता और उन पर हरिरायजी कृत भावप्रकाश प्रमुख रचनाएँ हैं। अब क्रमशः उक्त रचनाओं पर विचार किया जाता है—

चौरासी वैष्णवन की वार्ता—वार्ता साहित्य में सूरदास संबंधी उल्लेखों के लिए 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' प्रमुख है, जो आचार्य जी के सेवकों का आदर्श उपस्थित करने के लिए श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित हुई है। इसकी प्राचीनता की पुष्टि श्री गोकुलनाथ जी रचित चौरासी वैष्णवों की संस्कृत नामावली, श्री यदुनाथ जी कृत 'वल्लभ दिग्विजय' (सं० १६५८ में रचित) और श्री गोसाईंजी के सेवक अलीखान पठान कृत ८४ वैष्णवों के नामों वाले पद आदि अनेक प्रमाणों से होती है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता एवं अन्य मूल वार्ताओं में भक्तों के प्रासंगिक चरित्रों का कथन किया गया है, जिनका विदशीकरण और जिनकी पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश द्वारा की है। मूल चौरासी वार्ता में सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

श्रीनाथ जी के कीर्तन का आदेश विषयक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभू जी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथ जी के यहाँ और तौ सब सेवा मंडान भयौ और कीर्तन कौ मंडान नाँहीं कीयौ है, तातें सूरदास जी कों दीजिये ।'

सहस्रावधि पद रचना और सूरसागर का उल्लेख—

'सूरदास जी नें सहस्रावधि पद कीये हैं, ताकौ सागर कहियै सो जगत में प्रसिद्ध भये ।'

अकबर-भेंट का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के पद देशाधिपति नें सुने सो सुनिकें यह विचारौ जो सूरदास जी काहू विधि सों मिलें तो भलौ । सो भगवदिच्छा तें सूरदासजी मिले । तब सूरदासजी नें देशाधिपति के आगे कीर्तन गायौ ।'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'बहुर सूरदास जी श्रीनाथजीद्वार आयकें बहुत दिन ताईं श्रीनाथ जी की सेवा कीनी । बीच-बीच में श्रीगोकुल श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन कों आवते ।'

गुरु और ईश्वर में अभेदता सूचक उल्लेख—

'सूरदास जी बोले जो मैं तौ सब श्री आचार्य जी महाप्रभून कौ ही जस वर्णन कियौ है, कछू न्यारौ देखूं तौ न्यारौ करूँ ।'

देहावसान काल सूचक उल्लेख—

'सो राजभोग आरती करिकें श्रीगुसाईं जी गिरिराज तें नीचे उतरे सो आप परासौली पधारे । भीतरिया सेवक रामदास जी प्रभृत और कुंभनदास जी और श्री गुसाईं जी के सेवक गोविंदस्वामी चत्रभुजदास प्रभृत और सब श्री गुसाईं जी के साथ आयें । तब श्री गुसाईं जी ने पूछौ जो सूरदासजी नेत्र की वृति कहाँ है? तब सूरदास जी नें एक पद और कह्यौ । इतनों कहत ही सूरदास जी नें या शरीर कौ त्याग कीयौ ।'

निज वार्ता—यह वार्ता श्री गोकुलनाथ जी कथित है और उस पर श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश भी उपलब्ध है । इसके एक उल्लेख से सूरदास जी की जन्म-तिथि इस प्रकार ज्ञात होती है—

'सो सूरदास जी जब श्रीआचार्य जी महाप्रभु कौ प्राकट्य भयौ है, तब इनकौ जनम भयौ है । सो श्रीआचार्यजी सों ये दिन दस छोटे हुते ।'

गायन कला के ज्ञान का उल्लेख—

'सो सूरदास विरह के पद सेवकन कों सुनावते । सो सब गायवे के बाजे कौ सरंजाम सब भेलौ होय गयौ ।'

'सूरदास कौ कंठ बहौत सुंदर हतौ । सो गान विद्या में चतुर····।'

ग्राम–त्याग और गऊघाट-निवास का उल्लेख—

'या प्रकार सूरदास तलाब पै पीपर के वृक्ष नीचै बरस अठारै के भये । तब सूरदास उहाँ तें चले····सो यह विचारिकें सूरदास मथुरा और आगरे के बीचों बीच गऊघाट है, तहाँ आयकै····रहे ।'

आचार्य जी द्वारा दीक्षा एवं ज्ञान-प्राप्ति का उल्लेख—

'तब श्री आचार्य जी नें कृपा करिकें सूरदास कों नाम सुनायौ । ता पाछें समर्पन करवायौ । पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास कों सुनाये । ····सो सगरी श्री सुबोधिनी जी कौ ज्ञान श्री आचार्य जी नें सूरदास के हृदय में स्थापन कियौ । तब भगवतलीला जस वर्णन करिवे कौ सामर्थ्य भयौ । ····ता पाछें श्री आचार्य जी नें सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायौ ।'

भागवत के अनुसार पद-रचना करने का उल्लेख—

'तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी । सो सूरदास नें प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादस स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन कियें ।'

सूरसागर का उल्लेख—

'और सूरदास कों जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते जो आवो सूरसागर !····'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'अब श्री आचार्य जी आप अंतर्ध्यान लीला किये और श्री गुसाईं जी कों करनौ है । सो पहलें भगवदीयन कूं नित्य लीला में स्थापन करिकें आपु पधारेंगे ।'

नामों का उल्लेख—

'सो इन सूरदास जी के चारि नाम हैं । श्री आचार्य जी आप तौ 'सूर' कहते । ···और श्री गुसाईं जी आप 'सूरदास' कहते ।···और तीसरौ इनकौ नाम 'सूरदास' है । श्री गोवर्धननाथ जी ने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदास जी कों करि दिये । तामें 'सूरस्याम' नाम धरे । सो या प्रकार सूरदास जी के चारि नाम प्रकट भये । सो सूरदास जी के कीर्तन में चारों 'भोग' कहे हैं ।'

उनके एक पद के आधार पर वे गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक सिद्ध होते हैं†, अतः वे सूरदास के प्रायः समकालीन होने चाहिए। उनकी रचना में महाप्रभुजी और गुसाईं जी के अतिरिक्त किसी अन्य गोस्वामी बालक का उल्लेख नहीं मिलता है; यहाँ तक कि श्री गोकुलनाथ जी का भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। इससे भी उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

इस ग्रंथ में उस समय उपलब्ध वार्ताओं के अनेक प्रसंगों का संस्कृत पद्य में अनुवाद किया गया है। इससे जहाँ वार्ताओं की महत्ता ज्ञात होती है, वहाँ उनकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है। ब्रजभाषा रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद होना उस समय के लिए एक विशेष बात थी। यह ग्रंथ ३७०७ श्लोकों में पूर्ण हुआ है और इसमें ११५ वार्ता प्रसंगों का कथन किया गया है। इस ग्रंथ की दो विशाल-काय हस्त प्रतियाँ कांकरोली विद्या विभाग के सरस्वती भंडार में सुरक्षित हैं। इसकी आरंभिक १६ वार्ताएँ 'प्राचीन वार्ता रहस्य' प्रथम एवं तृतीय भाग में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस ग्रंथ की ५८ वीं वार्ता सूरदास से संबंधित है। उस वार्ता के निम्न-लिखित उल्लेख से सूरदास की जन्मांधता और उनके ब्राह्मण होने की सूचना प्राप्त होती है—

"जन्मांधो सूरिदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः।"

भक्तमाल—इस ग्रंथ की रचना एक रामोपासक भक्त कवि नाभाजी ने की है। उन्होंने अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती अनेक भक्तों का परिचयात्मक वर्णन किया है। गोसाईं विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी के संबंध में लिखते हुए उन्होंने 'श्री गिरिधर आजमान' शब्दों का प्रयोग किया है। इस वर्तमान काल की क्रिया से सिद्ध होता है कि भक्तमाल की रचना गिरिधर जी के आचार्यत्व-काल में हुई थी। श्री गिरिधर जी के आचार्यत्व का समय सं० १६४२ से १६७७ तक है, अतः भक्तमाल की रचना का समय सं० १६६० के लगभग ज्ञात होता है।

---

† प्रगटे श्री विट्ठल ब्रज के नाथ।
पंच सब्द धुनि बजत बधाई, निज जन भये सनाथ॥
मंगल कलस लिए ब्रज-भामिनि गावत गीत सु गाथ।
सकल मनोरथ भये नाथ' के, निज पद धरे जु माथ॥

नाभाजी ने सूरदास के संबंध में केवल एक छप्पय लिखा है, जिसमें उनके कवित्व की प्रशंसा की गयी है और जिससे सूरदास की जन्मांधता का भी संकेत मिलता है। वह छप्पय इस प्रकार है—

उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन, अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ, अद्भुत तुक धारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि-लीला भासी।
जनम करम गुन रूप, सबै रसना परकासी॥
बिकल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि करै।
सूर-कवित सुन कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥

भक्तमाल की टीकाएँ एवं अन्य रचनाएँ—नाभाजी के उपरांत अनेक कवियों ने उनकी शैली का अनुकरण करते हुए भक्तमाल के कथनों का विस्तार किया है। इस प्रकार की रचनाओं में प्रियादास की कृति विशेष उल्लेखनीय है, किंतु आश्चर्य की बात है कि उसमें सूरदास पर कुछ नहीं लिखा गया है। महाराज रघुराजसिंह कृत 'राम रसिकावली' और कवि मियाँ-सिंह कृत 'भक्तविनोद' में सूरदास का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। नाभाजी कृत भक्तमाल में दिये हुए कई सूरदासों की जीवन-घटनाएँ उक्त टीकाओं में इस प्रकार आपस में मिल गई हैं कि उनके कथन अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय हो गये हैं, अतः वाह्य साक्ष्य के लिए उनका उपयोग नहीं किया गया है।

ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में भी अनेक भक्तों का संक्षिप्त कथन किया गया है। उसमें सूरदास का भी अत्यंत संक्षिप्त उल्लेख है, जिसमें उनकी भक्ति-भावना की प्रशंसा की गयी है। कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावंतसिंह उपनाम 'नागरीदास' कृत 'नागर समुच्चय' में भी सूरदास संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं, किंतु वे अतिरंजित एवं अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण अग्राह्य हैं।

आईने अकबरी, मुन्तखिब उल तवारीख, मुंशियात अबुलफज़ल और मूल गोसाईं चरित में भी सूरदास संबंधी उल्लेख मिलते हैं, किंतु वे अप्रामाणिक होने के कारण यहाँ पर वाह्य साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किये गये हैं। आगामी पृष्ठों में यथा स्थान आवश्यकता होने पर उनकी आलोचना की जावेगी।

अष्टसखामृत—यह ग्रंथ वृंदावन निवासी प्राणनाथ कवि का रचा हुआ है। इसकी प्रति सं० १७६७ की लिखी हुई बंबई के बड़े मंदिर में है†। इस ग्रंथ के परिचयात्मक दोहाओं से ज्ञात होता है कि इसका रचयिता बल्लभ संप्रदाय का अनुयायी था और वह गो० विट्ठलनाथ जी, श्री गोकुलनाथ जी तथा अष्टसखाओं का समकालीन था*। इसके रचे हुए गोकुलनाथ जी के माला प्रसंग विषयक कवित्त भी प्राप्त होते हैं।

इस ग्रंथ में सूरदास विषयक उल्लेख इस प्रकार है—

"श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही – सर – जलजात।
सारसुती–दुज तरु–सुफल, सूर भगत विख्यात॥
सूर सूर हू तें अधिक, निस दिन करत प्रकास।
जाकी मति हरि–चरन में, ताकों देत विलास॥
बाहिर नैंन – विहीन सो, भीतर नैंन विसाल।
तिन्हें न जग कछु देखिबौ, लखि हरि रूप निहाल॥
बाहिर अंतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि–पद–मारग लखि परत, यातें साँचे सूर॥
स्याम–सुधा–मधुरस – पगी, रसना सूर सहाइ।
'प्रान' मनहिं थिर देत करि, हरि – अनुराग बढ़ाइ॥
रूप–माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अन लोक।
हरि गुन रस–सागर कियौ, हरन सकल जग सोक॥
सारद बैठी कंठ तेहि, निस दिन करै कलोल।
हरि–लीला–रस पद कथत, नित नए सूर अमोल॥

---

† नवीन भारत, १६ मई सन् १६४८ में प्रकाशित लेख 'महाकवि सूरदास'

* 'गोकुलेस मथुरेस प्रभु, पद गहि हरन कलेस।
अष्टसखामृत अब रचत, भक्त–दास 'प्रानेस'॥
हरिबल्लभ बल्लभ प्रभू, विट्ठलेस पद धूरि।
धरौं सीस जिनकी कृपा, पाई जीवन मूरि॥
जिनकी कृपा कटाच्छ सूँ, बसि वृंदावन धाम।
'प्राननाथ' धनि धनि भयौ, सब विधि पूरन काम॥
जनम–जनम ब्रज भू मिलै, जनम–जनम विट्ठलेस।
जनम–जनम आठौं सखा, गोकुलनाथ ब्रजेस॥

कहा बड़ाई करि सकै, जाकौ प्रगट प्रकास ।
श्री बल्लभ के लाड़िले, कहियत सूरजदास ॥
वर बल्लभ सेयौ नहीं, गायौ गुन नहीं सूर ।
'प्रान' जप्यौ नहीं नाम हरि, ताके मुख में धूर ॥"

इस उल्लेख से सूरदास के जन्म-स्थान सीहीं, उनकी जाति सारस्वत ब्राह्मण और उनके अंधत्व का परिचय प्राप्त होता है ।

संप्रदाय कल्पद्रुम—यह ग्रंथ श्री हरिराय जी के सेवक विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा ब्रजभाषा पद्य में लिखा गया है। इस ग्रंथ के रचयिता विट्ठलनाथ भट्ट गो० विट्ठलनाथ की पुत्री यमुना के पुत्र जगन्नाथ पंडितराज के ज्येष्ठ भ्राता गोपीनाथ के पौत्र थे। उन्होंने कृष्णगढ़ के राजा मानसिंह के लिए उक्त ग्रंथ की रचना सं० १७२६ में की थी ।

इस ग्रंथ में श्री आचार्य जी और श्री गोसाईं जी की जीवन–घटनाओं का वर्णन किया गया है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित घटनाओं को तिथि-संवत् सहित देने की प्रथा प्रायः नहीं थी, किंतु इस ग्रंथ में वर्णित अनेक प्रसंगों के तिथि-संवत् दिये हुए हैं। इस दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है, किंतु इसके कतिपय संवत् विश्वनीय नहीं हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथकार ने अपने समय से पूर्व की घटनाओं के संवत् निर्धारित करने में अधिक सावधानी से काम नहीं लिया है, किंतु उसके समय की घटनाओं के संवत् प्रामाणिक हैं ।

इस ग्रंथ के निम्न लिखित उल्लेख से ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपनी तृतीय यात्रा की समाप्ति पर सूरदास को शरण में लिया था—

सूरदास कों सरन लै, तीर्थराज प्रभु आय ।
भू प्रदक्षिणा पूर्ण किय, ब्रह्मभोज करवाय* ॥

जमुनादास कृत धौल—श्री हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती भाषा का एक प्राचीन धौल प्राप्त है, जिसमें सूरदास का विस्तृत परिचय दिया गया है। जमुनादास और उसकी रचनाएँ बल्लभ-संप्रदाय में प्रसिद्ध हैं। उसके रचे हुए सर्वोत्तम आदि के पद मंदिरों में गाये जाते हैं। इस धौल की प्रामाणिकता प्राचीन हस्त प्रतियों और उसके व्यापक प्रचार से सिद्ध है। इस धौल की अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि कवि ने सूरदास विषयक कथन श्री हरिराय जी द्वारा श्रवण करने के उपरांत लिखा है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि उसका कथन हरिराय जी कृत भावप्रकाश के अनुकूल है–

* संप्रदाय कल्पद्रुम, पृ० ४२

श्री सूरदास जी परम भक्त सिरोमणि, आ रहेता ते तो दिल्ली सीही ग्राम जो ।
बालपने थी हरिभक्ति करता सदा, आ त्रण कालना ज्ञाननी राखे हाम जो ॥१॥

प्रगटयाए तो ब्रह्म सारस्वत कुलमां, आ नेत्र विहीणे दरिद्र पिता ना धाम जो ।
कटु वचन सुणी ने घर थी चालिया, ते आवी पहोंच्या एक तलावनी ठाम जो ॥२॥

रह्या बार वर्ष लगी त्यां निर्भे थई, पण हरि मिलन नी चिंता मननी माँह्य जो ।
एक दिवसे अति विरह चित्त जे थयो, त्यारे कृपा करीने प्रगटया श्रीहरित्याँह्य जो ॥३

नेत्र दई ने आप्यां दर्शन श्रीनाथ जी, आ वर माँगवाने कह्युं छे तेनी वार जो ।
ए समय नाँ दर्शन थी मूदित थई, आ अंतरदृष्टि ए हरिलीला ने माँगे जो ॥४॥

त्यारे अति प्रसन्न वदने श्रीनाथ जी, आ कहे, सुनो मम बाल सखा प्रवीन जो ।
हवे शीघ्र व्रजमंडल माँ जाओ तमे, त्यां था जो श्री बल्लभ ने अधीन जो ॥५॥

ते वारे दर्शन आपीश हुँ तने, ने देखाडीश मम लीला ना परकार जो ।
ए समये विनंती सूरदासे की धी, प्रभु ! केम जाणुं हुँ श्रीबल्लभनो आय जो ॥६॥

त्यारे कृपा करीने श्रीनाथ जी, आ कहे छे त्याँ श्रीबल्लभ केरां रूप जो ।
दक्षिण ब्राह्मण वेष सदा एउनो रहे, आ स्याम वरन ने दिव्य तेज अनूप जो ॥७॥

ए परिक्रमण करीने पृथ्वी पावन करे, आ विहिण पादुका चरन सुवासिन जान जो ।
रूप बटूक सदा छे एहुनां, आ तारा थी ए दिवस दस महान जो ॥८॥

एम कहीने प्रभु त्यारे अंतरध्यान थया.आ त्यारे तेमने प्रगटयो विरह अपार जो ।
पछी आज्ञा प्रभुनी माथे धरी, आ चाली आव्या मथुरा थई गौघाट जो ॥९॥

त्या रहीने कीरतन हरिनां बहु करयां,ने ध्यान करयां श्री बल्लभजी महाराज जो ।
एम करंताँ दक्षिण थी प्रभु आवी आ,ने शरणे लीधा छे भक्त शिरोमणि राज जो१०

सहस्र नाम रची हरि लीला भासित करी, आकीधा मनोरथ पूरण नंदकुमार जो ।
पछी त्याँ थी प्रभु श्री गोकुल आवीया, आ संगे लाव्या सूरदासने ते वारजो ॥ ११

अहीं बाल-लीला नां सुख आपी ने, आ लाप्या तेमने श्री गोवर्धन सुखधाम जो ।
त्यां आत्मनिवेदने सोंप्या छे श्रीनाथ जी, आ आपी सेवा कीर्तननी अष्टयाम जो१२

पछी देखाइयुं रूप श्रीगोवर्द्धन क्षेत्र नुं, आ सारस्वत कल्पनुं वृंदावन शुभनाम जो ।
त्यारे त्यां रही शरणे पद रचनो करी,आ सवालक्ष ते निज जन मन अभिरामजो १३

पछी श्री गुसांईजी ए थाप्या अष्टछापमा, आ अष्टसखा मध्य राज सिरोमनि रूपजो ।
'जमनादास' अधम ते वर्णन शां करे, आ सुण्युं वदन जो श्रीहरिराय महाभूपजो१४

भाव-संग्रह—इसकी रचना श्री द्वारकेश जी भावना वालों ने की है, जिनका समय सं० १७२१ से सं० १८०० के आस-पास है। इसमें सूरदास की जन्म तिथि, जाति और उनके जन्म स्थान का निम्न उल्लेख मिलता है—

"सो सूरदास जी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते। लीला में उनकौ स्वरूप कृष्ण-सखा, चंपकलता-सखी, श्री जी के वाक् कौ स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण, सींही गाम के वासी।"

वैष्णवाह्निक पद—इसकी रचना गो० श्री गोपिकालंकार जी उपनाम 'मट्टू जी' जतीपुरा निवासी ने की है। उनका जन्म सं० १८७६ में हुआ था। उन्होंने अपनी रचनाएँ 'रसिकदास' के नाम से की हैं। सूरदास के यशोगान विषयक उनकी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं। एक पद में उन्होंने सूरदास की जन्म तिथि का इस प्रकार उल्लेख किया है—

प्रगटे भक्त-सिरोमनि राय।
माधव सुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ अधिक सुखदाय॥
संवत पंद्रहा पैंतीस वर्षे 'कृष्ण' सखा प्रगटाय।
करि हैं लीला फेरि अधिक सुख मन मनोरथ पाय॥
श्री बल्लभ, श्री बिट्ठल, श्री जी रूप एक दरसाय।
'रसिकदास' मन आस पूरन ह्वै सूरदास भुव आय॥

जनश्रुतियाँ—सूरदास के जीवन-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि वे अपने समय में ही यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उनके देहावसान के अनंतर उनकी ख्याति और भी बढ़ी। इसके कारण अनेक प्रकार की जन-श्रुतियाँ उनके संबंध में लोक में प्रचलित हो गयीं। इनमें से कई जन-श्रुतियों की पुष्टि वहिःसाक्ष्य हो जाती है और कई जनश्रुतियाँ अन्य सूरदासों से संबंधित होने के कारण अप्रमाणिक सिद्ध हो गयी हैं। सूरदास पर लिखने वाले कई लेखकों ने सूर संबंधी सामग्री में इन जनश्रुतियों को भी सम्मिलित किया है, किंतु हमने इनको सामग्री के रूप में स्वीकार नहीं किया है। प्रामाणिक जनश्रुतियों का संबंध सूरदास के अंतःसाक्ष्य एवं वाह्य साक्ष्य से है, अतः उनके मूल तत्वों का विवेचन उक्त साक्ष्यों के साथ हो चुका है। अप्रामाणिक एवं निराधार जनश्रुतियों के संबंध में लिखना अनावश्यक समझा गया है।

३. आधुनिक सामग्री

अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के रूप में सूरदास संबंधी जो प्राचीन सामग्री उपलब्ध है, उसका अनुसंधान करने पर आधुनिक विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वही आधुनिक सामग्री के रूप में प्राप्त हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये समस्त निष्कर्ष निर्भ्रांत एवं विश्वसनीय हों, अतः उनके संबंध में मतभेद होना स्वाभाविक है। फिर भी सूर संबंधी अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए प्रत्येक लेखक को अपने अग्रजों द्वारा प्रस्तुत सामग्री से बहुमूल्य सहायता मिलती रही है। हमने भी इस सामग्री का यथा स्थान उपयोग किया है, और जहाँ हमारा मत इसके अनुकूल नहीं हो सका है, वहाँ हमने उसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री,
२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर-संबंधी सामग्री,
३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री।

अब हम इस सामग्री का संक्षिप्त परिचय देकर यह देखना चाहते हैं कि सूर संबंधी समीक्षात्मक निर्णय करने में यह किस प्रकार सहायक हो सकती है।

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री

सूरसागर—अब तक प्रकाशित सूरसागर के समस्त संस्करणों में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण सबसे बड़ा और अच्छा है। स्व० बा० जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' ने बड़े परिश्रम और अध्यवसाय पूर्वक इसकी सामग्री एकत्रित की थी और इसका संपादन भी किया था, किंतु उनके असामयिक निधन के कारण यह कार्य उनके समय में पूरा न हो सका। अब सभा ने श्री नंददुलारे वाजपेयी से इस कार्य की पूर्ति कराकर सूरसागर को दो बड़े खंडों में प्रकाशित किया है। सभा के इस संस्करण में सूरदास के जीवन-वृत्तांत और इस ग्रंथ की संपादन-शैली के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है, जो कि इसकी एक कमी है, किंतु प्रामाणिक अंतःसाक्ष्य के लिए यह बड़ा उपयोगी है। वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई का संस्करण पुराने संस्करणों में अच्छा है। इसका संपादन बा० राधाकृष्णदास ने किया था। उन्होंने इसकी भूमिका में सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तांत भी लिखा है। जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था, उस समय वह वृत्तांत निःसंदेह महत्वपूर्ण माना जाता था, किंतु अब नवीन अनुसंधानों के कारण उसका महत्व कम हो गया है।

रामरसिकावली एवं भक्तविनोद की जिस सामग्री का उन्होंने उपयोग किया है, वह स्वयं इस समय महत्वपूर्ण नहीं रही। सूरसागर का एक अन्य संस्करण नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ का है, जिसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत की सामग्री उपलब्ध नहीं है, किंतु सूर संबंधी अंतःसाक्ष्य के लिए इसका भी महत्व है। सूरसागर के दो संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। एक का संपादन श्री वियोगी हरि ने और दूसरे का डा० बेनीप्रसाद ने किया है। उक्त विद्वान संपादकों ने सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी प्रकाश डाला है, किंतु उनके कथन से किसी महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन नहीं होता है।

सूर-संकलन—सूरदास के काव्य का परिचय देने के लिए उनकी कविता के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें ला० भगवानदीन कृत 'सूर-पंचरत्न' और 'सूर संग्रह', श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत 'सूर-संदर्भ' और 'सूर-सुषमा', श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'सूर-पदावली', श्रीनरोत्तमदास स्वामी कृत 'सूर-साहित्य-सुधा', श्री हरदयालुसिंह कृत 'सूर-मुक्तावली' मुख्य हैं। इन संग्रह ग्रंथों की प्रस्तावना में सूरदास के संबंध में भी लिखा गया है। जहाँ तक सूरदास के जीवन-वृत्तांत का संबंध है, इन संग्रह ग्रंथों से कोई विशेष महत्व की बात ज्ञात नहीं होती है, किंतु उनमें सूरदास के काव्य और उनकी भाषा के संबंध में महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। 'सूर-पंचरत्न' की भूमिका स्वरूप 'अंतर्दर्शन' में सूरदास के काव्य और उनकी भाषा की विस्तृत आलोचना की गयी है। इसी प्रकार 'सूर-मुक्तावली' के 'प्राक्कथन' और उसकी 'भूमिका' में भी विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। सूरदास के भ्रमरगीत विषयक पदों का एक अच्छा संकलन 'भ्रमरगीत-सार' के नाम से श्री रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित और साहित्य सेवा सदन, काशी द्वारा प्रकाशित हुआ है। शुक्ल जी उच्चट समालोचक थे। उन्होंने इस ग्रंथ के आरंभ में सूरदास के काव्य की विद्वतापूर्ण एवं सारगर्भित आलोचना की है, जो इस प्रकार की सामग्री में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सूरदास कृत विनय के पदों का एक संकलन 'सूर-विनय-पदावली' के नाम से इस ग्रंथ के लेखक द्वारा भी प्रकाशित हुआ है, जिसके अंत में सूर-विनय का शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक विवेचन किया गया है। सूर-साहित्य के अनुशीलन के लिए यह समस्त सामग्री महत्वपूर्ण है, जिस पर हम यथा स्थान विचार करेंगे।

साहित्य-लहरी—श्री महादेवप्रसाद कृत टीका सहित सूरदास कृत 'साहित्य-लहरी' का यह संस्करण पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय द्वारा प्रकाशित हुआ है। साहित्य लहरी जैसे क्लिष्ट काव्य की टीका प्रस्तुत कर श्री महादेव

प्रसाद ने महत्वपूर्ण कार्य किया है; किंतु उन्होंने अपने 'वक्तव्य' में सूरदास के संबंध में कुछ भ्रमात्मक बातें लिखी हैं। श्री गोकुलनाथ जी का नाम 'गुसाईं गोकुलनाथ जी' लिखते हुए उन्होंने बतलाया है कि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण और उनको रामदास का पुत्र तथा रुनकता नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ लिखा गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को स्वयं नहीं देखा है, अन्यथा वे इस प्रकार का कथन नहीं करते। सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखने वाले श्री गोकुलनाथ जी नहीं, बल्कि श्री हरिराय जी थे, जिन्होंने चौरासी वार्ता पर भावप्रकाश लिखते हुए सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तांत प्रस्तुत किया है; किंतु उनको रामदास का पुत्र और रुनकता में उनके जन्म लेने की बात न तो श्री गोकुलनाथ जी ने लिखी है और न श्री हरिराय जी ने। इसके साथ ही बिल्वमंगल वाली पुरानी कथा को भी इस ग्रंथ के टीकाकार ने सूरदास से संबंधित करने में 'हिचकिचाहट' नहीं की है। इस ग्रंथ के प्रस्तावना लेखक श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने जहाँ साहित्य-लहरी के काव्य पक्ष पर विद्वतापूर्ण विवेचन किया है, वहाँ सूरदास के जन्म, वंश, अंधत्व और निधन संबंधी वही पुराना मत प्रकट किया है, जो नवीन अनुसंधान से भ्रमात्मक सिद्ध हो चुका है। यदि इस ग्रंथ में साहित्य लहरी की टीका के अतिरिक्त 'वक्तव्य' आदि लिखने का कष्ट न किया जाता, तो अच्छा होता।

२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री

खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी प्रामाणिक सामग्री के प्राप्त होने की आशा की जा सकती है, किंतु ये साधन अभी तक अपूर्ण सिद्ध हुए हैं! खोज संबंधी अधिकांश कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। व्रज साहित्य मंडल द्वारा व्रज में और राजस्थान विश्वविद्यापीठ द्वारा राजस्थान में भी खोज का कुछ कार्य हुआ है। खोज रिपोर्टों के देखने से ज्ञात होता है कि उनमें सूरदास संबंधी सामग्री का बहुत कम उल्लेख है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में सूरसागर की कई प्रतियों के अतिरिक्त सूरदास की कुछ अन्य रचनाओं का भी विवरण दिया गया है, किंतु यह सामग्री नितांत अपर्याप्त है। यदि खोज का कार्य व्यवस्थित रूप से बड़े परिमाण में किया जाय, तो सूर संबंधी सामग्री यथेष्ट परिमाण में मिलने की आशा की जा सकती है।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में महाकवि सूरदास का उल्लेख होना अनिवार्य है, अतः उनमें सूर संबंधी सामग्री अवश्य मिलती है, किंतु वह

सामग्री जैसी प्रामाणिक होनी चाहिए थी, वैसी नहीं है । इसका कारण यही हो सकता है कि सूर संबंधी अध्ययन अभी अपूर्ण है और तत्संबंधी अनेक बातें अभी विवादग्रस्त हैं। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी आधुनिक सामग्री प्रचुर परिमाण में मिलती है । इस सामग्री का थोड़ा-बहुत विवेचन होना आवश्यक है ।

हिंदी साहित्य के इतिहास की आरंभिक सामग्री फ्रेंच लेखक गार्सेंद तासी लिखित 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदूए ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रंथ, शिवसिंह सेंगर लिखित 'सरोज' और उसी के आधार पर सर जार्ज ए० ग्रियर्सन लिखित 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान' नामक अंगरेजी ग्रंथ में उपलब्ध है। इन ग्रंथों में प्रमुख हिंदी कवियों का उल्लेख होने से प्रसंगवश सूरदास का भी विवरण दिया गया है, किंतु यह अपर्याप्त एवं अप्रामाणिक है। तासी के उल्लेख का आधार 'आईन-ए-अकबरी' है, जिसका सूरदास संबंधी कथन स्वयं अप्रामाणिक है। 'शिवसिंह सरोज' में भी सूरदास का संक्षिप्त एवं अप्रामाणिक वृत्तांत दिया हुआ है । इस ग्रंथ का निम्न लिखित उल्लेख विचारणीय है—

"इनका बनाया सूरसागर ग्रंथ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हजार तक देखे हैं। समग्र ग्रंथ कहीं नहीं देखा।'

सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी, यह जनश्रुति परंपरा से चली आ रही है, किंतु इतना अनुसंधान होने पर भी अब तक ८-१० हज़ार से अधिक पद उपलब्ध नहीं हुए हैं। इस संबंध में हम अपने विचार आगामी पृष्ठों में लिखेंगे।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मिश्रबंधु कृत 'मिश्रबंधु विनोद', श्री रामनरेश त्रिपाठी कृत 'हिंदी का संक्षिप्त इतिहास', श्री रामचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० श्यामसुंदर दास कृत 'हिंदी भाषा और साहित्य', पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास', श्री सूर्यकांत शास्त्री कृत 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', डा० रामशकर शुक्ल 'रसाल' कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', श्री ब्रजरत्न दास कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', मिश्रबंधु कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और श्री गुलाबराय कृत 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रमुख इतिहास ग्रंथों के विषय में आगे लिखा जाता है।

'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी साहित्य का इतिहास'(मिश्रबंधु)

हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व०मिश्रबंधुओं को हिंदी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय प्राप्त है। प्रथम प्रयास होने के कारण उसमें भ्रम और भूलों का रह जाना सर्वथा स्वाभाविक था, इसलिए उनके सूरदास संबंधी विवरण में भी कई त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं। उनका लिखा हुआ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' 'विनोद' की रचना के प्रायः २६ वर्ष पश्चात् सं० १९९६ में गंगा पुस्तक माला द्वारा प्रकाशित हुआ है, किंतु उसमें भी सूरदास संबंधी विवरण अपरिष्कृत रूप में 'विनोद' जैसा ही दिया गया है। इससे यह समझा जा सकता है कि या तो इसके लेखक अपने पूर्व मत पर दृढ़ हैं, अथवा उनको नवीन अनुसंधानों का पता नहीं था। उन्होंने सूरदास के पिता का नाम रामदास, जन्म संवत् १५४० और निधन संवत् १६२० लिखा है। उन्होंने सूरदास के ग्रंथों में नल-दमयंती' का भी नामोल्लेख किया है। उन्होंने ८ वर्ष की अवस्था से सूरदास का मथुरा में निवास करना लिखा है। । ये सब बातें यथेष्ट परिवर्तन और संशोधन की अपेक्षा रखती हैं।

हिंदी साहित्य का इतिहास (पं० रामचंद्र शुक्ल) हिंदी के समस्त इतिहास ग्रंथों में शुक्ल जी का इतिहास सबसे अधिक प्रसिद्ध और कदाचित सबसे अधिक श्रेष्ठ है। शुक्ल जी ने सूरदास के काव्य और उनकी भक्ति-भावना की बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। यह आलोचना भ्रमरगीत-सार और सूरदास नामक ग्रंथों में छप चुकी है। सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध में शुक्ल जी द्वारा कोई महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता है। उन्होंने इस संबंध में मिश्रबंधुओं का अनुकरण किया है। उन्होंने भी सूरदास के जन्म एवं निधन काल के संवत् क्रमशः १५४० और १६२० का अनुमान किया है। उन्होंने सूरदास के शरण-काल का संवत् अनुमानतः १५८० लिखा है* । नवीन सामग्री के अनुसंधान से ये सभी संवत् अप्रामाणिक सिद्ध हो गये हैं।

हिंदी भाषा और साहित्य (डा० श्यामसुंदर दास)-हिंदी का यह भी प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ है जिसमें भाषा और साहित्य का काल-क्रमानुसार वर्णन किया गया है। बाद में भाषा और साहित्य के अनुसार इसे दो स्वतंत्र

† 'मिश्रबंधु विनोद' (प्रथम संस्करण सं० १९७०) पृष्ठ २७० और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' [प्रथम संस्करण सं० १९९६) पृष्ठ ९७

* 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (संशोधित संस्करण संवत् २००२) पृष्ठ १३८, १३९

ग्रंथों में विभाजित कर दिया गया। 'हिंदी साहित्य' नामक ग्रंथ में विभिन्नकालीन परिस्थियों का बड़ा गंभीर विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ में सूरदास का विवरण अपेक्षाकृत क्रम दिया गया है। उन्होंने सूरदास के जन्म काल के संबंध में लिखा है—

"परंपरा के अनुसार इनका जन्म-काल सं० १५२६ माना जाता है‡।"

किंतु उन्होंने 'परंपरा' का स्पष्टीकरण नहीं किया है। उन्होंने सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं किया है।

हिंदी साहित्य का इतिहास—(डा० रसाल)—यह हिंदी का सबसे विशाल-काय इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' हैं। इसमें लेखक ने हिंदी के इतिहास की विभिन्न प्रवृत्तियों का योग्यता और विस्तार पूर्वक कथन किया है। सूरदास के संबंध में उन्होंने लिखा है—

"आपकी भी पूर्ण तथा यथार्थ जीवनी हमें प्राप्त नहीं। ८४ वैष्णवों की वार्ता के अनुसार आपका जन्म-स्थान रुनकता (रेणुका क्षेत्र) है, किंतु कोई कोई दिल्ली निकटस्थ सीही ग्राम को भी आपका जन्म-स्थान कहते है। वार्ता में इन्हें सारस्वत ब्राह्मण श्री रामदास जी का पुत्र कहा गया है। भक्तमाल में इनका ब्राह्मण होना तथा ८ वर्ष में इनका उपवीत होना लिखा है*।"

उपर्युक्त कथन में पर्याप्त संशोधन की आवश्यकता है, जैसा कि हम आगामी पृष्ठों में सिद्ध करेंगे। अन्य इतिहास ग्रंथों की तरह इसमें भी सूरदास का जन्म-काल संवत् १५४० और निधन-काल संवत् १६२० लिखा गया है।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा. रामकुमार वर्मा) यह हिंदी का सब से नवीन और महत्वपूर्ण इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामकुमार वर्मा हैं। यह इतिहास अभी पूर्ण नहीं हुआ है, किंतु भक्ति-काल तक का विवरण होने-से इसमें सूरदास का वर्णन आ गया है। अन्य इतिहास ग्रंथों की अपेक्षा इसमें सूरदास संबंधी सामग्री अधिक विस्तार पूर्वक दी गयी है।

---

‡ हिंदी साहित्य (चतुर्थ संस्करण संवत् २००३) पृष्ठ १८५

* हिंदी साहित्य का इतिहास (प्रथम संस्करण सं० १९८८) पृष्ठ २९०

इस सामग्री में सूरदास के जीवन वृत्तांत, उनके ग्रंथ और उनके काव्य-महत्व का विवेचन किया गया है। जीवन वृत्तांत की आलोचना बाह्य साक्ष्य के आधार पर की गयी है। 'साहित्य-लहरी' के वंश परिचय वाले पद तथा मुंशी देवीप्रसाद और बा० राधाकृष्णदास के उल्लेखों के कारण इसके लेखक सूरदास को भाट जातीय मान सकते थे, किंतु उक्त पद में 'विप्र' और 'ब्रह्मराव' दोनों विरोधी शब्दों का उल्लेख होने से उनको भी उक्त पद की प्रामाणिकता में संदेह है†। बाह्य साक्ष्य में सबसे अधिक महत्व चौरासी वार्ता को दिया गया है, जिसको उन्होंने प्रामाणिक ग्रंथ माना है‡। बाह्य साक्ष्य की अन्य सामग्री आईन-ए-अकबरी, मुंतखिबउलतवारीख मुंशियात अबुलफज़ल और गोसाईं चरित पर इस ग्रंथ में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। उन्होंने सूरदास के नाम अबुलफज़ल के पत्र को प्रामाणिक मानकर "सूरदास की मृत्यु श्रावण संवत् १६४२ के बाद§" मानी है। नवीन अनुसंधान से सिद्ध हो गया है कि अबुलफज़ल ने जिसे पत्र लिखा था, वह कोई अन्य सूरदास था, अतः सूरदास की मृत्यु सं० १६४० के बाद मानने का कोई कारण नहीं है। उन्होंने महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के निधन सवत् १५८७ के आधार पर लिखा है—

"सूरदास का आविर्भाव काल संवत् १५८७ के बाद ही मानना उचित है‖।"

यदि 'आविर्भाव' से लेखक का अभिप्राय सूरदास की प्रसिद्धि से है, तब भी उनका कथन प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है, क्यों कि वार्ता के अनुसार महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय में ही सूरदास यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे और महाप्रभु जी स्वयं "आओ सूरसागर!" कहकर सूरदास सन्मान करते थे। सूरसागर के रचना-काल के संबंध में उन्होंने लिखा है—

"सूरसागर का रचना-काल संवत् १५८७ के बाद ही होना चाहिए, जिस समय सूरदास श्री बल्लभाचार्य से दीक्षित हुए। दीक्षित होने से पहले वे 'घिघियाते' थे, बाद में भगवद् लीला वर्णन करने में समर्थ हुए। इसी भगवद् लीला वर्णन करने में उन्होंने सूरसागर की रचना की*।"

---

† हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण सं० १९९५) पृ० ६०५
‡ ,, ,, ,, पृ० ६११
§ ,, ,, ,, पृ० ६१६
‖ ,, ,, ,, पृ० ६१२
* ,, ,, ,, पृ० ६२३

लेखक का उक्त मत भ्रमात्मक है। सूरदास सं० १५८७ में बल्लभाचार्य जी से दीक्षित नहीं हुए थे, बल्कि वे इससे प्रायः २० वर्ष पूर्व सं० १५६७ में दीक्षित हो चुके थे। सं० १५८७ बल्लभाचार्य जी का निधन संवत् है, तब तक सूरदास सूरसागर के अधिकांश भाग की रचना कर चुके थे।

सूरदास के ग्रंथों का परिचय देते हुए उन्होंने उनके कुल १६ ग्रंथों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"इस प्रकार कुल मिलाकर सूरदास के नाम से १६ ग्रंथ हैं। इनमें से सूरसागर ही पूर्ण प्रामाणिक है। अन्य ग्रंथ सूरसागर के ही अंश हैं, या सूरसागर की कथावस्तु के रूपांतर। कुछ ग्रंथ तो अप्रामाणिक भी होंगे†।"

सूरदास के ग्रंथों के संबंध में हम आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री

भारतेन्दु बा० हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य में सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का आरंभ किया था। उनके पश्चात बा० राधाकृष्णदास, मुंशी देवीप्रसाद और बा० जगन्नाथदास रत्नाकर ने इस कार्य को और भी आगे बढ़ाया। हिंदी साहित्य के इतिहास की तरह इस कार्य को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय भी मिश्रबंधुओं को है। उन्होंने 'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी नवरत्न' लिख कर हिंदी कवियों की अध्ययनात्मक एवं आलोनात्मक सामग्री को प्रथम बार सुंदर रूप में उपस्थित किया। इस विषय के ये सब आरंभिक प्रयत्न थे, अतः उनमें वैज्ञानिक शैली का अभाव दिखलायी देता है। जब उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए इस प्रकार के साहित्य की माँग हुई, तब सूर संबंधी आलोचना और अध्ययन को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने की ओर विद्वानों का ध्यान गया। सुप्रसिद्ध समालोचक श्री रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास और जायसी के अतिरिक्त सूरदास पर भी वैज्ञानिक आलोचना लिखी। सूरसंबंधी वैज्ञानिक अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० धीरेन्द्र वर्मा को है। वर्मा जी ने अपने विद्यार्थियों को इस दिशा में प्रेरित कर सूर संबंधी साहित्य को प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत करा दिया है। उनकी चेष्टा का ही यह परिणाम है कि विश्वविद्यालयों के अध्यापक, शोधक और आलोचक अब सूर साहित्य प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील हैं। इस साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

† हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६२०

हिंदी नवरत्न (श्री मिश्रबंधु)—इस ग्रंथ में हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नौ महाकवियों का परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक विस्तृत विवरण है, जिसमें तुलसीदास के पश्चात् सूरदास को स्थान दिया गया है। यद्यपि 'विनोद' की अपेक्षा इसमें सूरदास का विस्तृत उल्लेख है, तथापि कवि के महत्व को देखते हुए अन्य कवियों की तुलना में सूरदास का अपेक्षाकृत कम वर्णन लिखा गया है। जो कुछ लिखा गया है, वह पुरानी मान्यताओं पर आधारित है, जैसा कि इस पुराने ग्रंथ में होना स्वाभाविक था। अब नवीन शोध के आधार पर संशोधन होना आवश्यक है।

सूरदास (डा० जनार्दन मिश्र)—इस अंगरेजी ग्रंथ में सूरदास के जीवन ग्रंथ, उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य और उनके धार्मिक सिद्धांतों का आलोचनात्मक विवरण दिया गया है। यद्यपि विद्वान लेखक ने इसके लिखने में यथेष्ट परिश्रम किया है, तथापि वे कोई महत्वपूर्ण नवीन सामग्री उपस्थित नहीं कर सके हैं।

सूर-साहित्य (पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी)—इस ग्रंथ के रचयिता हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान और विचारपूर्ण लेखक हैं। उन्होंने सूर-साहित्य के धार्मिक पक्ष की विद्वतापूर्ण एवं विवेचनात्मक आलोचना की है, किंतु उन्होंने सूर के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों का समीक्षात्मक विवरण नहीं दिया है। उन्होंने सूर-साहित्य के काव्य पक्ष पर भी विशेष प्रकाश नहीं डाला है। द्विवेदी जी जैसे प्रकांड विद्वान इस विषय पर विस्तार पूर्वक लिखते तो अच्छा था।

भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास (श्रीनलिनीमोहन सान्याल)—इस ग्रंथ में सूरदास के काव्य की समालोचना की गयी है। सूरदास का जीवन-चरित्र अत्यंत संक्षिप्त रीति से केवल ५ पृष्ठों में लिखा गया है। इसमें लेखक ने प्रायः मिश्रबंधुओं के मत का अनुकरण किया है। सूरदास के ग्रंथों के विषय में इस पुस्तक में कुछ भी नहीं लिखा गया है।

इस पुस्तक में सूरसागर के काव्य-महत्व पर संक्षिप्त एवं सरल रीति से प्रकाश डाला गया है। इसमें वात्सल्य, माखनचोरी, संयोग शृंगार, रासलीला, भ्रमरगीत विषयक सूरदास के काव्य-सौष्ठव का परिचय दिया गया है।

सूर : एक अध्ययन (श्री शिखरचंद्र जैन)—सूर-साहित्य के विद्यार्थी को साधारण ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है, किंतु इसमें सूर संबंधी आलोचना एवं अध्ययन की कोई महत्वपूर्ण सामग्री नहीं है।

सूर-साहित्य की भूमिका (श्री रामरतन भटनागर और श्री वाचस्पति त्रिपाठी)—दो विद्वान लेखकों ने इस आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना की है। सूर संबंधी अन्य पुस्तकों की अपेक्षा इस पुस्तक में महत्वपूर्ण सामग्री अधिक परिमाण में उपलब्ध है। आरंभ में लेखकों ने सूरदासकी जीवनी पर प्रकाश डाला है। वाह्य साक्ष्य के रूप में 'साहित्य लहरी' के वंश-परिचय वाले पद और 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता' पर विचार करते हुए उन्होंने चौरासी वार्ता को प्रामाणिक मान कर साहित्य लहरी के उक्त पद को अविश्वसनीय माना है †। उन्होंने सूरदास को जन्मांध न मान कर वृद्धावस्था में उनके नेत्र विहीन हो जाने का अनुमान किया है। उन्होंने सूरदास का जन्म संवत् १५४० और जन्म स्थान ब्रज प्रदेश लिखा है*, किंतु इसका निश्चित प्रमाण नहीं दिया है। उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण संवत् १५७६ को सूरदास का शरण-काल बतलाया है‡, जो कि अनुसंधान से अप्रामाणिक सिद्ध हो गया है।

सूरदास के ग्रंथों का विवेचन करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है—

"केवल सूरसागर ही प्रामाणिक ग्रंथ है। अन्य ग्रंथ या तो उन्होंने लिखे ही नहीं, या ये सूरसागर के ही अंग हैं¶।"

उन्होंने डा० धीरेन्द्र वर्मा के लेख के आधार पर भागवत और सूरसागर की विस्तार पूर्वक तुलना करते हुए, सूरसागर के अधिकांश भाग को भागवत के आंशिक अनुवाद के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने लीला-गायन विषयक पदों की अपेक्षा विनय के पदों को सूरदास की मौलिक रचना और सूरसागर का प्रधान भाग माना है। सूरसागर की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—

"अंत में हमें यह कहना है कि सूरसागर के मौलिक और महत्व-पूर्ण भाग प्रथम स्कंध के वे पद हैं, जो विनय के नाम से प्रसिद्ध है तथा संपूर्ण दशम स्कंध पूर्वार्द्ध और अन्य स्कंधों में बिखरे हुए भक्ति, गुरु-महिमा आदि विषयों के पद हैं। वास्तव में ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अंग कहे जा सकते हैं, जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति-भावना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं*।"

---

† सूर-साहित्य की भूमिका (द्वितीय संस्करण सं० २००२) पृष्ठ ११

* ,, ,, ,, पृष्ठ १८

‡ ,, ,, ,, पृष्ठ १८

¶ ,, ,, ,, पृष्ठ २२

* ,, ,, ,, पृष्ठ ४३

हम लेखक के इस मत से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। हम विनय आदि के पदों को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उन्हें सूरदास की सर्वोत्तम रचना और उन्हें सूरसागर के प्रधान अंग के रूप में स्वीकार करने में असमर्थ हैं। सूरसागर और भागवत का क्या संबंध है, एवं सूरसागर के प्रधान अंग कौन से पद हैं, इस संबंध में हम अपने विचार आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

इस ग्रंथ में लेखकों ने अनेक विषयों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है, किंतु निर्णयात्मक प्रवृत्ति का सर्वत्र अभाव दिखलायी देता है। उन्होंने अधिकांश विषयों को संदिग्धता के पारावार में डूबते-उतराते हुए छोड़ दिया है।

सूर : जीवनी और ग्रंथ (श्री प्रेमनारायण टंडन)—इस छोटी सी पुस्तिका में सूरदास के जीवन वृत्तांत और उनके ग्रंथों का विवरण दिया गया है। इसमें विद्यार्थियों के उपयोग के लिए सूर संबंधी पुरानी बातें एक स्थान पर संकलित कर दी गयी हैं। इससे सूरदास के संबंध में कोई महत्वपूर्ण बात ज्ञात नहीं होती है।

सूर-सौरभ (श्री मुंशीराम शर्मा)—यह पुस्तक दो भागों में समाप्त हुई है। यह सूरदास के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इसके विद्वान लेखक ने सूर संबंधी अनेक विषयों पर मौलिक एवं क्रांतिकारी विचार प्रकट किये हैं। इस ग्रंथ के लेखक से हम लोगों को जिन बातों पर मतभेद है, उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। उनके मत का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) उन्होंने 'सारावली' और 'साहित्यलहरी' दोनों को सूरदास की रचनाएँ माना हैं और साहित्यलहरी के वंश-परिचय वाले पद को भी उन्होंने प्रामाणिक माना है। उक्त पद को प्रामाणिक मानते हुए भी वे सूरदास को भाट न मानकर ब्राह्मण मानते हैं ‡।

(२) 'सारावली' के 'सरसठ बरस' वाले कथन के आधार पर वे सूरदास की ६७ वर्ष की आयु में उक्त ग्रंथ की रचना न मान कर उस आयु में बल्लभाचार्य जी द्वारा दीक्षित होने की बात लिखते हैं *।

(३) वे सूरदास के पिता का नाम रामदास और उसके मुसलमान हो जाने की कल्पना करते हैं †।

---

‡ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १३, ३२

* ,, ,, पृ० ५, ५३

† ,, ,, पृ० १६, ६४, द्वितीय भाग पृ० ३४

(४) वे सुबल संवत् के कारण 'साहित्य लहरी' का रचना-काल सं० १६२७ और सरस संवत् के आधार पर सूरदास का जन्म सं० १५१५ मानते हैं* ।

(५) उनका मत है कि बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले सूरदास गृहस्थ थे। वे पहले शैव, तत्पश्चात् स्वामी हरिदास के शिष्य हुए थे‡ ।

(६) वे सं० १६२८ के पश्चात् सूरदास का जीवित रहना स्वीकार नहीं करते हैं❀ ।

सूरदास (डा० ब्रजेश्वर वर्मा)—यह ग्रंथ सूरदास पर लेखक की 'थीसिस' के रूप में लिखा गया है । डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार यह 'महाकवि सूरदास की जीवनी तथा काव्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है ।' यह ग्रंथ है भी बड़ा महत्वपूर्ण, किंतु हम इसकी अनेक बातों से पूर्णतया सहमत नहीं हैं । वे 'सूरदास की जाति और जन्मभूमि के विषय में श्री हरिराय जी का विवरण निस्संकोच एवं निर्णयात्मक रूप में' स्वीकार नहीं करते हैं० । सूरदास और बल्लभाचार्य का समवयस्क होना असंभव मान कर उनको सूरदास की जन्म तिथि वैशाख शु० ५ सं० १५३५ संतोषजनक ज्ञात नहीं होती है$ । उन्होंने 'सूरसागर' और 'सारावली' की रचना शैली में २७ अंतर स्थापित कर सारावली को सूरदास की रचना स्वीकार नहीं किया है † । वे 'साहित्य लहरी' को भी सूरदास की रचना नहीं मानते हैं* ।

सूरदास : एक अध्ययन (श्री रामरतन भटनागर)—'सूर साहित्य की भूमिका' के पश्चात् भटनागर जी की सूर संबंधी यह दूसरी रचना भी महत्वपूर्ण है । इसे सूरदास का अध्ययन न कह कर 'सूरसागर' का अध्ययन

---

* सूर-सौरभ, प्रथम भाग पृ० ८

‡ ,, ,, पृ० ३८, ३९, ४०, ४१, ४४ द्वितीय भाग पृ० ४८

❀ ,, ,, पृ० ६०

० सूरदास, पृ० ३१

$,, पृ० ४१

† ,, पृ० ७५, ८३

* ,, पृ० ९६

कहना चाहिए, क्यों कि उसी के आधार पर सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन किया गया है। इसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों की प्रामाणिकता की जाँच नहीं की गयी है। ग्रंथ के अंत में चार पृष्ठों वाले परिशिष्ट में इनकी सूचना मात्र दे दी गयी है। इसमें उन्होंने पुरानी बातों को दुहराते हुए तद्विषयक 'निर्णयात्मक खोज' न कर सकने का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है‡।

अष्टछाप–परिचय (प्रभुदयाल मीतल)–इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक की रचना होने के कारण इस पर कुछ कहने का हमको अधिकार नहीं है। यहाँ पर केवल यह बतलाना है कि इसमें उल्लिखित सूर संबंधी मत इस ग्रंथ के सर्वथा अनुकूल है।

इस ग्रंथ में अष्टछाप के आठों कवियों का आलोचनात्मक जीवन-वृत्तांत और उनके काव्य का संकलन किया गया है। अष्टछाप के मुकुटमणि होने के कारण इसमें सूरदास पर विशेष रूप से लिखा गया है। सूरदास पर लिखते हुए लेखक ने सूर संबंधी प्रायः समस्त सामग्री का अनुशीलन कर अपना मत निर्धारित किया है।

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (डा० दीनदयाल गुप्त)—यह अपने विषय की महत्वपूर्ण और सब से नवीन प्रकाशित रचना है। इसे डा० गुप्त ने 'थीसिस' के रूप में कई वर्ष पहले लिखा था, किंतु यह पुस्तक के रूप में अभी प्रकाशित हुई है। यह ग्रंथ लेखक के प्रचुर परिश्रम और गंभीर अध्ययन का परिणाम है। वल्लभ संप्रदाय और वार्ता साहित्य की जिन रचनाओं के आधार पर हमने अपने निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें से अधिकांश का उपयोग डा० गुप्त ने भी किया है; फिर भी कई विषयों में हमारा उनसे मतभेद है। हमने आगामी पृष्ठों में यथा स्थान इस मतभेद का उल्लेख किया है। इस विशाल-काय ग्रंथ में सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है और 'थीसिस' की निर्दिष्ट सीमाओं के कारण इसमें सूरदास के काव्य पर तो कुछ भी नहीं लिखा गया है। यह सब होने पर भी इसमें सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री का समावेश है।

यहाँ पर कुछ ऐसी बातों पर प्रकाश डाला जाता है, जिनसे हमारा मतभेद है —

---

‡ सूरदास : एक अध्ययन, पृ० २४७

(१) उन्होंने बल्लभाचार्य जी की प्रथम यात्रा में विद्यानगर का शास्त्रार्थ और कनकाभिषेक का होना लिखा है†, जब कि ये दोनों कार्य उनकी तृतीय यात्रा में हुए थे‡।

(२) उन्होंने बल्लभाचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी का देहावसान सं० १५९५ में लिख कर उनके जीवन काल में ही उनके एक मात्र पुत्र पुरुषोत्तम जी के देहावसान का उल्लेख किया है§, जब कि गोपीनाथ जी का निधन संवत् १५९९ है और पुरुषोत्तम जी का देहावसान अपने पिता के पश्चात् सं० १६०६ में हुआ था‡।

(३) श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश को प्रामाणिक मान कर भी वे सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं करते हैं। उनका मत है कि सूरदास के "जन्मांध होने के प्रमाण उनकी रचनाओं में नहीं मिलते*।" सूरदास के काव्य-कौशल के कारण अन्य लेखकों ने उनकी वृद्धावस्था में नेत्र विहीन होने का अनुमान किया है, किंतु इस ग्रंथ में वे उनकी बाल्यावस्था में ही अंधे होने की कल्पना करते हैं$।

---

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० ७०

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० ६

§ अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० ७५

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० २०, २१, २३

* अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृष्ठ ८२

$,, ,, पृष्ठ २०२

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र-निर्णय

नाम— ★

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में उनके पाँच नाम मिलते हैं— सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं सूरसुजान, सूरसरस, सूरजश्याम और सूरजश्याम सुजान नाम भी मिलते हैं। यहाँ पर यह विचारणीय है कि ये सभी नाम एक ही व्यक्ति के हैं, अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के। डा० जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रंथ 'सूरदास' में सूरज, सूरजदास और सूरश्याम के नाम से मिलने वाले पदों को प्रक्षिप्त बतलाया है। इसका यह अभिप्राय है ये नाम सूरदास से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के हैं। उन्होंने अपने उक्त मत के समर्थन में कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं दिया है‡। डा० दीनदयाल गुप्त इस मत के विरुद्ध उपर्युक्त नामों को सूरदास के ही नाम मानते हैं। उनका कथन है कि—

"उक्त छाप के पद बल्लभ-संप्रदायी प्राचीन संग्रहालयों में भी उपलब्ध होते हैं और उन पदों में सूर के सांप्रदायिक विचारों की छाप है†।"

श्री मुंशीराम शर्मा ने इन नामों पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। उनका मत है कि ये सभी नाम महाकवि सूरदास के ही हैं। इनका मत है—

"पद-रचना में जहाँ जैसा उपयुक्त जान पड़ा और पद के अनुकूल बैठ गया, वहाँ वैसा ही नाम उन्होंने प्रयुक्त कर दिया है। सुजान, सरस आदि शब्द भी भाव भरित उमंग की लपेट में इसी प्रकार प्रयुक्त हो गये हैं। जो लीला ही सरस हो और सुजान श्याम से संबंध रखने वाली हो, उसमें ऐसे शब्दों का आ जाना स्वाभाविक है‡।"

श्री मुंशीराम शर्मा ने 'सूरसागर' और 'साहित्य लहरी' के ऐसे पदों को उद्धृत किया है, जिनकी टेक एक सी है, किंतु उसमें नाम भिन्न-भिन्न हैं। इससे उन्होंने यह अनुमान किया है—

---

‡ सूरदास, पृष्ठ ७

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ १९६

‡ सूरसौरभ द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०

"सूर के पद विभिन्न गायकों के हाथों में पड़ कर अपने मूल रूप से कुछ भिन्न भी हो गये हैं। संभव है इन गायकों ने अपनी रुचि के अनुकूल उनमें सूर के प्रसिद्ध उपनामों में से कहीं सूर, कहीं सूरदास, कहीं सूरश्याम और कहीं सूरसुजान उपनाम रख दिये हों। पद की पंक्ति को थोड़ा इधर उधर कर देने से ये सभी उपनाम उसमें खप जाते हैं। इसके अतिरिक्त सूरसागर में कई स्थलों पर एक क्रमबद्ध प्रसंग के ही भीतर सूर, सूरज, सूरश्याम आदि उपनाम के पद आते हैं; जैसे दशमस्कंध के पृष्ठ २०६ पर 'यज्ञपत्नी वचन' शीर्षक कथानक में†।"

भाषा और भावों के साम्य के कारण हम भी इन सभी छाप वाले पदों को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि उनका मूल नाम क्या है। साहित्य लहरी के पूर्वोक्त पद से ज्ञात होता है कि उनका मूल नाम सूरजचंद था। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने उनका नाम सूरजदास एवं सूर रखा*। साहित्य लहरी के इस पद की अप्रामाणिकता के कारण इसका कथन पूर्णतया माननीय नहीं है, फिर भी इससे सूरदास के इन नामों की एकता तो सिद्ध होती ही है। हमारा अनुमान है कि उनका नाम 'सूरज' था। सूरज का लघु रूप सूर है। फिर वैष्णवता के कारण सूरजदास, सूरदास अथवा सूरश्याम नाम पड़ गये। सूरजचंद नाम का कहीं पर भी प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए भी साहित्य लहरी का कथन उचित ज्ञात नहीं होता है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी, गोकुलनाथ जी एवं अष्टसखाओं के समकालीन वृंदावन निवासी प्राणनाथ कवि ने स्वरचित 'अष्टसखामृत' में लिखा है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही सर जल-जात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात॥
कहा बड़ाई कर सकै, जाकौ प्रकट प्रकास।
श्री बल्लभ के लाड़िले, कहियत सूरजदास॥

---

† सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५१, ५२

* भयौ सातौं नाम सूरजचंद मंद निकाम॥
\+ \+ \+
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम॥

—'साहित्य लहरी' पद सं० १।८

इससे ज्ञात होता है कि उनका नाम सूरजदास था, किंतु लोक में वे सूर के नाम से विख्यात हुए। उनकी रचनाओं में उनके मुख्य नाम ५ मिलते हैं— सूरज, सूरजदास, सूर, सूरदास और सूरश्याम; किंतु लोक में और उनकी कविताओं में सूर अथवा सूरदास नाम ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण हरिराय जी ने अपने भाव प्रकाश में इस प्रकार बतलाया है—

"श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होय सो रण में सों पाछौ पाँव नाँहि देय, जो सबसों आगै चलै। तैसेई सूरदास जी की भक्ति दिन-दिन चढ़ती दिसा भई। तासों श्री आचार्यजी आप 'सूर' कहते।

और श्री गुसाईं जी आप 'सूरदास' कहते। सो दास भाव में कबहू घटै नाँही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयौ, त्यों त्यों सूरदास जी कों दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी कों कबहूँ अहंकार मद नाँही भयौ। सो 'सूरदास जी' इनकौ नाम कहे।"

उक्त उद्धरण से ज्ञात होगा कि श्री बल्लभाचार्य जी और गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा सूर एवं सूरदास नामों से संबोधन किये जाने से उनके ये दोनों नाम ही लोक में अधिक प्रसिद्ध हो गये। सूरदास ने भी अपनी रचनाओं में इन्हीं दोनों नामों का विशेष प्रयोग किया है।

जन्म भूमि और निवास स्थान—

'साहित्य-लहरी' के वंश-परिचय वाले पद में सूरदास के पिता का निवास स्थान आगरा के निकटवर्ती 'गोपाचल' लिखा गया है†, किंतु इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि सूरदास का जन्म स्थान भी वही था। सूरदास की रचनाओं की भाषा और परंपरागत जन श्रुतियों के आधार पर कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान ब्रज प्रदेश में मानते हैं। उनकी मान्यता का आधार मियाँसिंह कृत 'भक्त-विनोद' का निम्न लिखित कथन भी हो सकता है—

"मथुरा प्रांत विप्रवर गेहा। भो उत्पन्न भक्त हरि नेहा॥"

मूल चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले सूरदास आगरा-मथुरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते थे। उक्त वार्त्ता में भी गऊघाट को उनका जन्म स्थान नहीं बतलाया

† आगरे रहि गोपचल में रह्यौ ता सुत वीर।

गया है। श्री मुंशीराम शर्मा साहित्य-लहरी के 'गोपाचल' को चौरासी वार्ता का 'गऊघाट' मानते हैं$ । उनका कथन अनुमान और नाम-साम्य पर आधारित है। इसके अतिरिक्त साहित्य-लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण गोपाचल को महत्व नहीं दिया जा सकता। हिंदी के कुछ माननीय इतिहासकारों ने भ्रम वश रुनकता को सूरदास का जन्म स्थान लिख दिया था। रुनकता वार्ता में उल्लिखित गऊघाट के निकट स्थित है, इसीलिए शायद उक्त विद्वानों को भ्रम हो गया था, किंतु उन्होंने अपनी रचनाओं के नवीन संस्करणों में उसे दूर कर दिया है†। हमारे विचार से गोपाचल, रुनकता और गऊघाट को सूरदास के जन्म स्थान मानने का तो कोई प्रमाण मिलता ही नहीं है, मथुरा प्रांत अथवा ब्रजमंडल के किसी स्थान को भी किसी प्रामाणिक सूत्र के अभाव में उनका जन्म स्थान नहीं माना जा सकता।

श्री हरिरायजी ने चौरासी वार्ता के भावप्रकाश में सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती 'सीहीं' नामक ग्राम को बतलाया है। बा० राधाकृष्णदास ने सीहीं को मथुरा प्रांत के अंतर्गत लिखा था, किंतु उनका यह कथन भ्रमात्मक है। हरिराय जी ने सीहीं की स्थिति बतलाते हुए कहा है—

"दिल्ली के पास चार कोस उरे में एक सीहीं ग्राम है, जहाँ परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ कियौ है‡।"

हरिराय जी के इस कथन की पुष्टि उनके पूर्वज गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि के निम्न लिखित कथन से भी होती है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीहीं सर जल-जात।
सारसुती-दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात† ॥

ऐसी दशा में हम सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती सीहीं नामक ग्राम को मानने के लिए विवश हैं। हिंदी के माननीय इतिहासकार भी अब इसी मत को प्रामाणिक मानने लगे हैं*।

$ सूर-सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १८, १९

† डा० श्यामसुंदरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के नवीन संस्करण।

‡ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में 'अष्टसखान की वार्ता' पृ० २

† अष्टसखामृत

* डा० श्यामसुंदरदास कृत 'हिंदी साहित्य' (चतुर्थ संस्करण २००३) पृ० १८१

हरिराय जी के कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक सीहीं ग्राम में रहे। इसके उपरांत वे अपने माता-पिता से अलग होकर सीहीं से चार कोस दूर एक स्थान पर तालाब के किनारे रहने लगे। वहाँ पर वे अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे। उस समय उनको संसार से वैराग्य हो गया। वे सब कुछ वहीं पर छोड़ कर ब्रज की ओर चल दिये और मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे। बहिःसाक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वे वहाँ पर अपनी इक्तीस वर्ष की आयु तक रहे। इसके उपरांत श्री बल्लभाचार्य जी के सेवक होकर वे उनके साथ गोवर्धन को चले गये। वहाँ पर वे अपनी अंतिम अवस्था तक रहे। वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि वे कभी-कभी मथुरा और गोकुल जाते थे; किंतु वे कभी ब्रज से बाहर किसी अन्य स्थान को भी गये, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यही अनुमान होता है कि ब्रज में आने के पश्चात् वे फिर जीवन पर्यंत वहीं पर रहे। वार्ता से ज्ञात होता है कि वे एक बार अकबर बादशाह से मिले थे, किंतु यह भेंट भी मथुरा में ही हुई थी।

भगवान् श्री कृष्ण की रास-स्थली होने के कारण गोवर्धन के निकटवर्ती परासौली ग्राम के प्रति उनका आकर्षण था और इसी कारण वे वहाँ पर रहते थे। उनका देहावसान भी परासौली में ही हुआ। इस स्थान पर उनकी कुटी अभी तक बनी हुई है।

जन्म तिथि—

पुष्टि संप्रदाय में परंपरा से यह मान्यता चली आ रही है कि सूरदास श्री बल्लभाचार्य जी से आयु में दस दिन छोटे थे। आचार्य जी का जन्म दिवस सं० १५३५ की वैशाख कृ० १० उपरांत ११ रविवार निश्चित है, अतः सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५* मंगलवार हुई। इस तिथि का उल्लेख अन्य प्रमाणों से भी इस प्रकार प्राप्त होता है—

---

*उस वर्ष वैशाख शु० ३ का क्षय था, इसलिए पंचमी मंगलवार को थी। दस दिन की गणना रविवार और दशमी से करनी चाहिए। जन्म की तिथि धर्मशास्त्र के अनुसार तत्काल व्यापिनी मानी जाती है, किंतु उस दिन उदयात् तिथि दशमी ही थी।

श्री बल्लभाचार्य जी के वंशज श्री गोपिकालंकार 'मट्टू जी महाराज' काव्योपनाम 'रसिकदास' ने सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख निम्न लिखित पद में किया है। मट्टू जी महाराज का जन्म गोवर्धन-जतीपुरा में सं० १८७६ हुआ था। उक्त पद का आरंभिक अंश इस प्रकार है—

प्रगटे भक्त सिरोमनिराय।
माधव सुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठी† अधिक सुखदाय॥

उपर्युक्त कथन की पुष्टि मट्टू जी महाराज के पूर्ववर्ती श्री द्वारकेश जी (जन्म सं० १७५१) भावना वालों द्वारा रचित 'भाव संग्रह' के निम्न उद्धरण से इस प्रकार होती है—

"सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते।"

उपर्युक्त उद्धरण से भी प्राचीन प्रमाण 'निज वार्ता' का है। इसमें गासाईं श्री गोकुलनाथ जी (जन्म सं० १६०८) ने सूरदास की जन्म तिथि के विषय में इस प्रकार कथन किया है—

"सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु कौ प्रागटय भयौ है, तब इनकौ जन्म भयौ है। सो श्री आचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हते।"

ऐसी प्रसिद्धि है कि श्री हरिराय जी ने भी अपने वचनामृतों में सूरदास को आचार्य जी महाप्रभु से दस दिन छोटे होने का उल्लेख किया है। इसकी पुष्टि हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती धौल की निम्न पंक्ति से भी होती है—

"आ तारा थी ए दिवस दस महान जो*।"

यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि जब गो० गोकुलनाथ जी कृत 'निज वार्ता' में सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख है, तो उनके द्वारा कथित 'चौरासी वार्ता' में और हरिराय जी कृत चौरासी वार्ता के भावप्रकाश में सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख क्यों नहीं हुआ है? इसके समाधान के

---

† सूरदास के जन्म की निश्चित घड़ी अज्ञात होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उनका जन्म पचमी में हुआ या पंचमी उपरांत छट्ठ में, अतः उदयात पंचमी मानना ही अधिक समीचीन है।

* यह समस्त धौल बहिःसाक्ष्य पृ० ३१ पर दिया जा चुका है।

लिए उक्त महानुभावों की रचना-शैली के अध्ययन की आवश्यकता है। गो० गोकुलनाथ जी और श्री हरिराय जी के ग्रंथों का सुचारु रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे दोनों महानुभाव जिस बात को किसी एक ग्रंथ में कहते थे, उसको यथासाध्य दूसरे में दुहराते नहीं थे। इसके साथ ही तिथि-संवत् आदि पर तो वे बहुत ही कम ध्यान देते थे। उदाहरण के लिए दो-एक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। गो० गोकुलनाथ जी ने 'श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्रागट्य-वार्ता' में आचार्य जी के प्राकट्य-संवत् का कथन किया है, किंतु उन्होंने 'निज वार्ता' में महाप्रभु जी के प्राकट्य-वृत्तांत का कथन करते हुए भी उनका प्राकट्य संवत् नहीं बतलाया है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु जी की 'निज वार्ता' में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य संवत् का कथन होने से स्वयं गोस्वामी जी की 'निजवार्ता' में उसका उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार श्री हरिराय जी के वचनामृतों में सूरदास के दस दिन छोटे होने का कथन होने से 'चौरासी वार्ता' एवं भावप्रकाश में इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी होगी।

बल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के इतिहास की संगति से 'सूरसारावली' का रचनाकाल सं० १६०२ स्पष्ट होता है। उस समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की थी। १६०२ में से ६७ कम कर देने से १५३५ रहते हैं, अतः अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास का जन्म संवत् १५३५ ही सिद्ध होता है।

डा० दीनदयाल गुप्त ने इस संबंध में खोज करते हुए अपना नाथद्वारे का अनुभव इस प्रकार लिखा है—

"श्रीनाथद्वारे में सूरदास जी का जन्मोत्सव श्री बल्लभाचार्य जी के जन्म दिन वैसाख बदी ११ के बाद वैसाख सुदी ५ को मनाया जाता है। सूर के इस जन्म दिवस का मनाने का उत्सव संप्रदाय में नया नहीं है, यह परंपरा बहुत प्राचीन है❀।"

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैसाख शु० ५, मंगलवार सिद्ध होती है। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान मिश्र-बंधुओं ने सूरदास का आनुमानिक जन्म संवत् १५४० लिखा था, जिसका अनुकरण हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने किया है। अब इस आनुमानिक मत के संशोधन की आवश्यकता है।

---

† पृष्ठ सं० १७

❀ अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृ० २१२

वंश-परिचय—

साहित्य-लहरी के तथा-कथित वंश-परंपरा वाले पद के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से सूरदास का वंश-परिचय प्राप्त नहीं होता है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य और मूल चौरासी वार्ता से भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है। नाभा जी एवं प्रियदास ने क्रमशः 'भक्तमाल' और उसकी टीका में अनेक भक्त कवियों के जीवन-वृत्तांत का कथन किया है, किंतु सूरदास के वंश के संबंध में वे भी मौन हैं। नाभा जी ने सूरदास के कवित्व और उनकी भक्ति की प्रशंसा की है, किंतु जीवन-वृत्तांत पर उन्होंने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। साहित्य-लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण उसमें दिया हुआ वंश-परिचय भी अप्रामाणिक है, अतः उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

ऐसी दशा में सूरदास की वंश-परंपरा जानने का कोई साधन नहीं है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी बाल्यावस्था में ही घर से निकल पड़े थे और फिर जीवन भर विरक्त रहे। वे स्वयं अपने भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थे, अतः इस संबंध में उन्होंने कभी कुछ प्रकट नहीं किया। उनके समकालीन तथा परवर्ती व्यक्तियों को भी इस संबंध में जानने का कोई साधन नहीं रहा, अतः यह विषय अभी तक अज्ञानांधकार के आवरण से ढका हुआ है। संभवतः भविष्य में भी इस पर प्रकाश न पड़ सके!

श्री हरिराय जी ने वार्ताओं पर भावप्रकाश लिखते हुए अनेक भक्तों के जीवन-वृत्तांत प्रकट करने की भी चेष्टा की है; किंतु उन्होंने सूरदास का वंश-परिचय विस्तार पूर्वक नहीं लिखा है। यदि साहित्य-लहरी में स्वयं सूरदास द्वारा कथित वंश-परिचय होता, तो हरिराय जी उसका अवश्य उपयोग करते। उक्त पद की अप्रामाणिकता का यह भी एक कारण है, जैसा पहले लिखा जा चुका है।

श्री हरिराय जी के भावप्रकाश से केवल इतना ज्ञात होता है कि सूरदास का पिता एक अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण था। उसके चार पुत्रों में से सबसे छोटे सूरदास थे। हरिराय जी ने सूरदास के पिता का नामोल्लेख नहीं किया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि साहित्य-लहरी के जिस पद में सूरदास के तथा-कथित पूर्वजों के नाम लिखे गये हैं, उसमें भी उनके पिता का नाम नहीं दिया गया है। उक्त पद और उसमें दी हुई वंशावली की प्रामाणिकता में विश्वास करने वाले श्री मुंशीराम जी शर्मा इसका कारण यह बतलाते हैं कि सूरदास का पिता अपने छै महा बलवान पुत्रों को मुसलमानों

की युद्धाग्नि में झोंक कर भी आप मुसलमान हो गया था! संभवतः वह इच्छा से नहीं, बलात् मुसलमान बना लिया गया था। उसका यह कृत्य सूरदास को लज्जाजनक ज्ञात होता था, अतः उन्होंने उसका नाम देना भी उचित नहीं समझा‡!

अकबर के सुप्रसिद्ध दरबारी अबुलफ़ज़ल ने 'आईन-ए-अकबरी' में अकबरी दरबार के संगीतज्ञों के नाम लिखे हैं। उनमें ग्वालियर निवासी बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास का भी नामोल्लेख किया गया है। अलबदाउनी ने 'मुंतखिब उल-तवारीख़' में लिखा है, रामदास सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन के समान ही विख्यात कलाकार था, जो अकबर और ख़ानख़ाना से प्रचुर धन प्राप्त करता था।

अबुलफ़ज़ल और अलबदाउनी के रामदास और उसके पुत्र सूरदास को डा० ग्रियर्सन ने भ्रमवश अष्टछापी सूरदास और उनका पिता समझ लिया था। यही भूल बाद के कई लेखकों ने भी की है। अकबर सं० १६१३ में गद्दी पर बैठा था। आरंभिक १०-१५ वर्ष उसे अपने शासन को सुदृढ़ बनाने में लगे थे। उसके दरबार में कलाकारों का सन्मान इसके बाद ही संभव था। तानसेन भी अकबर के दरबार में सं० १६२१ में आया था। उस समय स्वयं सूरदास की आयु प्रायः ६० वर्ष की थी। यदि रामदास को सूरदास का पिता मान लिया जाय, तो उस अवस्था के अति वृद्ध पुरुष का अकबरी दरबार में पहुँचना और तानसेन के समान आदर पाना कैसे संभव हो सकता है! फिर उस रामदास के पुत्र सूरदास को भी अकबरी दरबार का नियमित गायक बतलाया गया है। हमारे सूरदास की एक बार अकबर से भेंट अवश्य हुई थी, किंतु उनका अकबरी दरबार से कतई संबंध नहीं था। अकबर से भेंट होने पर भी उन्होंने उससे पुनः मिलने की अनिच्छा प्रकट की थी। सूरदास जैसे विरक्त और सर्वस्व-त्यागी महानुभाव का अकबरी दरबार से संबंध हो भी कैसे सकता था! यही कारण है कि सूरदास के पिता को रामदास बतला कर उसे अकबरी दरबार का गायक बतलाना एक दम भ्रमात्मक कथन है।

श्री मुंशीराम शर्मा अकबर के गायक रामदास को अष्टछापी सूरदास का पिता न मानते हुए भी उनके पिता का नाम रामदास ही मानने का आग्रह करते हैं। उन्होंने लिखा है —

H2158

‡ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १६

"पं० नानूराम भट्ट से प्राप्त हुई वंशावली के आधार पर महा-महोपाध्याय पंडित हरिप्रसाद जी शास्त्री ने सूर के पिता का नाम रामचंद्र लिखा है, जो वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन जाता है। ....सूर के पिता का नाम भी यही था*।"

पं० नानूराम भट्ट की वंशावली और महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद जी शास्त्री का मत भी साहित्य-लहरी की वंशावली और डा० ग्रियर्सन के मत के समान अप्रामाणिक एवं भ्रमात्मक है, अतः उनके कथन को भी प्रमाण कोटि में नहीं लिखा जा सकता। ऐसी दशा में सूरदास के पिता का भी नाम निश्चय करने का कोई साधन नहीं है।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि सूरदास का प्रामाणिक वंश परिचय प्राप्त नहीं है। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के पुत्र थे तथा उनके तीन भाई और थे, इसके अतिरिक्त कोई अन्य बात ज्ञात नहीं है। उनकी वंश-परंपरा, उनके पूर्वजों के नाम, यहाँ तक कि उनके पिता एवं भाइयों के नाम भी अज्ञात हैं।

जाति—

सूरदास की जाति के विषय में कई मत प्राप्त हैं। इन मत-दाताओं में से कतिपय उनको भाट, ढाढ़ी अथवा जाट जैसी निम्न जाति का मानते हैं, और सूरदास के पदों के अंतःसाक्ष्य से ही अपने-अपने मतों की पुष्टि भी करते हैं! यहाँ हम उनके मतों की समीक्षा द्वारा सूरदास की जाति का निर्णय करना चाहते हैं।

सूरदास के भाट जातीय होने की कल्पना साहित्य-लहरी के पूर्वोक्त पद के कारण की गयी है। उक्त पद के 'प्रथ-जाग' के पाठांतर 'प्रथ-जगात' अथवा 'प्रथ-जगा तें' इस कल्पना के कारण हैं। जिन विद्वानों ने 'जगात' शब्द स्वीकार किया है, उन्होंने उसका अर्थ 'भाट' किया है, यद्यपि उसको वास्तविक अर्थ घाट का कर उगाहने वाला होता है। कुछ विद्वानों ने 'जगात' शब्द को गोत्र वाची मान कर सूरदास को प्रार्थज गोत्रोत्पन्न लिखा है। 'प्रथ-जगा' लिखने वाले तो स्पष्ट रूप से सूरदास को भाट मानते हैं। जिस पद के उक्त शब्दों के कारण सूरदास को भाट बतलाया जाता है, उसी के अंत में उनको

---

* सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १५

अंतःसाक्ष्य, श्रीकृष्ण की जन्म कुंडली के पद एवं भविष्य सूचक कथनों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि वे ज्योतिष विद्या के जानकार अवश्य थे। उनकी गायन-कुशलता के संबंध में कुछ कहना ही व्यर्थ है। चौरासी वार्ता के आरंभिक प्रसंग से ही ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य होने के पूर्व ही सूरदास एक कुशल गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। इन विद्याओं का ज्ञान उनको किस प्रकार हुआ, यह किसी अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य से प्रकट नहीं होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि सत्संग से ही उनको इन विद्याओं की प्राप्ति हुई थी। पूर्व संस्कारों के कारण उनको सहज ही में इनका ज्ञान प्राप्त हो गया, फिर चिर अभ्यास से वे इनमें दक्ष हो गये थे।

सूरदास की स्वामी अवस्था और उनके अनेक शिष्य आदि की सूचना निम्न लिखित पद से प्रकट होती है—

हरि, हौं सब पतितन कौ नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, इत मान को लायक॥

× × ×

यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं, आइ जुरे इक ठौर।
अब कैं इतने और मिलाऊँ, बेर दूसरी और॥
होड़ा-होड़ी मनहिं भावते, किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेट॥
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हें भरि भाँड़ौ।
लीजै बेगि निवेरि तुरत ही, 'सूर' पतित कौ टाँड़ौ॥

इस स्थान पर रहते हुए सूरदास के पास यथेष्ट वैभव, शिष्य-सेवक तथा गाने-बजाने का सरंजाम एकत्रित हो गया था। हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में लिखा है—

"या प्रकार सूरदास तलाब पै पीपर के वृक्ष नीचै बरस अठारह के भये। सो एक दिन रात्रि को सोवत हते, ता समय सूरदास कों वैराग्य आयौ। तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे जो देखो मैं श्री भगवान् के मिलन के अर्थ वैराग्य करिकें घर सों निकस्यौ हतौ। सो यहाँ माया नें ग्रसि लियौ।···पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरि कें लाठी लैकें उहाँ तें कूंच किये।···कितनेक सेवक संसार सों रहित हते सो सूरदास जी के संग चले।"

प सूरदास ने अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग किया था, तथापि वे अपने गृह से बहुत दूर नहीं, प्रत्युत् चार कोस दूर एक गाँव में रहने लगे थे। वहाँ उनके गुणों से आकर्षित होकर अनेक प्रकार के व्यक्ति उनके पास आने लगे। अबोधावस्था का वैराग्य भाव वहाँ पर दुःसंग के कारण कुछ समय के लिए दब गया था। वे स्वामित्व के कारण माया-जाल में भी फँस गये थे। इस प्रकार उनके जीवन का आरंभिक भाग व्यतीत हुआ। जब वे अठारह वर्ष के हुए, तब पश्चात्ताप पूर्वक फिर उनकी वैराग्य की ओर प्रवृत्ति हुई। उस समय का वैराग्य दृढ़ था। उस समय तक उनकी अबोधावस्था दूर हो चुकी थी, और उनको संसार का कुछ अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। तब वे अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर संगीत के सरंजाम एवं कुछ सच्चे त्यागी सेवकों साथ मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे।

दृढ़ भक्ति से पूर्व की स्वामी अवस्था में काम, क्रोध, निंदा, स्तुति आदि दोषों का आना स्वाभाविक है। सूरदास कृत दीनता, विनय एवं वैराग्य के पदों में ऐसे अनेक कथन हैं, जिनसे उस समय की दशा का ज्ञान हो सकता है। ये कथन अतिशयोक्ति पूर्ण होते हुए भी अवास्तविक नहीं कहे जा सकते। यदि ये कथन अवास्तविक होते, तो उनमें पश्चात्ताप की जो तीव्र भावना दिखलायी देती है, वह कदापि संभव नहीं थी। सूरदास को अपनी स्वामी अवस्था के कृत्यों का पश्चात्ताप अपनी प्रौढ़ावस्था तक रहा था, जैसा उनके अनेक पदों से ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित पद देखिये—

जौलौं सत्य सरूप न सूझत।
तौलौं मन मनिकंठ बिसारैं, फिरत सकल बन बूझत॥
\+ \+ \+
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे ही तम नासत॥
'सूरदास' जब यह मति आई, बे दिन गये अलेखैं।
कह जाने दिनकर की महिमा, अंध नैन बिनु देखैं॥

इस पद के 'बे दिन गये अलेखैं' शब्दों द्वारा पश्चात्ताप की भावना स्पष्ट प्रकट होती है। इसी प्रकार बाल्यावस्था में गृह-त्याग करने पर भी अधिक समय बाद बड़ी अवस्था में भगवत्प्राप्ति की सूचना निम्नलिखित पदांश से प्रकट होती है—

चलौ सबेरौ, आवौ अबेरौ, लैकर अपने साजा।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलि हैं, देखत जम दल भाजा॥

इस कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने गृह का त्याग अपनी बाल्यावस्था में ही किया था, किंतु बीच में कहीं अटक जाने के कारण प्रभु से मिलने में उनको कुछ विलंब हो गया था। इस पद से यह भी ज्ञात होता है कि प्रभु से मिलने से पूर्व वे अपने साज-सामान सहित वैभवशाली थे। यह कथन उनकी अठारह वर्ष की अवस्था तक के वृत्तांत की पुष्टि करता है। इसके बाद वे साज-सरंजाम सहित गऊघाट पर आकर रहने लगे। वहाँ पर बारह वर्ष के लंबे समय के पश्चात् वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से मिले, जिसकी सूचना उक्त कथन से प्राप्त होती है।

शरणागति एवं शरणागति-काल—

सूरदास अपने वैराग्य की दृढ़ता के कारण अपना समस्त वैभव जहाँ का तहाँ छोड़ कर ब्रज की ओर चल दिये। वे पहले मथुरा आये। वहाँ कुछ समय रह कर वे मथुरा और आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर यमुना नदी के किनारे रहने लगे।

चौरासी वार्ता में सूरदास की कथा का आरंभ यहीं से होता है। चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे स्वरचित पदों के गायन द्वारा भगवान् की आराधना किया करते थे। इस प्रकार रहते हुए उनको बहुत समय हो गया। एक बार महाप्रभु बल्लभाचार्य जी अपने सेवकों सहित अडैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे। सूरदास के एक सेवक ने उनको सूचना दी—"आज गऊघाट पर श्री बल्लभाचार्य जी पधारे हैं। इन आचार्य जी ने काशी तथा दक्षिण में मायावाद का खंडन किया है और भक्ति मार्ग की स्थापना की है।" सूरदास ने यह समाचार सुन कर उक्त सेवक से कहा—"जब आचार्य जी भोजनादि से निश्चिंत होकर बैठें, तब मुझको सूचना देना। मैं उनके दर्शन करूँगा।"

जब श्री वल्लभाचार्य जी भोजनादि से निश्चिंत होकर गद्दी पर विराजमान हुए और उनके शिष्य-सेवकादि उनके निकट बैठ गये, तब सूरदास के सेवक ने इसकी सूचना उनको दी। सूरदास अपने सेवकों सहित बल्लभाचार्य जी के दर्शनार्थ आये और दंडवत-प्रणाम कर उनके सन्मुख बैठ गये। श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"सूर! कुछ भगवद्-यश वर्णन करो।" इस पर सूरदास ने निम्न लिखित पदों का गायन किया—

(१) हौं हरि! सब पतितन कौ नायक।
(२) प्रभु! हौं सब पतितन कौ टीकौ।

इन पदों को सुन कर बल्लभाचार्य जी ने कहा—"तुम 'सूर' होकर भी ऐसी दीनता दिखलाते हो! कुछ भगवल्लीलाओं का वर्णन करो।" चौरासी वार्ता में लिखा है कि श्री बल्लभाचार्य के उपर्युक्त कथन पर सूरदास ने उनसे कहा—"महाराज! मुझे भगवल्लीलाओं का ज्ञान नहीं है।" इस पर श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"हम तुमको इन सब बातों का यथार्थ ज्ञान कराये देते हैं।"

सूरदास की रचनाओं में भी इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उबारौ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं बिनु एक सरन तुम्हारौ॥
२. मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै॥
३. मन रे तैं आयुष वृथा गँवाई।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि श्री बल्लभ सुखदाई।
'सूरदास' सरनागत हरि की और न कछू उपाई॥

इस पर श्री बल्लभाचार्य जी ने अपने संप्रदाय की विधि के अनुसार सूरदास को अष्टाक्षर मंत्र का 'नाम' सुनाया और 'ब्रह्म संबंध' कराते हुए उनसे 'समर्पण' कराया। 'नाम' एवं 'समर्पण' पुष्टि संप्रदाय की दो प्रकार की दीक्षाएँ हैं। गुरु अपने सेवक के कान के पास 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस अष्टाक्षर मंत्र को तीन बार सुनाते हैं। इसी को 'नाम सुनाना' कहते हैं। 'समर्पण' का अभिप्राय यह है कि जीव अपना सर्वस्व अर्थात् अहंता-ममतात्मक देह, इंद्रियाँ, स्त्री, पुत्र, कुटुंब, गृह, द्रव्य, अंतःकरण, प्राण, लोक, परलोक, आत्मा आदि को भगवान् श्रीकृष्ण के अर्पित कर उनका दासत्व स्वीकार करता है। सूरदास की रचनाओं में इनका इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—

अज हू सावधान किन होहि।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ।
बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुडी सुनायौ॥
(नाम दीक्षा)

यामें कहा घटैगौ तेरौ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों, यह साँचौ मत मेरौ॥
(समर्पण दीक्षा)

इस प्रकार सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए। इस विधि के अनंतर श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को श्रीमद्भागवत् के 'दशमस्कंध की अनुक्रमणिका', भागवत् की टीका स्वरूप स्वरचित 'सुबोधिनी' और भागवत-सार समुच्चय रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम'* सुनाया, जिनके कारण सूरदास को भागवत के तत्व और उसकी दशविध लीलाओं का यथार्थ ज्ञान हो गया। इसी के फल स्वरूप बाद में सूरदास ने श्री कृष्ण-लीला विषयक सहस्रों पद एवं सूरसारावली की रचना की थी।

श्री वल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन तक ठहरे। उसी समय सूरदास ने अपने समस्त शिष्य-सेवकों को भी श्री आचार्य जी द्वारा दीक्षित करा दिया। उसके अनंतर श्री आचार्य जी अपने सेवकों के साथ गोकुल होते हुए गोवर्धन चले गये। सूरदास भी उनके साथ थे। गोवर्धन पहुँच कर आचार्य जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का आदेश दिया।

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास को शरण में लेने से पूर्व श्री वल्लभाचार्य जी काशी और दक्षिण के शास्त्रार्थों में विजयी होकर 'आचार्य महाप्रभु' की पदवी प्राप्त कर चुके थे। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार पत्रावलंबन वाला काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६३ वि० में और राज-सभा वाला दक्षिण का इतिहास प्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६५ वि० में हुआ था‡, अतः सूरदास का शरण-काल सं० १५६५ के अनंतर निश्चित होता है।

गो० विट्ठलनाथ जी के आविर्भाव के समय गाया हुआ सूरदास-रचित एक बधाई का पद—'श्री वल्लभ दीजै मोहि बधाई।'—उपलब्ध है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास गो० विट्ठलनाथ जी के जन्म सं० १५७२ से पूर्व श्री वल्लभाचार्य की शरण में आ चुके थे। इस प्रकार वहिःसाक्ष्य और अंतःसाक्ष्य दोनों के अनुसंधान से सिद्ध होता है कि सूरदास सं० १५६५ के पश्चात् और सं० १५७२ के पूर्व महाप्रभु की शरण में आये थे।

---

* 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के विषय में ऐसा समझा जाता है कि इसकी रचना सूरदास के शरणागत होने के बहुत दिनों बाद श्री गोपीनाथ जी के लिए की गयी थी। इस संबंध में हम अपने विचार विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों में लिखेंगे।

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ८

गो० यदुनाथ जी ने अपने 'बल्लभ-दिग्विजय' नामक ग्रंथ में लिखा है कि अड़ैल से ब्रज जाते हुए श्री आचार्य जी महाप्रभु ने सूरदास को अपनी शरण में लिया था। फिर ब्रज से पुनः अड़ैल वापिस पहुँचते ही उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी का अड़ैल में जन्म हुआ था। श्री गोपीनाथ जी की प्राकट्य तिथि सं० १५६८ की आश्विन कृ० १२ है। अड़ैल से ब्रज जाने में और वहाँ कुछ दिन रह कर पुनः अड़ैल वापिस आने में उस समय कम से कम ६ महीने अवश्य लगे होंगे। इस प्रकार सूरदास का शरण-काल वि० सं० १५६७ निश्चित होता है।

उपर्युक्त संवत् की पुष्टि वार्ता के कथन से भी हो जाती है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है सं० १५६५ के दक्षिण राजसभा वाले शास्त्रार्थ के अनंतर आचार्य जी अड़ैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे थे। राजसभा वाले शास्त्रार्थ के पश्चात् ही उन्होंने अड़ैल में अपना स्थायी निवास बनाया था, जहाँ से ब्रज में जाकर उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा का प्रबंध किया था। 'बल्लभ दिग्विजय' के अनुसंधान से सूरदास अपनी आयु के ३२ वें वर्ष में महाप्रभु की शरण में आये थे। सूरदास का जन्म संवत् १५३५ गत पृष्ठों में सिद्ध किया जा चुका है, अतः उनका शरण-काल 'चौरासी वार्ता' और 'बल्लभ दिग्विजय' दोनों के प्रमाण से सं० १५६७ ही सिद्ध होता है।

"श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता" की मुद्रित प्रति में सूरदास का शरण-काल सं० १५७७ लिखा हुआ है। हिंदी के कुछ विद्वानों ने भी उनके शरण-काल का यही संवत् लिखा है†, किंतु यह सर्वथा भ्रमात्मक है। श्रीनाथ जी का मंदिर पूर्णतया सं० १५७६ में बन कर तैयार हुआ था। श्री बल्लभाचार्य ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन कार्य के लिए नियुक्त किया था। इसी की संगति मिलाते हुए श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण-काल सं० १५७६ के अनंतर सं० १५७७ में सूरदास का शरण-काल लिखा गया है, जो निम्न लिखित प्रमाणानुसार अशुद्ध है।

श्री बल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से पूरनमल खत्री ने श्रीनाथ जी के मंदिर-निर्माण का कार्य सं० १५५६ की वैशाख शु० ३ को आरंभ कर दिया था।

---

† १. सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ ४५
२. सूर साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १८
३. सूर: जीवनी और ग्रंथ, पृष्ठ २६

द्रव्याभाव से यह निर्माण कार्य बीच में ही रुक गया, किंतु तब तक मंदिर का अधिकांश भाग बन चुका था और वह ऐसी स्थिति में था कि उस नवीन मंदिर में श्रीनाथ जी का स्वरूप (मूर्ति) स्थापित हो सके। सं० १५६४ में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने उस मंदिर में श्रीनाथ जी को विराजमान कर दिया था, जैसा "बल्लभ दिग्विजय" और "संप्रदाय कल्पद्रुम" से सिद्ध है। इसके बाद द्रव्य की व्यवस्था होने पर मंदिर के शिखर आदि बाह्य भाग की पूर्ति सं० १५७६ में हुई थी। इस निर्माण-पूर्ति के संवत् की संगति के कारण ही 'श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता' में सूरदास का शरण-काल सं० १५७७ मान लिया गया प्रतीत होता है। यदि सूरदास वास्तव में सं० १५७७ में ही बल्लभ संप्रदाय में सम्मिलित हुए होते, तब इनके द्वारा सं० १५७२ में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य अवसर पर गाया हुआ बधाई का पद किस प्रकार उपलब्ध होता!

इस प्रकार अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के आधार पर सूरदास का शरण-काल संवत् १५६७ वि० निश्चित होता है।

ब्रज-वास और कीर्तन-सेवा—

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के अनंतर सूरदास गऊघाट से गोकुल-मथुरा होते हुए गोवर्धन गये थे। वहाँ पर बल्लभाचार्य जी ने उनको श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन-सेवा का कार्य दिया था। सूरदास ने अपना शेष जीवन स्थायी रूप से गोवर्धन में रहते हुए और श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करते हुए ही व्यतीत किया।

सूरदास का स्थायी निवास गोवर्धन के निकट परासौली में था। वहाँ पर चंद्र सरोवर के पास वे अपनी कुटी में रहा करते थे और प्रति दिन परासौली से श्रीनाथ जी के मंदिर में जाकर कीर्तन-सेवा करते थे। सूरदास के गोवर्धन निवास की सूचना निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होती है—

"नंद जू! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवर्धन तें आयौ।"

इस पद में सूरदास के ढाढ़ी बन कर गोवर्धन से आने का उल्लेख है। ढाढ़ी बनने का कारण हम जाति विषयक गत पृष्ठों में स्पष्ट कर चुके हैं। 'निज वार्ता' के अनुसार इस पद की रचना सं० १५७२ में होना सिद्ध होता है, जब कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी अपने नवजात शिशु विट्ठलनाथ जी को अड़ैल से प्रथम बार ब्रज में लाये थे।

गोवर्धन में आने के पश्चात् वे श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए स्थायी रूप से वहीं पर रहने लगे। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार श्रीनाथ जी के स्वरूप के साथ मथुरा और कभी कभी नवनीतप्रिय जी के दर्शनार्थ गोकुल जाने के अतिरिक्त वे गोवर्धन छोड़ कर कहीं नहीं गये। 'आईने अकबरी' में लिखा हुआ है कि एक बार अकबर बादशाह ने सूरदास को अपने से मिलने के लिए प्रयाग में बुलवाया था, किंतु यह उल्लेख किसी अन्य सूरदास से संबंध रखता है। हमारे सूरदास तो पूर्णतया विरक्त थे, अतः राज्य कार्य ही नहीं, प्रत्युत् वाह्य जगत् से भी उनका कुछ संबंध नहीं था। वे श्रीनाथ जी की सेवा छोड़ कर कहीं जाना भी नहीं चाहते थे। एक बार सं० १६२३ में जब उनको श्रीनाथ जी के स्वरूप (मूर्ति) के साथ मथुरा जाना पड़ा, तो वहाँ पर वे श्रीनाथ जी के साथ २ माह और २२ दिन तक रहे थे। उसी समय उनकी अकबर से भी भेंट हुई थी, जिसका विस्तार पूर्वक उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया जावेगा। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा हुआ है कि कुंभनदास और परमानंददास के कारण जब सूरदास को श्रीनाथ जी के कीर्तन से कुछ अवकाश मिलता, तो वे नवनीतप्रिय जी के सम्मुख कीर्तन करने गोकुल जाया करते थे‡। ऐसे अवसर सं० १६२८ के बाद ही आये होंगे, जब गो० विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप गोकुल में रहने लगे थे।

सूरदास की रचना में गोकुल, मथुरा और वृंदावन का उल्लेख† प्राप्त होने से उनका उक्त स्थानों में जाने का अनुमान होता है। उनके मथुरा और गोकुल में कार्यवशात् जाने का उल्लेख तो वार्ता में भी मिलता है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, किंतु उनके वृंदावन जाने का उल्लेख वार्ता में प्राप्त नहीं है। उनकी भक्ति-भावना को देखते हुए यह अनुमान होता है कि वे श्रीनाथ जी प्रभृति स्वरूपों की सेवा छोड़ कर अधिक समय तक वृंदावन आदि किसी स्थान में नहीं रह सकते थे। इस संबंध में वार्ता में दिया हुआ कृष्णदास अधिकारी का वृंदावन वाला प्रसंग द्रष्टव्य है*। उनकी रचना के वृंदावन वाले, उल्लेख से यह संभावना होती है कि वे शायद महाप्रभु

‡ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्ट० की वार्ता' पृ० १६

† १. व्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।
(इस पद में गोकुल, वृंदाबन का उल्लेख हुआ है)
२. वृंदाबन एक पलक जो रहियै।
सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी भाग्य बिना कहाँ ते पैयै॥

* 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० की वार्ता' पृ० १३२

बल्लभाचार्य जी अथवा गो० विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्हीं के साथ ब्रज-यात्रा करते हुए वृंदावन गये हों, अथवा स्वदेश से गऊघाट जाते समय जब वे मथुरा आये थे, तब वे संभवतः वृंदावन भी गये हों। वृंदावन में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी की बैठकें विद्यमान हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पुष्टि संप्रदाय के आरंभिक इतिहास से वृंदावन का भी संबंध है। ऐसी दशा में किसी समय सूरदास का वहाँ जाना असंभव नहीं है।

सूरदास द्वारा श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख वार्ता के अतिरिक्त उनके निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होता है—

'सूर कूर आँधरौ, हौं द्वार परयौ गाऊँ।'

इसके अतिरिक्त बल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार पवित्रा एकादशी, रथ यात्रा, छप्पन भोग एवं अष्ट समय की सेवा के विशिष्ट पदों की रचना द्वारा सूरदास का मंदिर की कीर्तन-सेवा से घनिष्ट संबंध सिद्ध होता है।

श्रीनाथ जी के प्रति आसक्ति—

सूरदास के इष्टदेव श्रीनाथ जी थे, अतः उन्हीं के प्रति उनकी पूर्ण आसक्ति थी। उन्होंने श्रीनाथ, गोवर्धनधर, गोपाल आदि नामों से उनके प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रकट की है, जैसा कि निम्न लिखित कतिपय पदों से स्पष्ट है—

१. अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी।
श्रीनाथ सारंगधर कृपा करि मोहि, सकल अघ हरन हरि गरुड़गामी॥

२. श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगलकारी।
उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी॥

इन उल्लेखों से सूरदास का श्रीनाथ जी के प्रति इष्टदेव का संबंध पुष्ट होता है। भक्ति-भाव से श्रीनाथ जी की उपासना और निष्काम भाव से उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए उनको अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त हो गया था। इस बात का उल्लेख "स्याम कह्यौ 'सूरदास' सों मेरी लीला सरस बनाय", अथवा "तब बोले जगदीस जगत गुरु सुनहु 'सूर' मम गाथ" इत्यादि कथनों में स्पष्टतया मिलता है।

'सूरसागर' नाम की प्रसिद्धि—

गोवर्धन में स्थायी रूप से रहने के अनंतर सूरदास ने महाप्रभु जी द्वारा प्राप्त भागवतोक्त ज्ञान के आधार पर भगवल्लीलाओं का गायन किया था, जिसके कारण महाप्रभु जी उनको 'सागर' के नाम से संबोधन करते थे।

सूरदास को 'सागर' कहने का तात्पर्य यह था कि उनके हृदय में दशविध लीलाओं की स्थिति हो चुकी थी। उन्हीं लीलाओं की अनेक भाव-तरंगों को सूरदास ने अपने असंख्य पदों में व्यक्त किया है। ये पद संतप्त जीवों को सदा शांति देने वाले हैं।

महाप्रभु जी के इस मंगलाचरण से लीला-समुद्र वाली बात की पुष्टि होती है—

"नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनं।
लक्ष्मी सहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥"

महाप्रभु जी इस मंगलाचरण में लीलाओं की उपमा क्षीर समुद्र से देते हैं। इस अनंत लीला रूपी समुद्र की स्थापना महाप्रभु ने भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका और समस्त भागवत के सार समुच्य स्वरूप "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के यथार्थ ज्ञान द्वारा सूरदास के हृदय में की थी। इसी से वे "सागर" हो गये थे। महाप्रभु जी द्वारा सूरदास को "सूरसागर" कहने का यही अभिप्राय था। बाद में यह नाम इतना प्रचलित हुआ कि सूरदास की रचनाएँ भी उक्त नाम से प्रसिद्ध हो गयीं।

महाप्रभु जी द्वारा 'सागर' कहने पर सूरदास अपनी दीनता दिखलाते थे, जिसका उल्लेख उनकी निम्न रचना में इस प्रकार हुआ है—

है हरि मोहू तें अति पापी।
सागर 'सूर' विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी॥

अष्टछाप की स्थापना—

महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन का जो 'मंडान' प्रचलित किया था, उसके सर्व प्रथम नियमित कीर्तनकार सूरदास थे; उनके पश्चात् परमानंददास हुए। कुंभनदास यद्यपि सूरदास से भी पूर्व कीर्तन करते थे, किंतु वे गृहस्थ होने के कारण नियमित रूप से अपना समय देने में असमर्थ थे। इस प्रकार महाप्रभु जी के समय में सूरदास एवं परमानंददास नियमित रूप से श्रीनाथ जी की सभी झाँकियों में कीर्तन करते थे और कुंभनदास अपने अवकाशानुसार उनको सहयोग देते थे। महाप्रभु जी के पश्चात्

गोपीनाथ जी के समय में भी यही क्रम चलता रहा। गो० विट्ठलनाथ जी के समय में इस कीर्तन-प्रणाली को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया गया, और श्रीनाथ जी की आठों समय की झाँकियों के पृथक्-पृथक् कीर्तन-कार नियत किये गये। उस समय तक सर्वोच्च श्रेणी के कई अन्य कीर्तनकार भी संप्रदाय में सम्मिलित हो चुके थे, अतः गो० विट्ठलनाथ जी ने संप्रदाय के प्रमुख आठ कीर्तनकारों को श्रीनाथ जी के मंदिर में नियमित रूप से कीर्तन करने को नियत किया। उनमें से सूरदास, परमानंददास कुंभनदास और कृष्णदास—ये चार महाप्रभु जी के सेवक थे तथा छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास—ये चार गोसाईं जी के सेवक थे।

गो० विट्ठलनाथजी ने श्रीगोपीनाथ जी का निधन होते ही सं० १६०० में एक ब्रजयात्रा की थी। उसी समय उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर की सेवा का विस्तार करने की इच्छा प्रकट की, किंतु उसमें द्रव्य की आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होंने उसी वर्ष गुजरात का प्रथम 'प्रदेश' किया। उस 'प्रदेश' में प्राप्त समस्त द्रव्य उन्होंने श्रीनाथ जी के अर्पण कर दिया, जिससे व्यवस्थित रूप में सेवा का विस्तार किया गया। यह कार्य सं० १६०१ से सं० १६०२ में हुआ था।

सेवा के भोग, राग और शृंगार प्रमुख अंग हैं। गो० विट्ठलनाथ जी ने उक्त तीनों अंगों को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया था। सेवा का रागात्मक अंग कीर्तन है, जिसका विस्तार अनेक राग-रागनी और वाद्य यंत्रों के साथ किया गया। श्रीनाथ जी के आठ समय के दर्शनों के आठ प्रमुख कीर्तनकार थे, जो 'अष्टछाप' अथवा 'अष्ट काव्य वारे' कहलाते थे। इन कीर्तनकारों में सूरदास प्रमुख थे।

अनुसंधान से ज्ञात होता है कि नंददास के अतिरिक्त 'अष्टछाप' के अन्य सात कवि सं० १६०२ तक श्रीनाथ जी कीर्तन-सेवा में उपस्थित हो चुके थे। नंददास सं० १६०७ के लगभग गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक होकर पुष्टि संप्रदाय में सम्मिलित हुए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि वे सेवक होने के अनंतर कुछ समय तक ब्रज में रह कर बाद में अपने जन्म-स्थान रामपुर में चले गये थे और सं० १६२० के पश्चात् वे स्थायी रूप से गोवर्धन में आकर रहने लगे थे‡। उस समय वे अपनी काव्य-संगीत विषयक योग्यता के कारण अष्टछाप में भी सम्मिलित किये गये। इससे पूर्व अष्टछाप के आठवें कीर्तनकार

‡ इसका विस्तार पूर्वक कथन आगामी पृष्ठों में किया गया है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सेवक विष्णुदास छीपा थे। यही कारण है कि श्री द्वारकानाथ जी महाराज उपनाम 'द्वारकेश' कृत छप्पय में नंददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम मिलता है†। जब नंददास दुबारा ब्रज में आये, तब विष्णुदास छीपा अत्यंत वृद्ध होने के कारण गोसाईं जी के द्वार-रक्षक बनाये गये और नंददास उनके स्थान पर श्रीनाथ जी के कीर्तनकार नियत किये गये।

श्रीनाथ जी की अनन्य भक्ति के कारण अष्टछाप के आठों कवियों को अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त था। वार्ता में लिखा है कि स्वयं श्रीनाथ जी सखा भाव से उनके साथ खेलते थे। इन कारणों से वे 'अष्टसखा' के नाम से भी प्रसिद्ध हुए और श्रीमद्भागवत के आधार पर उनके सखात्व के नाम भी निश्चित किये गये। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं को निम्न नामों से संबोधित किया है—

हे कृष्ण स्तोक, हे अंशो, श्रीदामन् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन्, देवप्रस्थ वरूथप‡॥

उपर्युक्त एकादश सखाओं में कृष्ण से ऋषभ तक के आठ नाम सूरदास आदि आठों भक्त कवियों के माने गये हैं। इन आठों में सूरदास मुख्य थे, अतः उनका नाम 'कृष्ण' सर्वथा उचित भी था। सूरदास की रचनाओं में जो 'सूरस्याम' नाम की छाप मिलती है, उसका कारण भी उनका यह 'कृष्ण' नाम ही ज्ञात होता है।

अष्टछाप के कवियों का पारस्परिक संबंध—

यद्यपि 'अष्टछाप' में सूरदास को प्रधानता दी गयी है, तथापि वे आठों महानुभाव एक दूसरे के प्रति अत्यंत आदर और नम्रता का भाव रखते थे। भावप्रकाश वाली वार्ता से ज्ञात है कि सूरदास कभी-कभी परमानंददास से मिलने उनकी कुटिया पर जाया करते थे और उनसे संप्रदायिक रहस्यों के संबंध में बातचीत करते थे§। इसी प्रकार परमानंददास एवं कुंभनदास का परस्पर मिलना और उनका कृष्णदास अधिकारी के पास जाना भी वार्ता से सिद्ध है*।

---

† बंबई से प्रकाशित 'श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता"

‡ श्रीमद्भागवत, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध, अध्याय २२

§ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० वार्ता पृ० ५१

* चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट०वार्ता पृ० १२१

इससे ज्ञात होता है कि वे परमोच्च श्रेणी के संत होने के कारण अत्यंत नम्र भाव रखते थे और उनमें बड़प्पन का लेश मात्र भी अभिमान नहीं था।

(सूरदास जहाँ संत स्वभावानुसार अत्यंत विनम्र थे, वहाँ वे स्पष्टवादी भी थे। यही कारण है कि जिन्होंने अपनी रचनाओं के भावापहरण के कारण कृष्णदास अधिकारी को एक बार टोका भी था‡।)

ऐसा ज्ञात होता है कि सूरदास और नंददास का घनिष्ट संबंध था। वार्ता में लिखा है कि नंददास को सांप्रदायिक ज्ञान की शिक्षा सूरदास से प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त नंददास की रचनाओं में सूरदास के भावों की स्पष्ट छाया दिखलायी देती है, किंतु वार्ता से यह ज्ञात नहीं होता कि कृष्णदास अधिकारी की तरह नंददास को भी सूरदास ने कभी टोका हो। इसलिए यह अनुमान होता है कि नंददास ने सांप्रदायिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि काव्य विषयक ज्ञान भी किसी रूप में सूरदास से ही प्राप्त किया था।

अकबर से भेंट—

"चौरासी वार्ता" में सूरदास और अकबर की भेंट का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इस भेंट का विस्तारपूर्वक वर्णन 'अष्टसखान की वार्ता' में किया गया है*। इससे ज्ञात होता कि तानसेन से सूरदास का एक पद सुनने पर अकबर ने सूरदास से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। सूरदास से मिलने की उत्सुकता में अकबर ने अपने सेवकों को उनकी खोज के लिए गोवर्धन भेजा, किंतु वहाँ ज्ञात हुआ कि सूरदास मथुरा में हैं। अंत में सूरदास और अकबर की भेंट हुई। अकबर के कहने पर सूरदास ने 'मन रे! तू कर माधौ सों प्रीत' नामक जिस उपदेशात्मक पद का गायन किया था, वह 'सूर पच्चीसी' के नाम से प्राप्त है।

सूरदास का अलौकिक गायन सुन कर अकबर बड़ा प्रसन्न हुआ। वार्ता में लिखा है कि जब अकबर ने उनसे अपना यश वर्णन करने को कहा तो सूरदास ने निम्न लिखित पद का गायन किया—

नाहिंन रह्यौ मन में ठौर।
नंदनंदन अछत कैसै अनिऐ उर और?
स्याम गात, सरोज आनन, ललित अति मृदु हास।
'सूर' ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

‡ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० वार्ता पृ० ११५
* चौरासी वै० की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्टसखान की वार्ता' पृ० १४

उक्त पद के गायन से सूरदास ने अकबर को बतला दिया कि उनके हृदय में भगवान् श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए स्थान नहीं है, अतः उनके द्वारा किसी व्यक्ति का यश-वर्णन करना भी संभव नहीं है। सूरदास की उस सारगर्भित स्पष्टोक्ति को सुन कर अकबर चुप हो गया, किंतु उपर्युक्त पद की अंतिम पंक्ति के संबंध में उसने सूरदास से प्रश्न किया—"सूरदास जी, तुम्हारे नेत्र तो हैं ही नहीं, फिर उनको रूप की प्यास किस प्रकार हो सकती है?" वार्ता में लिखा है कि अकबर के इस प्रश्न का सूरदास ने कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु अकबर जैसे गुणग्राहक और साधुसेवी नरेश का इस संबंध में स्वतः समाधान हो गया।

अकबर से सूरदास की भेंट संबंधी वार्ता के उपर्युक्त कथन की पुष्टि सूरदास की रचना के अंतःसाक्ष्य अथवा किसी वहिःसाक्ष्य से भी अभी-तक स्पष्ट रूप से नहीं हो सकी है, किंतु कुंभनदास और हरिदास आदि से अकबर का मिलना प्रमाणित है, इसलिए सूरदास जैसे महान् कवि और गायक से भी अकबर का मिलना सर्वथा संभव है। अकबर संगीत का प्रेमी और साधु-संतों का आदर करने वाला गुणग्राही नरेश था। सूरदास अपने समय के विख्यात कवि, गायक और महात्मा थे, अतः अकबर द्वारा उनसे मिलने की बात निराधार नहीं हो सकती है।

सूरदास और अकबर का मिलन हमारे अनुमान से सं० १६२३ में मथुरा में हुआ होगा। सांप्रदायिक इतिहास से ज्ञात होता है कि सं० १६२३ की फाल्गुन कृ० ७ को गो० विट्ठलनाथ जी की अनुपस्थिति में उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी श्रीनाथ जी के स्वरूप को गोवर्धन से मथुरा में ले गये थे। उस समय श्रीनाथ जी की सेवा के लिए सूरदास भी मथुरा गये थे। उस अवसर पर श्रीनाथ जी २ माह २२ दिन पर्यंत मथुरा में रहे थे और उस अवधि में सूरदास को भी उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए मथुरा में ही रहना पड़ा था।

अकबर सं० १६१३ में बादशाह हुआ था और सं० १६२१ में तानसेन उसके दरबार में आया था। सं० १६२३ में अकबर का मथुरा जाना इतिहास प्रसिद्ध है, अतः तानसेन की प्रेरणा से उसी संवत् में सूरदास का अकबर से मिलना सर्वथा संगत है; अतः सं० १६२३ में अकबर-सूरदास की भेंट होने का हमारा अनुमान भी प्रामाणिक सिद्ध होता है। डा० दीनदयाल गुप्त के मतानुसार यह भेंट मथुरा में सं० १६३६ के लगभग हुई थी†, किंतु उक्त संवत् में सूरदास का मथुरा में रहना प्रामाणिक नहीं होता है, अतः इसका समय सं० १६३६ की अपेक्षा सं० १६२३ ही अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

† अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० २१८

सूर—तुलसी मिलन—

वार्ता, भक्तमाल की टीका और मूल गुसाईं चरित में सूरदास और तुलसीदास की भेंट का उल्लेख किया गया है। वार्ता और भक्तमाल द्वारा इस भेंट का संवत् ज्ञात नहीं होता है, किंतु 'मूल गुसाईं चरित' में इसका संवत् १६१६ दिया गया है। 'मूल गुसाईं चरित' में लिखा है सं० १६१६ में श्री गोकुलनाथ जी ने सूरदास को कृष्ण-रंग में डुबो कर तुलसीदास से मिलने को भेजा था। चित्रकूट पर उनकी तुलसीदास से भेंट हुई। सूरदास ने तुलसीदास को स्वरचित सूरसागर दिखलाया और उसमें से दो पदों का गायन भी किया। इसके पश्चात् सूरदास ने तुलसीदास के चरणों में मस्तक नवाया और उनसे आशीर्वाद माँगा। सूरदास वहाँ पर सात दिन तक रहे। अंत में तुलसीदास ने गोकुलनाथ जी के नाम एक पत्र देकर उनको विदा किया‡।

'मूल गुसाईं चरित' का उपर्युक्त कथन सर्वथा इतिहास विरुद्ध है। सं० १६१६ में गोकुलनाथ जी प्रायः ८ वर्ष के बालक थे, अतः उनके द्वारा सूरदास का भेजा जाना असंभव है।

हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि गोवर्धन आने के पश्चात् सूरदास कभी-कभी गोकुल या मथुरा जाने के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं गये। ऐसी दशा में अपनी ८१ वर्ष की वृद्धावस्था में श्रीनाथ जी की सेवा छोड़ कर चित्रकूट जैसे सुदूर स्थान में उनका जाना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त सूरदास आयु में तुलसीदास से बड़े थे और उन्होंने काव्य-रचना भी तुलसीदास से बहुत पहले आरंभ कर दी थी। सं० १६१६ में सूरदास सहस्रों पदों की रचना कर चुके थे, जिनके कारण वे 'सागर' कहलाते थे। इसके विरुद्ध तुलसीदास ने उस समय तक 'रामचरित मानस' आदि अपने प्रमुख ग्रंथों की रचना का आरंभ भी नहीं किया था। ऐसी दशा में सूरदास का तुलसीदास के चरणों में नत-मस्तक होना भी असंगत कल्पना ज्ञात होती है। ऐसे ही कारणों से प्रायः समस्त प्रमुख विद्वानों ने 'मूल गुसाईं चरित' को अप्रामाणिक माना है। हम भी इसे अप्रामाणिक मानते हैं, अतः इसमें वर्णित सूर-तुलसी मिलन का वृतांत सर्वथा अग्राह्य है।

वार्ता में इस प्रसंग का संवत् नहीं दिया गया है, किंतु उसमें वर्णित घटनाओं की संगति से सूर-तुलसी मिलन और उसके काल की यथार्थता सिद्ध हो जाती है। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे। वे नंददास से परासोली में मिले*। परासोली

‡ मूल गुसाईं चरित, पृ० २६,३० *प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३४४

सूरदास का निवास स्थान था। नंददास और सूरदास का जो काव्य-विषयक संबंध हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं, उसके कारण नंददास का सूरदास के यहाँ आना-जाना होता ही था, अतः परासोली में नंददास से मिलने पर तुलसीदास की सूरदास से भेंट होना सर्वथा संभव है। वार्ता और श्रीगोकुलनाथ जी के वचनामृतों से ज्ञात होता है कि उस समय नंददास अपने भाई तुलसीदास को गोकुल में भी ले गये थे। वहाँ पर उन दिनों गो० विट्ठलनाथजी के पंचम पुत्र श्री रघुनाथ जी का विवाह हो रहा था†। रघुनाथ जी के विवाह का समय सं० १६२६ श्री गोकुलनाथ जी के स्फुट वचनामृतों की हस्त लिखित प्रति के निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है—

"ते तुलसीदास श्री गोकुल आये हते। ता दिन श्रीरघुनाथ जी महाराज कौ विवाह हतौ। सो ठौर-ठौर आनंद होय रह्यौ हतौ। ता समें श्री रघुनाथ जी वर्ष पंद्रै के हते।"

रघुनाथ जी का जन्म सं० १६११§ है। उपर्युक्त घटना के समय वे १५ वर्ष के थे, अतः उक्त घटना का समय सं० १६२६ निर्धारित होता है। ऐसी दशा में तुलसीदास के ब्रज-आगमन और उनके सूरदास से मिलने का समय भी सं० १६२६ ही सिद्ध होता है। सं० १६२० के पश्चात् नंददास गृहस्थ का त्याग कर विरक्त भाव से गोवर्धन में स्थायी रूप से रहने लगे थे, अतः सं० १६२६ में उनसे मिलने के लिए तुलसीदास का ब्रज में आना सर्वथा संभव है।

ब्रज में आने पर और वहाँ के वातावरण से प्रभावित होने पर तुलसीदास ने कुछ पदों की रचना भी की थी। वे पद उक्त घटना की स्मृति स्वरूप पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में परंपरा से गाये जाते हैं*। उक्त पद एवं कुछ अन्य

---

† १. प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग, पृ० ३४६

२. वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती) पृ० ६ § श्री वल्लभ वंशवृत्त

* १. बरनों अवध श्री गोकुल गाम।
उत बिराजत जानकी-वर, इतहिं स्यामा-स्याम॥
भक्त हित श्री राम-कृष्ण, सु धरयौ नर-अवतार।
दास 'तुलसी' दोऊ आसा, कोउ उबारो पार॥

२. श्री रघुनाथ राम अवतार।
जानकी-जीवन सब जगवंदन, कलि-मद-हरन, उतारन भार॥
श्री गोकुल में सदा विराजो, वचन पीयूस काम-निरवार।
'तुलसीदास' प्रभु धनुष-बान धरो, चरनन देहुँ सीस तब डार॥

रचनाओं के कारण तुलसीदास का व्रज में आना प्रामाणित होता है*। तुलसीदास कृत 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' व्रजभाषा में लिखी हुई और व्रज के भक्ति-भाव से अनुप्राणित रचनाएँ हैं । इनके कारण भी तुलसीदास का व्रज में आना और पुष्टि संप्रदाय के भक्तों से किसी रूप में प्रभावित होना अवश्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि तुलसीदास सं० १६२६ में व्रज में आये थे और उसी समय उनकी सूरदास से भी भेंट हुई थी।

गुरु–निष्ठा—

संसार के समस्त धर्म एवं संप्रदायों में अति प्राचीन काल से गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। आर्य शास्त्रों में तो गुरु को ईश्वर तुल्य बतलाया गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

भारतवर्ष के संत एवं भक्तों में तो गुरु को ईश्वर से भी बढ़ कर बतलाया गया है। निम्न लिखित दोहा इसका प्रमाण है—

गुरु गोविंद दोनों खड़े, का के लागौं पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दिये बताय॥

इस प्रकार की मान्यता का कारण यह है कि गुरु द्वारा ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे जीव अपना वास्तविक कल्याण कर सकता है । 'गुरु बिना ज्ञान नहीं' यह कहावत इसीलिए लोक में चल पड़ी है । किंतु गुरु किस प्रकार का होना चाहिए, इसके संबंध में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का निम्न लिखित कथन विचारणीय है—

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादि रहितं नरम् ।
श्री भागवततत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्† ॥

महाप्रभु जी ने गुरु के जो तीन लक्षण बतलाये हैं, वे सब स्वयं उनमें विद्यमान थे, इसीलिये सूरदास उनमें और हरि में कोई अंतर नहीं समझते थे।

---

* राधे–राधे रटत हैं, आक ढाक और कैर ।
तुलसी या व्रजभूमि में, कहा राम सों बैर ॥

† निबंध, श्लोक २०५

वार्ता में लिखे गये सूरदास के देहावसान संबंधी प्रसंग से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है*।

सूरदास जिस प्रकार अपने दीक्षा-गुरु महाप्रभु जी को श्री हरि के रूप में देखते थे, उसी प्रकार उनके पुत्र गोसाईं जी को भी देखते थे। इसकी पुष्टि सूरदास की रचना और वार्ता के प्रसंगों से होती है। इसके अतिरिक्त वे महाप्रभु जी के पौत्रों का भी अत्यंत आदर करते थे, जैसा कि वार्ता में लिखित नवनीतप्रिय जी के शृंगार वाले प्रसंग से प्रकट है†।

लोक-कल्याण की भावना—

वीतरागी भक्त जन लोक एवं वेद के बाह्य धर्मों के प्रति प्रायः उदासीन होते हैं। वे एकांत स्थान में आत्म-चिंतन करते हुए परमानंद का अनुभव करते रहते हैं। इस प्रकार वे अपनी आत्मा का कल्याण तो कर लेते हैं, किंतु लोक-कल्याण के कार्यों में उनसे कोई सहायता प्राप्त नहीं होती। सूरदास परम विरक्त और परमोच्च श्रेणी के भक्त एवं संत होने के कारण ब्रह्मानंद में लीन तो रहते ही थे, किंतु वे लोक-कल्याणकारी कार्यों के प्रति भी उदासीन नहीं थे।

अपनी स्वामी अवस्था से ही उनके पास अनेक जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। सूरदास अपने सदुपदेश द्वारा उनको सन्मार्ग पर लाते थे। बल्लभ संप्रदाय के सेवक होने के अनंतर उनकी प्रकृति में दैन्य भाव की विशेष वृद्धि हो गयी थी, फिर भी वे अपने नम्र उपदेशों द्वारा अनेक व्यक्तियों का कल्याण करते थे।

वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने उपदेश से चौपड़ खेलते हुए कुछ व्यक्तियों और गोपालपुर निवासी एक द्रव्यारूढ़ वैश्य को सन्मार्ग दिखलाया था‡।

उपस्थिति-काल—

सूरदास की विशाल-काय काव्य-रचना और उनके काव्य के अंतःसाक्ष्य से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि वे बहुत बड़ी आयु तक जीवित रहे थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनकी वृद्धावस्था की पुष्टि होती है।

---

* चौरासी वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में 'अग्रसखान को वार्ता' पृ० २६, ३०

† " " पृ० १७, १८

‡ " " " पृ० ११, २०

सूरदास के पदों की निम्न लिखित पंक्तियाँ देखिये—

१. तीनों पन में ओर निबाही, इहै स्वाँग को काछै ।
'सूरदास' कों इहै बड़ौ दुख, परत सबन के पाछै ॥ १,७७ ॥

२. सबै दिन गए विषय के हेत ।
तीनों पन ऐसै ही बीते, केस भए सिर स्वेत ॥ १, १७५

३. बिनती करत मरत हौं लाज ।
नख-सिख लौं मेरी यह देही, है पाप की जहाज ॥
और पतित न आवें आँख तर, देखत अपनौ साज ।
तीनों पन भरि बहोरि निबाह्यौ, तोउ न आई लाज ॥

उपर्युक्त पदों से ज्ञात होता है कि सूरदास अपने तीनों पन—बाल्य, युवा एवं वृद्धावस्था को पार कर अत्यंत वृद्ध हो चुके थे । सूरदास अत्यंत वृद्धावस्था तक जीवित थे, यह निश्चित है; किंतु उनकी स्थिति इस भूतल पर किस संवत तक रही, यह विचारणीय है । इसके विवेचन के लिए हम सूरदास की रचना के कुछ अंतःसाक्ष्य उपस्थित करते हैं और पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से उनकी संगति मिलाते हुए उनके उपस्थिति-काल पर भी विचार करते हैं ।

सूरदास कृत 'छप्पन भोग' का एक पद उपलब्ध है, जो इस प्रकार है—

भोजन करत गोवर्धन-धारी ।
छप्पन भोग, छतीसों व्यंजन, परोस धरे ललिता री ।
अचवन कों लाई चंद्रावलि, भरि यमुनोदक झारी ॥
सुगंध बीड़ी आरोगावति, बिसाखा अँग-अँग फूलत भारी ।
मुकुर दिखावति चंपकलता, 'सूरदास' बलिहारी ॥

इस पद में श्रीनाथ जी के छप्पन भोग का वर्णन है । सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि यह छप्पन भोग सं० १६१५ की मार्गशीर्ष शु० १५ को हुआ था । उसकी स्मृति में तब से अब तक बराबर प्रति वर्ष मार्गशीर्ष शु० १५ को श्रीनाथ के यहाँ छप्पन भोग का मनोरथ होता है । इससे ज्ञात होता है कि सं० १६१५ तक सूरदास उपस्थित थे ।

इसके अनंतर 'रथ-यात्रा' के निम्न लिखित पद पर विचार कीजिये—

तुम देखो सखी री आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा ।
'सूरदास' गोकुल के वासी, प्राननाथ वर पावै ॥

इस पद के अंतःसाक्ष्य की संगति बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से मिलाने पर सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ पर्यंत अवश्य निश्चित होती है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि बल्लभ संप्रदाय में रथयात्रा का उत्सव सं० १६१७ से आरंभ हुआ है। इससे पहले संप्रदाय में रथोत्सव नहीं होता था। यह उत्सव सर्व प्रथम श्री नवनीत प्रिय जी का अड़ैल में हुआ था।

सं० १६१६ में जब अड़ैल में राजकीय उपद्रव की आशंका हुई, तब गो० विट्ठलनाथ श्री नवनीतप्रिय जी का स्वरूप (मूर्ति) और अपने कुटुंब को लेकर रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा नामक स्थान में चले गये, जहाँ वे प्रायः दो वर्ष तक रहे। गढ़ा वर्तमान मध्य प्रांत के जब्बलपुर नगर के निकट इतिहास-प्रसिद्ध रानी दुर्गावती की राजधानी था। गो० विट्ठलनाथ जी की पत्नी रुक्मिणी जी का देहांत सं० १६१६ में हो चुका था। इनसे गोसाईं जी को १० संतान—६ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ थीं। रानी दुर्गावती के आग्रह से सं० १६२० की अक्षय तृतीया के दिन सजातीय कन्या पद्मावती के साथ गोस्वामी जी को अपना दूसरा विवाह करना पड़ा। सं० १६२१ में जब गढ़ा में भी रानी दुर्गावती और अकबर के युद्ध की संभावना हुई, तब विट्ठलनाथ जी गढ़ा से प्रयाग होते हुए सं० १६२२ में मथुरा आ गये। मथुरा से गोकुल गये, किंतु वहाँ पर जन्माष्टमी के उत्सव पर दही दूध के छींटों के कारण गोसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी की महाबन के भोमियाओं से काफी कहा-सुनी हो गयी। उस समय गोसाईं जी गोवर्धन में थे। इस उपद्रव का समाचार सुनकर वे गोवर्धन से गोकुल आये और उपद्रव अधिक न बढ़े, इसलिए अपने कुटुंब सहित गोकुल से फिर मथुरा आ गये और रानी दुर्गावती द्वारा निर्मित भवन में रहने लगे। सं० १६२८ में राजा बीरबल की सहायता से गोसाईं जी को जब अकबर द्वारा गोकुल बसाने की आज्ञा प्राप्त हुई और वहाँ की सुरक्षा का भी यथोचित प्रबंध हो गया, तब गोसाईं जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे।

उपर्युक्त पद के 'सूरदास गोकुल के वासी प्राननाथ वर पावे' वाले कथन से यह सिद्ध होता है कि तब तक गोसाईं विट्ठलनाथ गोकुल में बस चुके थे। यह उल्लेख सं० १६२२ से भी संबंधित हो सकता है और सं० १६२८ से भी, अतः उपर्युक्त उल्लेख के कारण सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ तक अवश्य मानी जा सकती है।

अकबर से सूरदास की भेंट का समय भी उनके उपस्थिति–काल पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। हमने गत पृष्ठों में इस भेंट का समय सं० १६२३ निश्चित किया है, अतः सूरदास की उपस्थिति सं० १६२३ पर्यंत मानी जा सकती है।

'अष्टसखान की वार्ता' से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन के लिए जब कुंभनदास एवं परमानंददास का 'ओसरा' आता था, तब कभी-कभी सूरदास नवनीतप्रिय जी के मंदिर में कीर्तन करने के लिए गोकुल जाया करते थे। उस समय ठाकुर जी का जैसा श्रृंगार होता था, उसका सूरदास नेत्र विहीन होते हुए भी यथावत् वर्णन करते थे। एक बार गुसाईं जी के पुत्रों ने सूरदास की परीक्षा के लिए नवनीतप्रिय जी को वस्त्र न पहरा कर केवल मोतियों का श्रृंगार किया और सूरदास को बतलाए बिना उनसे कीर्तन करने को कहा। सूरदास जी ने उस समय जिस पद का गायन किया था, उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है—

देखे री हरि नंगम–नंगा।
जल–सुत भूषन अंग विराजति, बसन हीन छवि उठत तरंगा॥

उपर्युक्त उल्लेख से सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२८ पर्यंत अवश्य मानी जा सकती है, क्यों कि इसी संवत् में गुसाईं विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे, तभी नवनीतप्रिय जी का मोतियों का श्रृंगार और 'ओसरा' के अनुसार सूरदास द्वारा उनके कीर्तन करने का अवसर आया था।

अष्टछाप के कवि कृष्णदास रचित बसंत का एक पद नीचे दिया जाता है। इससे सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६३८ तक मानी जा सकती है। वह पद इस प्रकार है—

(राग बसंत)

खेलत बसंत वर विट्ठलेस राय। निज सेवक सुख देखत आय।
श्री गिरिधर राजा बुलाय। श्री गोविंदराय पिचकारी लाय॥
श्री बालकृष्ण छबि कही न जाय। श्री गोकुलनाथ लीला दिखाय।
रघुनाथलाल अरगजा लाय श्री जदुनाथ चोबा मँगाय॥
घनस्याम धाय फेंटन भराय। सब बालक खेलत एक दाय।
तहाँ सूरदास नाँचत है आय। परमानंद घोरि गुलाल लाय॥

चत्रभुज प्रभु केसर माँट भराय। छीतस्वामी हु चूका फेंके जाय॥
नंददास निरखि छबि कहत आय। गावै कुंभनदास बीना बजाय॥
तब गोविंद बोलि छिरकें आय। कोउ नाँचत देह दसा भुलाय॥
सब बालक हो हो बोलें जाय। उड्यौ अबीर गुलाल धुंधर फराय॥
पिचकाई इत उत छींटे जाय। कोउ फेंकत फूलन अपने भाय॥
कोउ चोबा ले छिरके बनाय। बाजें ताल मृदंग उपंग भाय॥
बिच बाजत मुहचंग मुरली जाय। कोऊ डफ ले महुवरि सों मिलाय॥
एक नाचत पग नूपुर बजाय। बाढयौ सुख समुद्र कछू कह्यौ न जाय॥
सब बालक भीने अंग चुवाय। भक्तन घर घर सुख ही छाय॥
सोभा कहे कहा कवि हू बनाय। यह सुख सब सेवक दिखाय॥
सुर कुसुमन बरखत आय आय। सब गावत मीठी गारि भाय॥
सब अपने मनोरथ करत आय। तहाँ 'कृष्णदास' बलिहारि जाय॥

उक्त पद में सूरदास सहित अष्टछाप के आठों कवि, गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं उनके सातों बालकों का नामोल्लेख हुआ है। गोसाईं जी के सप्तम पुत्र घनश्याम जी का जन्म सं० १६२८ निश्चित है†। बसंत खेलते समय उनकी आयु कम से कम १० वर्ष की मानी जाय, तो सं० १६३८ तक सूरदास की उपस्थिति सिद्ध होती है।

अब सूरदास कृत निम्न रचना के कारण उनकी उपस्थिति सं० १६४० के लगभग मानी जा सकती है—

भोजन भयौ भाँवतो मोहन। तातौ ई जेंय जाहुगे गोहन॥
खीर खाँड़ खीचरी सँवारी। मधुर महर अरु गोपिन प्यारी॥
राजभोग लीनों भात पसाय। मूंग दरहरी हींगु लगाय॥
सद माखन तुलसी दै छायौ। घृत सुबास कचौरिन नायौ॥
पापर, बरी, अचार परम रुचि। अद्रक अरु निंबु अनि ह्वै है रुचि॥

× × ×

'सूरदास' देख्यौ गिरिधारी। बोलि दई हँसि भूँठनि थारी॥
वह जेंवनार सुनै जो गावै। सो निज भक्ति अभय पद पावै॥

† श्री वल्लभ वंशवृक्ष

उपर्युक्त रचना में 'राजभोग' में 'छप्पन भोग' की भावना की गयी है। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार इस का समय सं० १६४० वि० है। उस वर्ष में गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता में सब विधि स्वरूपों को एकत्रित कर गोकुल में राजभोग करते हुए छप्पन भोग की भावना मात्र की थी।

छप्पन भोग की भावना करने का कारण यह था कि जब सं० १६१५ में गुसाईं जी ने श्रीनाथ जी का छप्पन भोग किया था, तब उन्होंने अपने स्थायी निवास अड़ैल स्थित श्री नवनीतप्रिय जी का छप्पन भोग करने का निश्चय किया था, किंतु कई असुविधाओं के कारण उनकी मनोभिलाषा तत्काल पूर्ण न हो सकी। सं० १६१५ के अनंतर गुसाईं जी जगदीश और गौड़ देश की यात्रा को चले गये। वहाँ से वापिस आने पर सं० १६१६ में उनकी प्रथम पत्नी रुक्मिणी जी का देहावसान हो गया। इसके पश्चात् वे गढ़ा और गढ़ा से मथुरा होकर गोकुल आये, किंतु उनको फिर सं० १६२२ में मथुरा में रहना पड़ा। सं० १६२३ में वे गुजरात की यात्रा करने गये। इसके बाद सं० १६२८ में वे स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे, किंतु पुत्रों के यज्ञोपवीत, पुत्र-पुत्रियों के विवाह और सभी बालकों के पृथक्-पृथक् निवास स्थान बनवाने में उनको यथेष्ट व्यय करना पड़ा। इसी बीच में उनको दो बार द्वारिका जैसे सुदूर प्रदेश की यात्रा करनी पड़ी। सं० १६३८ के पश्चात् उन्होंने अपने सातों पुत्रों का बँटवारा कर दिया। इस प्रकार गृहस्थ के कार्यों से निश्चिंत होकर और अपना अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने अपना मनोरथ पूर्ण करने का विचार किया, किंतु उस समय उन पर कुछ ऋण भी हो गया था, अतः वे अपनी इच्छानुसार छप्पन भोग की सांगोपांग पूर्ति नहीं कर सकते थे; इसलिए उन्होंने श्री नवनीतप्रिय जी प्रधानता में सब निधि-स्वरूपों को एकत्रित कर राजभोग में ही छप्पन भोग की भावना द्वारा अपने पूर्व मनोरथ की पूर्ति की थी। यदि उस उत्सव को छप्पन भोग की प्रणाली से यथावत् किया जाता, तो उसमें द्वादश मास के सभी उत्सवों का करना भी आवश्यक हो जाता, जो कि उस समय की स्थिति के अनुसार संभव नहीं था; अतः गुसाईं जी ने सब प्रकार की सामग्री राजभोग में 'अरोगा' कर छप्पन भोग की भावना मात्र की थी। सूरदास ने इसीलिए इस मनोरथ को छप्पन भोग का नाम न देकर 'जेंवनार' कहा है; जब कि माणिकचंद, भगवानदास आदि गोसाईं जी के अन्य सेवकों ने अपने-अपने पदों में इसे छप्पन भोग ही कहा है।

उक्त पद के 'सूरदास देख्यो गिरधारी' वाला कथन श्री नवनीतप्रिय जी के निकट भावना से पधराये हुए श्रीनाथ जी के स्वरूप का सूचक है। इससे 'भावना' वाले कथन की भी पुष्टि होती है। इस उल्लेख के कारण सूरदास जी की उपस्थिति सं० १६४० के आस-पास सिद्ध हो जाती है। चतुर्भुजदास कथित 'खट ऋतु की वार्ता‡' में भी श्रीनाथ जी के साथ सातों स्वरूपों के प्रथम अन्नकूट का जो उल्लेख हुआ है, उसका समय भी सं० १६४० ही आता है। उस अवसर पर सूरदास जी की उपस्थिति का भी उल्लेख हुआ है, अतः इससे भी सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० तक मानी जा सकती है।

इस प्रकार अंतःसाक्ष्य एवं वाह्यसाक्ष्यों से सूरदास का उपस्थिति काल सं० १६४० पर्यंत सिद्ध होता है।

देहावसान—

अपना अंतिम समय निकट जान कर एक दिन सूरदास श्रीनाथ जी की मंगला-आरती कर परासौली चले गये। वहाँ पर पहुँच कर श्रीनाथ जी के मंदिर की ध्वजा को साष्टांग प्रणाम कर वे उसके सन्मुख मुख कर एक चबूतरे पर लेट गये। अंत में सब ओर से चित्त की वृत्ति हटा कर वे श्रीनाथ जी एवं गुसाईं जी का ध्यान करते हुए अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर श्रीनाथ जी की शृंगार-झाँकी के अवसर पर सूरदास को अनुपस्थित देख कर गुसाईं विट्ठलनाथ जी को उनके विषय में शंका हुई। सूरदास का यह नियम था कि वे श्रीनाथ जी के शृंगार के समय प्रति दिन जगमोहन में उपस्थित होकर कीर्तन किया करते थे। गुसाईं जी के सेवकों ने उनको बतलाया कि आज प्रातःकाल की मंगला आरती के दर्शन कर और समस्त वैष्णवों को भगवत्-स्मरण कराकर सूरदास परासौली चले गये हैं। सूरदास का अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने समस्त वैष्णवों से कहा—"सूरदास पुष्टि मार्ग के जहाज हैं। अब उनके जाने का समय आ गया है। आप सब लोग उनके पास जाओ, और उनसे जो लेना हो, सो ले लो। हम भी श्रीनाथ जी के राजभोग की आरती के उपरांत वहीं पर आते हैं।"

यह सुन कर गोसाईं जी के सेवक परासौली गये। उन्होंने वहाँ पर सूरदास को अचेतावस्था में पाया। कुछ समय पश्चात् गुसाईं विट्ठलनाथ भी वहाँ पर पहुँच गये। उनके साथ रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास आदि कई वैष्णव भी थे।

---

‡ संदेश प्रेस, अहमदाबाद से प्रकाशित (पृ० ५३)

गोसाईं जी ने सूरदास का हाथ पकड़ कर कहा—"सूरदास जी ! क्या हाल है ?" गोसाईं जी के शब्द सुनकर सूरदास ने तत्काल नेत्र खोल दिये और दंडवत करते हुए उनसे कहा—"महाराज ! आप आ गये। मैं तो आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। आपने बड़ी कृपा की।"

इसके अनंतर कुछ भगवत्-चर्चा करते हुए उन्होंने निम्न लिखित पद कह कर अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया—

खंजन नैंन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

सूरदास के देहावसान की निश्चित तिथि का कहीं पर उल्लेख नहीं मिलता है। हमारे अनुमान से उनका देहावसान सं० १६४० के लगभग हुआ था। पुष्टि संप्रदाय के कुछ विद्वान और हिंदी साहित्य के अनेक लेखकों ने उनके देहावसान का संवत् १६२० लिखा है, किंतु उनका यह मत भ्रमात्मक है।

गत पृष्ठों में हम सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० पर्यंत सिद्ध कर चुके हैं। ऐसी दशा में सं० १६२० में उनका देहावसान होना सर्वथा असंभव है। वार्ता के उल्लेखानुसार सूरदास का देहावसान गोसाईं विट्ठलनाथ जी की उपस्थिति में हुआ था। सांप्रदायिक इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६१६ से १६२१ तक गोसाईं जी ब्रज में उपस्थित नहीं थे। सं० १६२० में वे रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा में थे। ऐसी दशा में सं० १६२० में सूरदास का देहांत परासौली में गो० विट्ठलदास की उपस्थिति में कैसे संभव हो सकता है?

गो० विट्ठलनाथ जी के देहावसान का सं० १६४२ निश्चित है। इसके साथ ही सं० १६३८ के पश्चात् तक हम सूरदास की उपस्थिति प्रमाणित कर चुके हैं। ऐसी दशा में उनके देहावसान का समय सं० १६३८ से १६४२ के बीच में होना चाहिए।

'अष्टसखान की वार्ता' प्रसंग १० में श्री हरिराय जी ने बतलाया है कि जिस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण अपने भक्त यदुवंशियों का संसार से तिरोधान कराकर आप वैकुंठ में पधारे, इसी प्रकार श्री आचार्य जी महाप्रभु अंतर्ध्यान हो गये और गुसाईं जी को अभी होना शेष है। श्री गोसाईं जी भगवदीय जनों को नित्य लीला में स्थापित करने के अनंतर ही पधारेंगे।

इस उल्लेख से सिद्ध है कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी के निधन से कुछ समय पूर्व ही सूरदास का देहावसान हुआ होगा। गोसाईं जी का निधन-काल सं० १६४२ निश्चित है, अतः सूरदास का देहावसान सं० १६४० के लगभग सिद्ध होता है। गत पृष्ठों में बतलाये हुए उनके उपस्थिति-काल से भी इस संवत् की संगति बैठती है, अतः सूरदास का निधन संवत १६४० प्रमाणित होता है।

———

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ-निर्णय

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ—

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, प्राचीन पुस्तकालयों के अनुसंधान और आधुनिक विद्वानों के कथनों के अनुसार सूरदास के नाम से अधिक से अधिक निम्न लिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

१. सूरसारावली,	२. साहित्यलहरी,	३. सूरसागर,
४. भागवत भाषा,	५. दशमस्कंध भाषा,	६. सूरसागर-सार,
७. सूर रामायण,	८. मान लीला,	९. राधारसकेलिकौतुहल
१०. गोवर्धन लीला (सरस लीला)		११. दान लीला,
१२. भँवरगीत,	१३. नाग लीला,	१४. ब्याहलो,
१५. प्राणप्यारी,	१६. दृष्टिकूट के पद,	१७. सूरशतक,
१८. सूरसाठी,	१९. सूरपचीसी,	२०. सेवाफल,
२१. सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद,		२२. हरिवंश टीका(संस्कृत)
२३. एकादशी माहात्म्य,	२४. नल दमयंती,	२५. रामजन्म.

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कांकरौली सरस्वती भंडार में सूरदास कृत स्वरूप-वर्णन, चरण चिह्न वर्णन और दो बारहमासी भी मिलती हैं, जिन्हें हम स्फुट पदों के अंतर्गत मान लेते हैं।

उपर्युक्त पच्चीस ग्रंथों में संख्या २२ से २५ तक की रचनाएँ निश्चित रूप से अष्टछाप के कवि सूरदास कृत नहीं हैं। संख्या १ से २१ तक की रचनाएँ हमारे सूरदास की ही हैं। सं० २२ से २५ तक की रचनाओं को हम निम्न-लिखित कारणों से प्रक्षिप्त मानते हैं—

२२ हरिवंशटीका—यह एक संस्कृत रचना है। नाम से ज्ञात होता है कि यह हरिवंश पुराण की टीका होगी। "कैटेलोगस कैटेलोग्रम" में इसका सूरदास कृत होना लिखा है।

हमारे सूरदास ने संस्कृत में भी कोई रचना की थी ऐसा किसी भी सूत्र से आज तक ज्ञात नहीं हो सका है। प्रत्युत् उन्होंने श्रीमद्भागवत आदि संस्कृत

ग्रंथों को भाषा में ही गाया है। इससे यह संस्कृत टीका किसी अन्य सूरदास, संभवतः बिल्वमंगल सूरदास, की रचना हो सकती है।

२३. **एकादशी माहात्म्य**—इसका उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की १९१७-१९ ई० की खोज-रिपोर्ट नं० १८७ (बी) में हुआ है। इसके प्रारंभ में गणेश, शारदा और अन्य देवों की वंदना प्राप्त है। फिर राजा हरिश्चंद्र की प्रशंसा और एकादशी माहात्म्य संबंधी अन्य कथाएँ हैं। यह सारा ग्रंथ अवधी भाषा में दोहा-चौपाई छंदों में लिखा हुआ है।

भाषा और सांप्रदायिक सिद्धांतों के आधार पर यह रचना अष्टछाप के सूरदास की सर्वथा नहीं हो सकती। सूरदास प्रारंभ से ही ब्रजभाषा में रचना करते थे, अतः यह ग्रंथ भी किसी अन्य सूरदास का होना चाहिए।

२४. **नल-दमयन्ती**—इस ग्रंथ का उल्लेख सर्व प्रथम बाबू राधाकृष्ण दास ने सूर की जीवनी में किया है। उसी के आधार पर मिश्रबंधु आदि हिंदी के सभी लेखकों ने इसको संदिग्ध रूप से सूरदास कृत माना है। अष्टछाप के सूरदास ने कभी मानव-काव्य भी रचा था, ऐसा किसी सूत्र से ज्ञात नहीं होता, अतः इसे भी हम प्रक्षिप्त मानते हैं।

डा० मोतीचंद एम० ए, पी० एच० डी० ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में कवि सूरदास कृत 'नलदमन' काव्य पर एक लेख लिखा था। यह प्रेम-काव्य ग्रंथ उनको बंबई के "प्रिंस औफ वेल्स म्युज़ियम" में मिला था। इसके कर्ता सूरदास ने इस ग्रंथ के अंत में अपना वंश परिचय दिया है। इसके अनुसार वे गुरदासपुर जिला कलानौर के कम्बू गोत्र के किसी गोवर्धनदास के पुत्र थे। इस रचना का संवत् १७१४ वि० है।

यदि यह "नलदमन" काव्य उक्त "नल-दमयन्ती" ग्रंथ ही है, तो इसका अष्टछाप के सूरदास कृत न होना विशेष स्पष्ट हो जाता है।

२५. **रामजन्म**--काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९ ई० नं० १८७ (ए) में इसे भी सूरदास कृत लिखा गया है। ग्रंथ में गणपति, राम आदि की वंदना की गयी है, जिससे इसका अष्टछाप के सूरदास कृत होना नहीं माना जा सकता, अतः यह भी किसी अन्य सूरदास का ही सिद्ध होता है। डा० दीनदयालु गुप्त के मतानुसार एकादशी माहात्म्य और रामजन्म का कर्ता एक हो सकता है।

उपर्युक्त कारणों से ये चारों ग्रंथ अष्टछाप के सूरदास कृत नहीं हैं, इसलिए हिंदी इतिहासकारों को अब सूरदास के नाम पर बतलाये जाने वाले ग्रंथों में से इन्हें निकाल देना चाहिए।

हमारी राय में सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ ये हैं—

१. सूरसारावली

२. साहित्यलहरी

३. सूरसागर (भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर रामायण, मानलीला, राधारसकेलिकौतुहल, गोवर्धनलीला (सरसलीला) दानलीला, भँवरगीत, नागलीला, ब्याहलो, प्राणप्यारी, दृष्टकूट के पद, सूरशतक—ये रचनाएँ सूरसागर के ही अंश हैं; अतः इनको हम स्वतंत्र नहीं मानते हैं।)

४. सूरसाठी

५. सूरपच्चीसी

६. सेवाफल

७. सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद।

इस प्रकार हमारे मतानुसार सूरदास की स्वतंत्र एवं प्रामाणिक रचनाएँ सात हैं। इनमें सबसे प्रथम सूरसारावली की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता है।

१. सूरसारावली—यह ग्रंथ बंबई और लखनऊ से प्रकाशित सूरसागर के संस्करणों के प्रारंभ में दिया हुआ है। इसमें ११०७ तुक हैं। इसके प्रारंभ में संग्रहकार ने इस प्रकार लिखा है—

"अथ श्रीसूरदास जी कृत सूरसागर सारावली"॥"तथा सवा लक्ष पदों का सूचीपत्र ॥"

उक्त उल्लेख का आधार शायद सारावली की ११०३ वाली यह तुक ज्ञात होती है—

श्रीबल्लभ गुरू तत्त्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ।
ता दिन तें हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि गावत अति आनंद ॥ ११०३

हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने भी "एक लक्ष पद बंद" का एक लाख पद अर्थ करते हुए सारावली को एक लक्ष पद वाले सूरसागर का सार रूप मानकर इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार की है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस में इस सारावली पर विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने "एक लक्ष पद वंद" का अर्थ एक लाख पद मान कर ही 'सारावली के इस दावे को' गलत सिद्ध करने की चेष्टा की है। उन्होंने सूरसागर और सारावली का विश्लेषण करते हुए इन दोनों रचनाओं के बीच २७ अंतर स्थापित किये हैं। अंत में दोनों रचनाओं का कर्ता एक नहीं हो सकता, इस प्रकार का अपना अभिमत प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है—

"उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से 'सूरसागर-सारावली' सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती। तथा कथित आत्म-कथन और कविछापों से भी यही संकेत मिलता है।"†

यदि हम सारावली को सवालाख पदों का सूचीपत्र मानें, जैसा प्रायः सभी विद्वान मानते आये हैं, तो निःसंदेह डा० वर्मा के स्थापित किये हुए उक्त २७ अंतर बड़े महत्वपूर्ण और विचारणीय कहे जा सकते हैं, किंतु सारावली का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निःस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि यह लाख या सवालाख पदों का सूचीपत्रात्मक सार रूप नहीं है, और न सारावली का भी यह दावा है! फिर भी "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से" निश्चय ही यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसके "आत्मकथन और कवि छापों से भी" इसी बात की पुष्टि होती है, जिसका हम अगले पृष्ठों में विस्तृत विवेचन कर रहे हैं।

सारावली को सूरदास के लाख या सवा लाख पदों का सूचीपत्र न मानने का निम्न-लिखित कारण है—

मूल वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने "सहस्रावधि" पद किये थे। "सहस्रावधि" के दो अर्थ हो सकते हैं—एक "सहस्र है जिसकी अवधि" और दूसरा सहस्रों की अवधि। प्रथम अर्थ से केवल ९९९ पदों तक का ही सूचन होता है और दूसरे अर्थ से ९९९९९ पदों तक का सूचन होता है। सूरदास की रचनाओं को देखते हुए दूसरा अर्थ स्वीकार करना ही अधिक समीचीन जान पड़ता है, जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में किया जा रहा है।

---

† सूरदास, पृष्ठ ८२

इन्हीं अर्थों को लेकर भावप्रकाश वाली वार्ता "सहस्रावधि" और "लक्षावधि' ऐसे दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है‡ । वार्ता प्रसंग १० में कहा गया है कि सूरदास अपने अंतिम समय तक एक लक्ष पदों की रचना कर सके थे । शेष २५ हजार पद सूरश्याम की छाप से श्रीनाथ जी ने किये थे ।

अब यदि हम सारावली के "एक लक्ष पद बंद" का अर्थ एक लाख पद करते हुए उनके सार रूप से इसकी रचना की हुई मानें तो यह सूरदास के अंतिम समय की रचना सिद्ध होती है । उस समय सूरदास प्रायः १०५ वर्ष के थे । सारावली के 'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' वाले कथन से यह स्पष्ट है कि सूरदास ने इसकी रचना अपने ६७ वें वर्ष में की थी । यदि हम इस सरसठ वर्ष को सूरदास के जन्म संवत से जोड़ते हैं तो इसकी रचना का सवत् १६०२ वि० आता है । इसी प्रकार यदि हम इसको सूरदास के संप्रदाय प्रवेश से ६७ वें वर्ष में रची हुई मानें तो इसका संवत् आता है १६३४ वि० । इन दोनों में से किसी भी संवत को स्वीकार किया जाय तब भी "एक लक्ष पद बंद" का एक लाख पद वाला अर्थ इससे संगत नहीं हो सकता है, क्यों कि सूरदास के लाख पदों का समाप्ति-काल वि० सं० १६४० में आता है ।

सारावली का रचना-काल वि० सं० १६३४ की अपेक्षा वि० सं० १६०२ मानना अधिक प्रशस्त एवं प्रामाणिक होगा । वि० सं० १६३४ इसलिए विरुद्ध और अप्रामाणिक कहा जायगा कि सारावली की "सरस संवत्सर लीलाओं" में बल्लभ संप्रदाय के वि० सं० १६१५ के पश्चात् निर्मित उत्सवों के सूरदास रचित पदों का संकेत भी नहीं मिलता है, यथा—रथ यात्रा, छप्पनभोग आदि के वर्णन । जैसा पहले कहा जा चुका है कि इन उत्सवों का निर्माण वि० सं० १६१५ के पश्चात् गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था ।

वि० सं० १६०२ में सारावली का निर्माण मानना अधिक प्रशस्त एवं प्रामाणिक इसलिए है कि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली का व्यवस्थित और

---

‡ 'तैसे ही सूरदास ने सहस्रावधि पद किये है ।" (प्रसंग ३)
"और सूरदास जी ने श्रीठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं ।"(प्रसंग ११)

(अग्रवाल प्रेस से प्रकाशित भावनावाली ८४ वार्ता में सूरदास की वार्ता)

विस्तृत निर्माण वि० सं० १६०२ में गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने सर्व प्रथम किया था, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इससे संप्रदाय की सेवा में नवीनता और अद्भुतता आई, जिसका स्पष्टीकरण सारावली के अनंतर ही लिखे हुए "सेवाफल" में सूरदास ने इस प्रकार किया है—

"सेवा की यह अद्भुत रीति। श्री विट्ठलेश सों राखें प्रीत॥"

इस अद्भुतता का कारण सेवा में निकुंज-लीला का क्रियात्मक विस्तार है। गो० विट्ठलनाथ जी के पूर्व तक सेवा में केवल बाल-भावना का क्रियात्मक विस्तार हुआ था। इसीलिए बल्लभ-संप्रदाय में गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पूर्व माधुर्य भक्ति का अभाव था, इस प्रकार का मत लोक में प्रसिद्ध हुआ है। किंतु श्रीमद् बल्लभाचार्य जी ने जिस माधुर्य-भक्ति को अपने ग्रंथों में व्यक्त किया था, उसी को श्री विट्ठलनाथ जी ने सेवा में क्रियात्मक रूप से उपस्थित किया, जिसके फल स्वरूप संप्रदाय में निकुंज-भावना तादृश हुई। इसी से सूरदास ने प्रभावित होकर सेवा की अद्भुतता और "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन" आदि कथन किया है। जिन निकुंज के दर्शनों की सूरदास अभिलाषा करते थे, वे उनको अपनी ६७ वर्ष की अवस्था में तादृश हुए थे। वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी में कोई भेद नहीं समझते थे‡, इसलिए यहाँ भी उन्होंने "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन" इस प्रकार का कथन किया है और उनका निकुंज लीला के साथ ही वर्णन किया है।

गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने इन्हीं निकुंजादि की माधुर्य भावनाओं को अपने 'शृंगाररस मंडन' तथा 'निकुंज विलास' आदि ग्रंथों में स्पष्ट किया है। इस प्रकार वि० सं० १६०२ में ही सारावली की रचना होना सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारावली सूरदास के सवालाख अथवा लाख पदों का सूचीपत्र नहीं है। जब यह बात निश्चित हो गयी कि यह लाख या सवालाख पदों का सूचीपत्र नहीं है, तब डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा स्थापित २७ अंतर एक प्रकार से निरर्थक हो जाते हैं।

---

‡ 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।"—इस पद में 'इन चरनन" शब्द अपने सम्मुख उपस्थित हुए श्री विट्ठलनाथ जी के चरणों का बोध कराने वाले हैं। इससे श्री बल्लभाचार्य जी और गो० श्री विट्ठलनाथ जी के प्रति सूरदास की समान भक्ति ज्ञात होती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब सारावली सूरसागर का सूचीपत्र रूप नहीं है तो 'ताकौ सार सूरसारावली' का अर्थ क्या हो सकता है ? सारावली के गंभीर और सांगोपांग अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यहाँ 'सार' का अभिप्राय 'सैद्धांतिक तत्व रूप' से है, अर्थात् सूरदास ने जिन कथात्मक और सेवात्मक हरिलीलाओं का वर्णन सं० १६०१ तक किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक तत्व रूप से उन्होंने सारावली की रचना की है। जैसे नंददास जी ने रासपंचाध्याई के कथात्मक वर्णन के अनंतर उसी के सैद्धांतिक-सार रूप से 'सिद्धांतपंचाध्याई' की रचना की है। इस दृष्टि से ही हम डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरों से सहमत हो सकते हैं और उन्हीं के शब्दों में कहेंगे कि—

"सारावली सूरसागर के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथावस्तु में सूरसागर की कथावस्तु से घनिष्ट साम्य होते हुए भी उसे निश्चित सूरसागर का संक्षेप भी नहीं कह सकते।"

फिर भी यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। सारावली की प्रामाणिकता और हमारे सैद्धांतिक तत्व वाले कथन की पुष्टि आगामी विस्तृत विवेचन में स्पष्ट हो जायगी।

सब से प्रथम यहाँ अंतर उल्लेखों एवं कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण से सारावली का परिचय और उसकी प्रामाणिकता को हम स्पष्ट करेंगे। सारावली पर विचार करने के लिए सब से प्रथम उसके निम्न लिखित उल्लेख द्रष्टव्य हैं—

करम-योग पुनि ग्यान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥
ता दिन तें हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर-सारावलि' गावत अति आनंद ॥११०३॥
सरस संवतसर लीला गावै, युगल चरन चित लावें।
गरभ-वास बंदीखाने में 'सूर' बहुर नहिं आवें ॥११०७॥
गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन।
सिव विधान तप करेऊ बहुत दिन, तऊ पार नहीं लीन ॥११००२॥

सूरदास पृ० ७०

इन तुकों से ये बातें प्रकट होती हैं—

(१) सारावली के कर्ता सूरदास हैं।

(२) सूरदास प्रारंभ में कर्मयोग, ज्ञान, उपासना, आदि में विश्वास करते थे; किंतु श्रीबल्लभ गुरु ने जब उनको तत्व सुनाकर लीला-भेद दिखाया (समझाया), तब सूरदास को कर्मयोग आदि के अपने पूर्व विश्वास भ्रम रूप ज्ञात होने लगे और तभी से उन्होंने उन लीलाओं को एक 'लक्ष' स्वरूप श्रीकृष्ण की पद वंदना करते हुए गाया है, जिसका सार-सिद्धांत तत्वरूप-यह 'सारावली' है।

(३) सारावली की लीला के दर्शन सूरदास को अपनी ६७ वर्ष की वय में गुरुप्रसाद से हुए थे। उस समय सूरदास संप्रदाय के तत्व और लीला ज्ञान में 'प्रवीन' हो चुके थे। सारावली में कही हुई लीला का अनुभव शिवजी को भी अनेक विधि पूर्वक बहुत दिन तक तप करने से भी नहीं हुआ था।

(४) सारावली की सरस संवत्सर की लीला की जो कोई युगल चरणों में चित्त स्थापित कर गावेगा, वह गर्भवास बंदीखाने में फिर कभी नहीं आवेगा।

उक्त चार बातों की पुष्टि सूरदास के अन्य अंतःसाक्ष्य आदि से करना आवश्यक है। जब ये बातें पुष्ट हो जांयगी, तब सारावली पर विशेष विचार करना सुगम होगा।

१-कर्ता—सारावली के कर्ता सूरदास थे, इस बात का ज्ञान जिस प्रकार सारावली में प्राप्त सूर, सूरज आदि उपलब्ध छापों से होता है, उसी प्रकार उसकी भाषा आदि से भी होता है। सारावली की भाषा सूरदास के सूरसागर और उनके अन्य पदों की भाषा से इस प्रकार मिलती है—

(कृष्ण-जन्म)

सारावली—'आठें बुद्ध रोहिनी आई' संख चक्र वपु धारयौ।
कुंडल लसत 'किरीट' महा धुनि वपु वसुदेव निहारयौ ॥३६५॥
'पीतांबर' अरु स्याम जलद वपु निरखि सुफल दिन लेख्यौ।
अस्तुति करी बहुत नाना विधि रूप चतुर्भुज देख्यौ ॥३६६॥
तब हरि कहेउ जन्म तुम्हरे गृह 'तीन बार' हम लीनों।
पृश्नी-गर्भ देव ब्राह्मण जो कृष्ण रूप रंग कीनों ॥३६७॥

'माँग्यौ सकल' मनोरथ अपने मन वांछित फल पायौ ।
'संख चक्र गदा पद्म' 'चतुर्भुज' 'अजन जन्म' लै आयो ॥३६८॥

प्राकृत रूप धरयौ हरि छन में सिसु ह्वै रोवन लागे' ।
तब देवकी दीन ह्वै भाख्यौ नृप को नांहि पतीजै ।
'अहो वसुदेव जाव लै गोकुल' कह्यौ हमारौ कीजै ॥३७१॥

उक्त पंक्तियों का मिलान सूरसागर की 'बालविनोद भावती लीला'‡ के पद से करने पर उनकी भाषा आदि का इस प्रकार साम्य दिखलायी देता है—

कीर्तन— 'बुध रोहिनी अष्टमी' संगम वसुदेव निकट बुलाये हो ।
सकल लोकनायक सुखदायक 'अजन जन्म' धरि आये हो ॥
माथे 'मुकुट' सुभग 'पीतांबर' उर सोहत भृगु रेखा हो ।
संख चक्र चारि विराजत' अति प्रताप सिसु भेखा हो ॥
सुनो देव एक 'आन जनम' तुमसों कथा चलाऊँ हो ।
तुम 'माँग्यौ मैं दयौ नाथ ह्वै तुमसों बालक पाऊँ हो ॥
यह कहि माया मोह अरुझाये 'सिसु ह्वै रोवन लागे हो' ।
'अहो वसुदेव जाउ लै गोकुल' तुम हो परम सभागे हो ॥

दोनों ग्रंथों की उपर्युक्त पंक्तियों के अतिरिक्त अन्य पंक्तियाँ भी देखिये—

सारावली— 'सेष सहस्र फन ऊपर छाये' घन की बूँद बचावै हो ।
आगें 'सिंह हुँकारत' आवत, निर्भय बाट जनावै हो ॥
'यमुना अति जलपूर' बहत है 'चरन कमल परसायौ' ।

कीर्तन— आगे 'जानु जमुन जल बूड़ौ' पाछें 'सिंह दहाड़े' हो ॥
'चरन पसारि परसि कालिंदी' तरवा नीर तें आगे हो ।
'सेष सहस फन ऊपर छायौ' गोकुल कों अति भागे हो ॥

सारावली— 'पहुँचे आय महरि मंदिर में' 'नैक न संका कीन्हीं ।
कीर्तन— 'पहुँचे जाय महरि मंदिर में' मनहिं 'न संका कीन्हीं हो'॥
सारावली— 'यह कन्या मोहि बकसि बीरजू' कीजै मो मन भायौ हो ।
कीर्तन— 'यह कन्या मोहि बकसि बंधु तू' दासी जानिकर दीन्हीं हो ॥

‡ सूरसागर, बंबाई, पृ० १७४

सारावली— 'कंस बंस कौ नास करत है' कहा समुझ री सयानी ।
कीर्तन— 'क्रूर कंस मम बंस बिनासन' समुझे बिना रिस कीन्हीं हो ।

सारावली— 'पटकत सिला गई आकासै' कंस प्रतीति न मानी ।
भई 'अकास बानी' 'सुरदेवी' कंस यहाँ अब आई ॥
'तेरौ सत्रु प्रगट कहुँ ब्रज में' 'काहु लख्यौ नहीं जाई' ।
'जैसे मीन करत जल क्रीड़ा' 'जल में रहत समाई' ॥

कीर्तन— 'पकरत कन्या गई अकासहिं' दोउ भुज चरन लगाई हो ।
'गगन गई बोली सुरदेवी' कंस मृत्यु नियराई हो ॥
'जैसे मीन जाल में क्रीड़त' गनैं न आपु लखाई हो ।
'तैसौई कंस काल ढूक्यौ है' 'ब्रज में जादौराई हो' ॥

सारावली— छम अपराध देवकी मेरौ, 'लिख्यौ न मेटयौ जाई' ।
मैं 'अपराध किये सिसु मारे' कर जोरै बिलखाई ॥
पुनि गृह आय 'सेज पर सोयौ, नैंक नींद नहिं' आवै ।
'देस देस के दूत बुलाये' 'सबहिंन मतौ सुनावै' ॥

कीर्तन— 'बहु अपराध करे सिसु मारे' 'लिख्यौ न मेटयौ जाई हो' ।
'चारि पहर सुख सेज पर निस' 'नैंक हू नींद नहिं आई हो' ॥
'देस देस के दूत बुलाये' 'कासों है छल कैसौ हो' ।

इसी प्रकार कृष्ण जन्म के इस वर्णन के कई शब्द भी सूरदास के अन्य कीर्तनों में ज्यों के त्यों प्राप्त होते हैं, जैसा कि "खड्ग", "कन्या" आदि। इस प्रकार इस वर्णन में भाषा, शब्द, भाव, वर्णन पद्धति आदि सबका साम्य प्राप्त होता है।

(ब्रज वर्णन)

सारावली— 'नंदराय घर ढोटा जायौ महर महा सुख पायौ' ।
विप्र बुलाय बेद विधि कीन्हीं, स्वस्ति वचन पढ़ायौ ॥
जाति कर्म पूजि 'पितर' सुर 'पूजन' विप्र करायौ ।
'दोय लख धेनु दई तिहिं औसर' बहुतहिं दान दिवायौ ॥

इन पंक्तियों में 'विप्र बुलाय पितर पूजन' आदि के तथा 'दान' आदि की जो वर्णन-पद्धति प्राप्त होती है, वही वर्णन-पद्धति सूरदास कृत जन्माष्टमी की बधाई के अन्य पदों में भी मिलती है, जैसा कि—

"नांदीमुख 'पितर पूजाय' अंतर सोच हरें।"
"गनगैया गिनी न जाय"····"ते दीनी द्विजन अनेक।" इत्यादि*
"महरि जसोदा ढोटा जायौ।" इत्यादि†
"दई सुबच्छ लच्छ दै गैया नंद बढ़ायौ त्याग‡।"

(ढाढी)

सारावली— 'निज कुल 'वृद्ध जानि' एक ढाढ़ी गोवर्धन तें आयौ'। ४०६

कीर्तन— नंद जू मेरे मन आनंद भयौ सुनि 'गोवर्धन तें आयो'।
हौं तो 'तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी' सूरदास मेरो नाउँ।

सारावली— बहुत दान दिये 'उपनंद जू' रतन, कनक, मनि, हीर।
'धरानंद' धन बहुतहिं दीन्हों, ज्यों बरखत धन नीर॥
कुंडल कान कंठ माला दै 'ध्रुवनंद' अति सुख पायौ।
सीधौ बहुत 'सुरसुरानंदे' गाड़ा भरि पहुँचायौ॥
'कर्मा धर्मानंद' कहत है बहुतहिं दान दिवायौ।

कीर्तन — महानंद 'सुरसुरानंद' नंदनंद सुख कीजै।
'धरानंद' 'ध्रुवनंद' और 'उपनंद' परम उपकारी॥

(पूतना वध)

सारावली— 'प्रथम पूतना कंस पठाई' अति 'सुंदर वपु धारयऊँ'।
'लीन्हे खैंच प्रान विषमय युत' देह विकल तब कीनौ॥
'योजन डेढ़' विटप बेली सब चूर चूर कर डारे।

कीर्तन— 'प्रथम कंस पूतना पठाई'।
'अति मोहिनी रूप धरि लीन्हे'।
'पय सँग प्राण ऐंच हरि लीन्हों' 'जोजन डेढ़' गिरी मुरझाई।
इत्यादि—

इसी प्रकार करवट, शकट, तृणावर्त और नामकरण आदि के पदों का भी मिलान करने पर वही शब्द, वही भाव, वही वर्णन पद्धति का साम्य दिखलायी देता है। करोटी, बूढ़े बाबू आदि शब्द भी सूरदास के पदों में मिलते हैं, जिनका डा० वर्मा ने नहीं मिलने का उल्लेख किया है§।

---

* 'ब्रज भयौ महरि के पूत' इस पद की पंक्तियां हैं।
† 'हौं एक नई बात सुनि आई इस पद की पंक्ति है।
‡ 'आज आनँद बाढ्यौ है अनुराग' (सूरसागर) इस पद का पंक्ति है।
§ सूरदास पृष्ठ ७६

'कागासुर' की कथा केवल सूरदास ने ही अपने पदों में गायी है और किसी ने भी उसका गायन नहीं किया है। यह विशेष कथा सारावली में भी है, जैसा कि—

सारावली— 'कंस नृपति इक असुर पठायौ' 'धरेउ काग कौ रूप'।
'कंठ चांप बहु बार फिरायौ' 'पटक्यौ' 'नृप के पास'॥
'एक याम में' वचन कह्यौ यह 'प्रगट भयौ तुव नास'। ४३५।

कीर्तन— 'काग रूप एक दनुज धरेउ'।
'नृप आयुस लै कर माथे दे हरषवंत उर गर्व भरेउ॥
'कंठ चांपि' 'बहु बार फिरायौ' गहि पटक्यौ नृप पास'।
बीते 'जाम' 'बोलि तब आयौ' 'सुनहु कंस तेरौ आइ सरेउ'।

इसी प्रकार सारावली की चंद्र दर्शन बूढ़े बाबू की लीला, घुटुरुवन आदि लीलाओं का इसी प्रकार की लीलाओं के पदों से साम्य ज्ञात होता है, जैसा कि—

(चंद्र दर्शन)

सारावली— 'ससि कों देखि' और 'हठ ठानी' कर मनुहार मनावत।
कमलनयन कों 'महरि जसोदा' 'जल प्रतिबिंब दिखावत'॥
'फेरत हाथ चंद पकरन कों' नाहिंन होत लखावत। ४४०

कीर्तन— मेरौ माई 'अरटयौ' है बाल गोविंदा।
गहि अचरा मोहि गगन बतावत खेलन को माँगे 'चंदा'।
'भाजन में जल मेलि जसोदा' लालैं चंद दिखावै।
रुदन करै 'पानी में ढूँढ़ै' चंद धरनि कैसे आवै॥

(बूढ़े बाबू दर्शन)

सारावली— 'बूढ़े बाबू' दरसन आये लाय चंद्रमनि दीन्हों। ४४०½

कीर्तन— 'बूढ़ौ बाबू' नाम हमारौ 'सूर श्याम' तेरौ जानें।

(घुटुवन)

सारावली— 'घुटुवन चलत स्याम कों' 'देखत' 'बोलत' अमृत बानी।
'इततें नंद-महर बोलत हैं' 'उततें जननि बुलावत'॥

कीर्तन— 'किलकत कान्ह' 'घुटुरुवन' आवत।
'बालदसा सुभ निरखि यसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावत'॥

इसी प्रकार माटी भक्षण, दामोदर लीला, अघा, बका आदि के वध वाले सारावली के उल्लेखों को भी सूरदास के अन्य पदों से मिलान करने पर उनमें भी ऐसा ही साम्य दिखाई देता है।

काली नाग का 'कनक कमल' का विशेष उल्लेख सूरदास की रचना में ही प्राप्त होता है, और वह सारावली में भी मिलता है।

(कनक कमल)

सारावली— काली नाथ हरि लाये सुरभी ग्वाल जिवाये।
'कनक† कमल' के बोझ शीश धरि मथुरा कंस पठाये ॥ ४७३ ॥

कीर्तन— 'कमल कनक' भार दधिभार माखन भार लिये ग्वाल नृप घर आये।

इसी प्रकार कंस वध पर्यंत की लीलाओं का वर्णन आदि सूरदास के तत्तत पदों से मिलता है। अब कुछ भ्रमर गीत के साम्य को देखेंगे—

(भ्रमर गीत)

सारावली— 'बन में मित्र हमारे यक हैं' 'हमही सौ है रूप'।
'कमल नयन घनस्याम मनोहर' 'सब गोधन कौ भूप'॥
ताकौ पूजि 'बहुरि सिर नइयो' अरु कीजो परनाम।

कीर्तन— 'मंत्री यक वन बसत हमारौ' ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान ह्वै मेरौ हूतौ ताहि 'माथ नवाइयो'॥
सुंदर परम किसोर वय क्रम चंचल नयन विसाल।
'कर मुरली सिर मोर पंख' 'पीतांबर उर बनमाल'॥

सारावली— तब 'यक सखी कहे सुनरी तू' 'सुफलक-सुत फिर आयौ'।
'प्राण गये लै' पिंड देन कों देह लेन मन भायौ॥

कीर्तन— बहुरि 'सखी' 'सुफलक सुत' आयौ परचौउ संदेह उर गाढ़।
'प्राण हमारे तबहि लै गयौ' अब केहि कारन आयौ॥

इस प्रकार के भाषा, भाव और वर्णन शैली के अनेक साम्य इस लीला में भी मिलते हैं, किंतु स्थानाभाव से हम यहाँ उन सबको दे नहीं सकते।

अब कुछ राम, नृसिंह और वामन विषय के पदों का भी 'सारावली' से मिलान करेंगे—

† पीत रंग के कमल।

(राम जन्म का वर्णन)

सारावली— "देत 'दान' नृपराज द्विजन को सुरभी हेम अपार ।
आये देव और 'मुनिजन' सब दे असीस सुख भारी ॥"

कीर्तन— आनंद आज नृपति दसरथ घर । × ×
'ऋषि मुनि' वेद मधुर धुनि उपजत 'दान' विधान करत
पुति औसर । × ×

जिस प्रकार राम का भोजन विषयक वर्णन सारावली में प्राप्त होता है, उसी प्रकार सूरदास के अन्य पदों में भी मिलता है। जैसा कि—

(राम भोजन)

सारावली— "बैठे संग बाबा के 'चारों भैया जेंवन लागे' ।
लघु-लघु ग्रास राम मुख मेलत आपु 'पिता मुख मेलत' ॥"१८५

कीर्तन— "जननि 'अपुने हाथ जिमावति' ।
'भोजन करत भ्रात एक थारी' लोचन लाल सिरावत ॥"

(नरसिंह विषयक)

सारावली— 'निरगुण सगुण होय मैं देख्यौ तोसों भक्त न पाऊँ' ।
सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी' तोकों कबहुँ न त्यागूं ॥

कीर्तन— तौलों हौं वैकुंठ न जैहों ।
'सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी' जौलों तो सिर छत्र न दैहों ।
'निर्गुण सगुण हेर सब देखे तोसों भक्त मैं कबहू न पैहौं'॥

(वामन विषक)

सारावली— " करी 'वेद धुनि' नृप द्वार पै मनहु महा घन गाजै ।
'सुनि धायौ तबहिं बलिराजा' आय 'चरन सिर नायौ' ॥
'चलिये विप्र यज्ञ शाला में' जहाँ द्विज वर सब राजै ।
'तब नृप कहेउ कछू' द्विज माँगो 'रत्नभूमि ' मणिदान ॥
हय गज हेम रत्न पाटंबर दैहों प्रगट प्रमान ।
तब बोले वामन यह बानी, सुन प्रहलाद कुल भूप ॥
'बहुत प्रतिग्रह लेत विप्र' जो 'जाय परत भव कूप' ।
'तीन पैंड बसुधा हम पावे' 'पर्णकुटी' इक कारन ॥

'जब नृप भुव संकल्प कियौ है' लागे 'देह पसारन' ।
'एक पैंड में' वसुधा नापी 'एक पैंड' सुरलोक ॥
'एक पैंड दीजै बलिराजा' तब ह्वै हो बिन सोक ।
'नापो देह हमारी द्विजवर' सो 'संकल्पित कीनो' ॥

कीर्तन— राजा एक पंडित पौरि तिहारी । × × ×
'सुनि धुनि बलिराजा उठि धाये' आहुति यज्ञ बिसारी ।
सकल रूप देख्यौ जू विप्र कौ 'कियौ दंडोत जुहारी' ॥ ३
'चलिये विप्र जहाँ यज्ञ वेदी' बहुत करी मनुहारी ।
'जो मांगों सो' दैहों तुरत ही हीरा 'रतन भँडारी' ॥ ४
रहो रहो राजा अधिक न कहिये 'दोष लगत है भारी' ।
'तीन पैंड वसुधा मोहि दीजे' जहाँ रचों 'धर्म सारी' । ५ ××××
लै 'उदक सकल्प कीनों' वामन 'देह पसारी' ॥ ७
जय जयकार भयौ भूमापत 'द्वय पैंड भई' सारी ।
'एक पैंड तुम देहु तुरत ही' कै वचनन सत हारी ॥ ८
सत नहीं छाँड़ौ सतगुरू मेरे 'नापो पीठ हमारी' ।

(होरी वर्णन)

होरी वर्णन में एक मास की वर्णन की शैली का "कछु दिन ब्रज और रहो" इस पद से साम्य है ।

इस प्रकार सारावली की प्रत्येक लीला सूरसागर और सूरदास के अन्य पदों की भाषा, उनके भाव आदि से मिलती है, जिनके स्पष्टीकरण में सैकड़ों पृष्ठ और चाहिये, इसलिए हम उस वृहद् अनुसंधान के कार्य को अपने उत्साही पाठकों के लिए ही छोड़ देते हैं । पाठक अवश्य ही उन सबका मिलान कर इस कथन की वास्तविकता की जाँच करेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं ।

सारावली और सूर की अन्य रचनाओं में प्राप्त कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्दों का एक सा उल्लेख इस प्रकार है—

'सिंघद्वार', 'रतन चौक', 'सुनो सूर', 'अंधकार', 'फगुवा', 'मंत्र'*, 'कोपि'†

---

* बसंत धमार के पदों में ।
† बधाई के पदों में ।

'कटकट*', 'सगुण निर्गुण‡', 'थापें†', 'चोतनिया†', 'मनो', 'जन्म पत्रिका' 'झगुलिया†', 'अंकवार', 'अशरण शरण', 'बकस', 'आनकदुंदभि', 'अंध धुंध‡', 'नाथ', 'रिंगनलीला' इत्यादि।

इनसे भी सारावली के कर्ता सूरदास हैं, इस बात की पुष्टि होती है।

उक्त कथन का विशेष समर्थन आगे के प्रमाणों से और होगा, अतः इस बात को हम यह (? समाप्त करते हैं।

२-आत्म वृत्तांत—

(अ) सूरदास श्री बल्लभ गुरु के शरण में आने से पूर्व कर्म-ज्ञानादि में विश्वास करते थे।

(ब) किंतु जब श्री बल्लभ गुरु ने उनको तत्व सुना कर लीला-भेद को समझाया, तब वे अपने पूर्व विश्वास को भ्रम समझने लगे और तभी से उन्होंने उस लीला का गायन किया, जिसका सार (सैद्धांतिक तत्व रूप) यह सारावली है।

सारावली के इन कथनों की क्रमशः पुष्टि सूरदास के अंतःसाक्ष्यों से इस प्रकार होती है—

(अ-कर्म ज्ञानादि विश्वास)

(१) 'करम गति टारी नांहि टरै।"

(२) "रे मन ! चिंता ना कर पेट की।"

इत्यादि पदों से सूरदास का कर्म पर अटल विश्वास जिस प्रकार जाना जा सकता है, इसी प्रकार 'सब दिन होत न एक समान' तथा च 'भजन बिनु बैल बिराने ह्वै हो' आदि पदों से उनके ज्ञान तथा उपासना-भक्ति की प्रारंभिक श्रद्धा को भी जाना जा सकता है।

---

* करखा के पदों में।

‡ नृसिंह जयंत आदि के पदों में।

† शृंगार के पदों मे।

‡ "सूरदास ए कैसे निभेगी 'अधाधुंध' सरकार" शेष शब्द सामान्य पदों में प्राप्त होते हैं।

(ब--बल्लभ गुरु से तत्त्व-लीला ज्ञान)

(१) ' श्री बल्लभ भले बुरे तोउ तेरे । '

(२) ' दृढ़ इन चरनन केरौ । '

इन पदों से सूरदास श्री बल्लभ गुरु के सेवक थे, यह बात स्पष्ट होती है ।

अब प्रथम यह जानना आवश्यक है कि श्री बल्लभ गुरु ने सूरदास को कौन सा तत्त्व सुनाया और किस लीला भेद को समझाया था, जिनकी सूचना सारावली में दी गयी है, तभी उस पर आगे विचार किया जा सकता है ।

उक्त बात का ज्ञान वार्ता से होता है । वार्ता में लिखा है कि सूरदास को महाप्रभु ने शरण में लेकर 'दशम स्कंध की अनुक्रमणिका' और 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सुनाया था, जिससे सूरदास को भागवत की टीका स्वरूप श्री सुबोधिनी का ज्ञान हुआ था । इस ज्ञान के आधार पर ही सूरदास ने श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की लीलाओं का कीर्तन किया* ।

वार्ता के इस कथन की पुष्टि सूरदास के इन पदों से होती है—

(१) ' गुरु बिनु ऐसी कौन करै । '

इस पद में सूरदास कहते हैं कि—

भवसागर तें बूड़त राखे 'दीपक' हाथ धरें ।

सूरदास का सांकेतिक यह 'दीपक' ज्ञान प्रदीप रूप श्रीमद्भागवत है। महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को ही कलिकाल रूप अज्ञानांधकार को दूर करने वाला ' प्रदीप ' कहा है । जैसा कि—

"श्रीमद्भागवतप्रदीपमधुना चक्रे मुदा वल्लभ ।" (निबंध)

---

* "पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास कों सुनाये × × × सो सगरी श्री सुबोधिनी कौ ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय में स्थापना कियौ । × × × ता पाछें श्री आचार्य जी ने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायौ । तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी । सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादस स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये ।" (प्रा० वा० र० पृ० १४-१५)

इसलिए सूरदास ने भी उक्त पद में भागवत का ही 'दीपक' शब्द से संकेत किया है†। महाप्रभु के मत से इस कलिकाल में श्री कृष्ण के नाम स्वरूप यह भागवत शास्त्र ही जीव के उद्धार करने में एक मात्र समर्थ है, इसीलिए सूरदास ने 'भवसागर तें बूड़त राखे' शब्दों का भी वहाँ प्रयोग किया है। अस्तु।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को श्रीमद्भागवत के 'सार समुच्चयय' रूप कहा है; क्यों कि श्रीमद्भागवत में से ही महाप्रभु ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक हजार नामों को उद्धृत कर 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की है, इसलिए महाप्रभु ने तत्व रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा श्रीमद्भागवत रूप ज्ञानदीपक का ही सूरदास को दान किया था। इस प्रकार सूरदास के उक्त पद से वार्ता के पूर्व कथन की तथा सारावली के 'तत्व सुनायो' वाले उल्लेख की पुष्टि होती है।

अब लीला भेद बतायो' वाले कथन को स्पष्ट करेंगे। श्रीमद्भागवत के तत्व स्वरूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वंतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दशविध लीला सूचक नामों का स्कंधानुसार निरूपण किया है‡, अतः 'सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा उक्त लीला भेद को महाप्रभु ने सूरदास को समझाया था, जिससे समग्र भागवत का अर्थ सूरदास के हृदय में स्फुरायमान हुआ था। इस कथन की पुष्टि जिस प्रकार वार्ता के "सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी" इस उल्लेख से होती है, उसी प्रकार आगे आने वाले पद से भी होती है—

---

† सूरदास ने निम्न पद में श्रीमद्भागवत को 'ज्ञानदीप' स्पष्ट रूप से भी कहा है—

"निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख तें जु दयौ।
श्री सुकदेव कृपा करि कै अति परीक्षित स्रवन पयौ॥
"ज्ञानदीप हिरदे" प्रगटायौ मनोकामना काज लयौ।
जग में प्रकास करि हरि कथा उर कौ तिमिर सबहि गयौ॥
'सूर स्याम' सुन हो रसिकनमनि बारंबार रस पीवो नयौ।"

‡ 'सर्गलीलाप्रवर्तकः', 'विसर्गकर्तासर्वेशः', 'स्थितिलीलाब्धिरच्युतो विजयप्रदः।' इत्यादि।

श्री भागवत सकल गुन-खानि ।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु, पोषण, ऊति, मन्वंतर जानि ॥
ईस, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि, ये दस लच्छन होय ।
'उत्पत्ति तत्व' 'सर्ग' सो जानो 'ब्रह्मकृता' विसर्ग है सोय ॥
कृष्ण 'अनुग्रह' 'पोषण' कहिये कृष्ण 'वासना' ऊति ही मानो ।
'आछे धर्मन की' प्रवृत्ति जो. सो 'मन्वंतर' जानो ॥
'हरि हरिजन की कथा' होय जहाँ सो 'ईशानु' ही मान ।
'जीव स्वतः हरि ही मति धारे' सो 'निरोध' हिय मान ॥
'तजि अभिमान कृष्ण जो पावै' सोई 'मुक्ति' कहावै ।
'उत्पत्ति, पालन, प्रलय करै जो हरि' 'आश्रय' कहावै ॥
सूरदास 'हरि की लीला' लखि कृष्ण रूप ह्वै जावै' ।

महाप्रभु ने उक्त सर्गादि लीलाओं का क्रम तथा अर्थ इस प्रकार किया है—

'आनंदम्य हरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधाहि सः ।
अत्र सर्गो, विसर्गश्च, स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वंतरेशानुकथा 'निरोधो' मुक्तिराश्रयः ।
अधिकारी साधनानि द्वादशार्थास्ततोऽत्रहि ॥' (निबंध)

अर्थ—"आनंद रूप हरि की लीला वह इस समग्र भागवत का अर्थ है ।" 'वह लीला' सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध मुक्ति और आश्रय के नाम से 'दशधा' है ।

अधिकारी के भेद को दिखाने वाला प्रथम स्कंध है । सर्व प्रकार के ज्ञान कहने वाला साधन रूप द्वितीय स्कंध है । तृतीय स्कंध से सर्गादि लीलाओं का क्रम है । महाप्रभु के सिवाय भागवत के सभी टीकाकार 'आश्रय' को 'निरोध' के स्थान पर और 'निरोध' को अंतिम 'आश्रय' के स्थान पर रखते हैं, किंतु उसकी असंगति को महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी में अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया है† ।

सूरदास ने भी अपने उक्त पद में निरोध (प्रलय) को अष्टम ही माना है । वह उनको महाप्रभु ही के द्वारा भागवत के लीला भेद के ज्ञान-प्राप्ति का सूचक है ।

† देखो दशमस्कंध सुबोधिनी की कारिकाएँ ।

इन लीलाओं के महाप्रभु द्वारा बतलाये हुए लक्षणों को ही सूरदास ने भी उक्त पद में कहा है। इससे उक्त बात की और पुष्टि होती है। महाप्रभु ने इन लीलाओं की व्याख्या इस प्रकार की है—

"अशीरस्यविष्णोः पुरुष शरीर स्वीकारः† 'सर्ग'। पुरुषाद्ब्रह्मादीनामुत्पत्ति 'र्विसर्गः, उत्पन्नानां तत्तन्मर्यादया पालनं स्थानं' स्थितानामभिवृद्धिः 'पोषणं', पुष्टानामाचार 'ऊतिः,' तत्रापि सदाचारो 'मन्वन्तरम्' तत्रापि विष्णुभक्तिरीशानुकथा भक्तानां प्रपञ्चाभावो 'निरोधः, निष्प्रपञ्चानां स्वरूपलाभो 'मुक्तिः', मुक्तानां ब्रह्म स्वरूपेणावस्थान 'माश्रयः'।"

आचार्य श्री के इस कथन का अर्थ वही होता है, जो सूरदास ने उक्त पद में सरलरीत्या किया है‡। इससे जाना जा सकता है कि महाप्रभु ने लीलाभेद से भागवत के द्वादश स्कंधों का अर्थ पुरुषोत्तम सहस्रनाम के उपदेश द्वारा सूरदास के हृदय में स्थापित किया था। इसी के अनुसंधान से सूरदास ने श्रीमद्भागवत को दो प्रकार से गाया था। एक द्वादश स्कंधात्मक कथा रूप से, जिसको सूरसागर कहते हैं, और दूसरे उसके सिद्धांतात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार-तत्व-रूप से, जिसको उन्होंने सारावली नाम दिया है। जैसा कि आगे स्पष्ट किया जा रहा है, सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमें उन लीलाओं के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओं का भी समावेश हुआ है। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में आचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं के एक हजार नामों के उपरांत अन्य पुराणादि से भी तत्तल्लीला पोषक ७५ नामों को विशेष रूप से उद्धृत किया है। जैसा कि—

"पञ्चसप्तति विस्तीर्णं पुराणांतर भाषितम्।" २४६

इसीलिए सूरदास ने भी अन्य पुराणादि की कथाओं को स्वीकार किया है।

महाप्रभु जी श्रीमद्भागवत से अविरुद्ध ऐसे सर्गादि पाँच लक्षण वाले अन्य पुराणों को भी 'हरि का स्वरूप' मानते हैं§।

---

† तत्त्व रूप से।

‡ देखो 'निबंध प्रकाश' आदि ग्रंथ।

§ पुराण हरिरेवस:। पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा। (निबंध)

भागवत के प्रथमस्कंध से द्वादशस्कंध पर्यंत कीर्तनों की 'सूरसागर' नाम से प्रसिद्धि है। यह प्रसिद्धि महाप्रभु के समय से ही है, क्योंकि वार्ता में लिखा है कि महाप्रभु सूरदास को देखते तब 'आओ सूरसागर !' इस प्रकार कहते थे।

महाप्रभु श्रीमद्भागवत को 'सागर' मानते हैं। जैसा कि—

हर्यावेशित चित्तेन श्रीमद्भागवत सागरात्।' (पु० सहस्रनाम)

भागवत की इन्हीं दशविध लीलाओं को सूरदास के हृदय में स्थापित कर सूरदास को भी महाप्रभु ने 'सागर' बना दिया था। इससे सूरदास 'भागवत' स्वरूप हो चुके थे, इसलिए ही महाप्रभु उनको सागर कहते थे। महाप्रभु द्वारा कहा हुआ 'सागर' नाम सूरदास के हृदय से उच्छलित लीला भावों के तरंग रूप पदों से सार्थक हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है 'आओ सूरसागर !' कथन की पुष्टि 'सागर सूर विकार जल भरयौ' वाले अंतःसाक्ष्य से होती है। इससे मानना होगा कि महाप्रभु के समय में ही सूरदास भागवत की द्वादश स्कंधात्मक लीलाओं को विशेषतया गा चुके थे, तभी तो वे उस समय में भी 'सागर' नाम से प्रसिद्ध थे।

अब सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख पर विचार करेंगे। यहाँ 'एक लक्ष' वाला कथन संख्यावाची नहीं है, किंतु वह कृष्ण का सूचक है। अर्थात् श्रीमद्भागवत में नवलक्षण-सर्गादि नव लीलाओं से लक्ष्य-आश्रय-स्वरूप श्रीकृष्ण का ही निरूपण किया गया है। इसलिए इन दशविध लीलाओं को गाने के पूर्व उन लीलात्मक श्रीकृष्ण के पद की वंदना सूरदास ने की है। इस कथन का समर्थन 'सूरसागर' के भागवत-माहात्म्य वाले प्रारंभिक मंगलाचरण के इस पद से होता है—

'वंदों श्री गिरिधरनलाल के चरन कमल रज सदा सीस बस।
जिनकी कृपा कटाच्छ होत ही पायौ परम तत्व लीला रस†॥'

नंददास ने भी अपने श्रीमद्भागवत भाषा के मंगलाचरण में नव लक्षण से लक्ष्य श्रीकृष्ण की वंदना की है।

नव लक्षण करि 'लक्ष' जो, दसयें आश्रय रूप।
नंद बंदि लै ताहि कों, श्रीकृष्णास्य अनूप॥

---

† कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रारंभिक मंगलाचरण का पद।

उक्त सब प्रमाणों से यह निश्चित होता है कि महाप्रभु ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के 'तत्व रूप' 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सुनाकर श्रीमद्भागवत और उसकी दशविध लीलाओं के भेदों को समझाया था। उसी ज्ञान के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत और तदनुकूल अन्य पुराणान्तरों क तत्तल्लीला विषयक सहायक कथाओं को भी श्रीनाथ जी की पद-वंदना कर गायन किया है। ये कथाएँ महाप्रभु द्वारा 'सूरसागर' के नाम से प्रसिद्ध हुईं और इन्हीं लीलाओं-कथाओं के सैद्धांतिक तत्व सार-रूप से उन्होंने सूर-सारावली को गाया था; अतः इन दोनों का मुख्य आधार भागवत होते हुए भी इन दोनों की रचनाओं के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे।

(च) अब हम श्रीमद्भागवत स्वरूप सूरसागर के सार रूप 'सारावली' पर विचार करेंगे—

सूरसागर में श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं का उसके स्कंध, प्रकरण और अध्यायानुसार प्राप्त कथाओं द्वारा गायन किया गया है। इन कथाओं में श्रीकृष्ण के अनेक अवतार और उनकी अनेक लीलाओं का स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत क अनेक अस्पष्ट लीलाओं को भी अपनी सुबोधिनी में कई स्थानों पर स्पष्ट किया है†। इससे जाना जा सकता है कि श्रीमद्भागवत में गूढ़ रूप से भी कई लीलाओं का वर्णन हुआ है।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में श्रीभद्भागवत की स्पष्ट और अस्पष्ट सभी लीलाओं को उनके तत्व रूप एक हजार पचहत्तर नामों से प्रकट किया है। इसलिए 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को महाप्रभु ने 'भागवतसार समुच्चय' कहा है। सूरदास ने भी इसी 'सहस्रनाम' के आधार पर अपने सूरसागर की लीलाओं, कथाओं के सार तत्व रूप इस सारावली की रचना की है। इसलिए भागवत की गूढ़ लीलाएँ भी, जो 'द्वादश स्कंधों के कथात्मक' 'सूर-सागर' में स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं हैं, सारावली में स्पष्ट हुई हैं।

जिस प्रकार महाप्रभु ने भागवत के सार रूप पुरुषोत्तम सहस्रनाम को 'भागवत सार समुच्चय' रूप कहा है, उसी प्रकार सूरदास ने सूरसागर के सार

---

† स्वभावत एव खिन्ना तां त्यक्त्वा अन्यथा सहस्थित इति। तत्तश्चेत् समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरां क्षोभं प्राप्नोति (१०-३१-१० सु०) यहाँ खंडिता को स्पष्ट किया है।

रूप इस ग्रंथ को 'सारावली' कहा है । इस प्रकार 'सारावली' नाम भी पुरुषोत्तम सहस्रनाम के 'सार समुच्चय' नाम पर ही आधारित है ।

अब हम 'सारावली' के तात्विक सार वाले कथन की प्रामाणिकता 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के नामों से स्पष्ट करेंगे । पुरुषोत्तम सहस्रनाम के प्रारंभ में महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

'श्रीकृष्णः'[१], सच्चिदानंदो[२], नित्यलीलाविनोदकृत्[३] ।
सर्वागमविनोदीच[४], लक्ष्मीशः[५], पुरुषोत्तमः[६] ॥
आदिकालः[७] सर्वकालः[८], कालात्मा[९], माययावृतः[१०] ।६॥

इन्हीं नामों के अनुसार सूरदास अपनी सारावली के प्रारंभ में श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

'अविगत, आदि, अनंत, अनूपम, अलख, पुरुष, अविनासी ।
पूरनब्रह्म, प्रकट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ॥ १ ॥

सारावली के इस वर्णन में 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उक्त नामों का इस प्रकार समावेश हुआ है—

*१. 'अविगत' = सर्वागमविनोदी[४], २. 'आदि' = आदि कालः[७], ३. 'अनंत' = सर्वकालः[८], ४. 'अनूपम = लक्ष्मीशः[५], ५. 'अलख' = माययावृतः[१०], ६. 'पुरुष' = सच्चिदानंदो[२], ७. 'अविनासी' = कालात्मा[९], ८. 'पूरनब्रह्म' = श्रीकृष्णः[१], ९. 'प्रगट पुरुषोत्तम' = पुरुषोत्तमः[६], १०. 'नित निजलोकविलासी' = नित्य लीलाविनोदकृत्[३] ।

सूरदास 'नित निज लोक विलासी' का विशदीकरण सारावली में इस प्रकार करते हैं—

---

* इन नामों के स्पष्ट अर्थ जानने के लिए देखो, गो० श्रीरघुनाथजी कृत 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम की टीका' तथा महाप्रभु कृत 'सुबोधिनी' आदि अन्य साहित्य ।

'नित्यलीलाविनोदकृत्' नाम का विवरण—

'जहँ वृंदाबन आदि अजर जहँ कुंज लता विस्तार ।
तहँ विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ॥२॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहँ नीर ।
सारस हंस चकोर मोर खग कूजत कोकिल कीर ॥३॥
जहँ गोबर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार ।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निसदिन करत बिहार' ॥४॥

आगे 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा', 'जगत्कर्ता' 'जगन्मयः' नामों का विशदीकरण सूरदास ने सारावली में चौबीस अवतारों के वर्णन से तथा सृष्टि की उत्पत्ति और तत्वों से किया है। जैसा कि—

खेलत-खेलत चित्त में आई 'सृष्टि करन विस्तार' ।
अपुने आपु करि 'प्रगट कियौ है हरि पुरुष अवतार' ॥५॥

इसमें 'जगत्कर्त्ता' नाम की सूचना है। इसका विस्तार आगे और भी किया गया है। आगे 'जगन्मयः' नाम का सूचन इस प्रकार हुआ है—

'कीने तत्त्व प्रगट तेही छन सबै अष्ट अरु बीस ।'

इन अट्ठाईस तत्वों से परब्रह्म ही इस जगत् रूप हुए हैं, ऐसा शुद्धाद्वैत सिद्धांत है†, अतः इससे 'जगन्मयः' नाम का सूचन होता है।

चौबीस अवतारों का हेतु मुख्यतः भक्तों के उद्धार का है, इसलिए उनके वर्णन से 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा' नाम का स्वतः बोध होता है।

सारावली में सर्गादि दस लीलाओं का इस प्रकार वर्णन किया गया है। महाप्रभु ने सर्ग लीला दो प्रकार की मानी हैं—अलौकिक और लौकिक।

अलौकिक सर्ग श्रीकृष्ण की 'निर्गुण-त्रिगुणातीत-लीला सृष्टि की उत्पत्ति' है। इसका वर्णन सूरदास ने सारावली के प्रारंभ में पूर्वोक्त २-३-४ तुकों में तथा आगे भी किया है।

लौकिक सर्ग अट्ठाईस तत्व आदि की उत्पत्ति है। इसका वर्णन सारावली में तुक ५ से १० तक किया है। इस उत्पत्ति का प्रकार भी महाप्रभु के कथनानुसार ही है, जैसा कि महाप्रभु अपनी 'भगवत्पीठिका' में सृष्टि-उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

---

† 'अष्टाविंशति तत्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः ।' (निबंध)

"श्रीपुरुषोत्तमस्य सृष्टेरिच्छा यदा जायते 'तदा रविकाश्मिरयोगो' 'यथा वह्निः' प्रजायते तथा 'कालोऽक्षराज्जातः। सदानदकटाक्षतः पृथक् भवति'। भ्रुवो रंध्रादुत्पद्यते 'कालात्प्रकृतिपुरुषौ'। प्रकृतेर्गुणात्मको' 'नारायणो' लक्ष्मीपतिः। 'तस्य' मनसो विष्णुः। ललाटाद्रुद्रः। नाभि-कमलात 'ब्रह्माजातः'।"

इसी को सूरदास ने सारावली में इस प्रकार कहा है—

"खेलत खेलत चित्त में आई सृष्टि करन विस्तार।
' अपुने आप करि' प्रगट कियौ है हरि पुरुष अवतार ॥५॥
माया क्षोभ कियौ बहु बिधि करि 'काल पुरुष के अंग।
' राजस तामस सात्त्विक' त्रैगुण' प्रकृति 'पुरुष'कौ संग॥६॥

तथाच—

अष्टाविंशति तत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः।

इस निबंध वाक्य और 'तत्वकर्ता' यह 'सहस्रनाम' वाले (श्लोक २७॥) नाम के अनुसार सूरदास सारावली में २८ तत्वों का इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

कीने तत्त्व प्रगट तेहि क्षण सबै अष्ट अरु बीस।
तिनके नाम कहत कवि 'सूर' जो 'निर्गुण' सबके ईस ॥७॥
'पृथ्वी','अप','तेज','वायु','नभ', संज्ञा 'शब्द', 'परस' अरु 'गंध'।
'रस'अरु'रूप'और 'मन','बुद्धि', 'चित्त', 'अहंकार' मति अंध ॥८॥
'पान', 'अपान', 'व्यान', 'उदान', और कहियत 'प्रान', समान।
'तक्षक','धनंजय', पुनि 'देवदत्त'और'पौंड्रक','शंख', 'द्युमान' ॥९॥
'राजस', 'तामस', 'सात्त्विक' तीनों जीव, ब्रह्म सुखधाम।
अट्ठाईस तत्त्व यह कहियत सो कवि 'सूर' जो नाम ॥१०॥

इस प्रकार द्विविध सर्गों के वर्णन के अनंतर ब्रह्मादि की उत्पत्ति से सूरदास विसर्ग का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नाभि कमल 'नारायण' की सो वेद गरभ अवतार।
नाभि कमल में बहुत ही भटक्यौ तउ न पायौ पार ॥११॥
तब आज्ञा भई यह हरि की नभ करो परम तप आप।
तब ब्रह्मा तप कियौ वर्ष सत दूर किये सब पाप ॥१२॥
तब दर्शन दीन्हों करुणाकर परमधाम निज लोक।
ताकौ दर्शन देखि भयौ अज सब बातन निःशोक ॥१३॥

जहाँ आदि 'निजलोक' महानिधि 'रमा सहस संजूत'।
आंदोलन झूलत करुणानिधि रमा सुखद अति पूत ॥१४॥
अस्तुति करें बिबिध नाना करि परम पुरुष आनंद।
जै जै जै श्रुति गीत गाय कै पढ़त हैं नाना छंद ॥१५॥
आज्ञा करी 'नाथ' चतुरानन करो सृष्टि विस्तार।
होरी खेलन की बिधि नीकी रचना रचे अपार ॥१६॥
दस ही पुत्र भये ब्रह्मा के जिन संच्यौ संसार।
स्वायंभू मनु प्रगट तब कीने अरु शतरूपा नार ॥१७॥

सारावली के इस वर्णन से ब्रह्म की उत्पत्ति नारायण के नाभी कमल से हुई ऐसा ज्ञात होता है। यह बात पूर्वोक्त 'पीठिका' के उल्लेख के अनुसार ही है। इसी प्रकार ब्रह्मा को जिस 'निज लोक' के दर्शन कराये हैं, वह अलौकिक 'सर्ग' का सूचक है। महाप्रभु ने—

"नमामि हृदयेशेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्।
'लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः' सेव्यमानं कलानिधिम् ॥"

इस श्लोक में भगवान् के दिव्य रूप का जो उल्लेख किया है, उसी के अनुसार सूरदास ने 'रमा सहस संजूत' आदि को यहाँ और अन्यत्र भी कहा है। यह महाप्रभु का कहा हुआ 'अलौकिक सर्ग' है।

यहाँ ब्रह्म की उत्पत्ति और उनके द्वारा सृष्टि की रचना का कथन 'विसर्ग' है। इसमें 'आदि कर्त्ता' नाम सार्थक हुआ है।

महाप्रभु 'पुरुषाद्ब्रह्मादीनामउत्पत्तिर्विसर्गः' जिस प्रकार कहते हैं, उसी प्रकार सूरदास 'ब्रह्माकृत विसर्ग है सोय' कहते हैं। इसी के अनुसार यहाँ आदि पुरुष से ब्रह्मा और शतरूपा, स्वायंभू आदि की उत्पत्ति के वर्णन द्वारा विसर्ग का सूचन किया गया है।

फिर पृथ्वी आदि की स्थिति एवं चौदह लोक के निर्माण द्वारा 'स्थान' का निरूपण सारावली में तुक १६ से २४ तक किया गया है। यथा—

सातों द्वीप कहे सुकमुनि ने सोई कहत अब 'सूर'।
जंबू प्लक्ष क्रौंच शाल्मलि कुश पुष्कर भरपूर ॥३४॥

इसी प्रकार पोषण (अनुग्रह) और उति लीला (कर्मवासना) का सूचन सूरदास ने तुक ३५-३६ में इस प्रकार किया है—

अपने अपने 'स्थानन' पर 'फगुवा' दियौ चुकाय।
जब जब हरि माया तें दानव प्रकट भये हैं आय ॥३५॥

तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीनों, 'असुर संहार' ॥३५३॥

यहाँ 'फगुवा' के नाम से स्थानाधिपतियों को अधिकार देकर अभिवृद्धि करने का सूचन है। यही पोषण-अनुग्रह रूप है। महाप्रभु आज्ञा करते हैं कि-

"स्थिता नाम अभिवृद्धि पोषणं"।

इसी प्रकार देव और दानवों को कर्मों में प्रवृत्त कर सद्-असद् वासना रूप ऊति-लीला आप करते हैं। पुनः अवतार लेकर दानवों के नाश द्वारा आप भक्ति की प्रवृत्ति करते हैं—यही सद् वासना है। ऐसे सद्, असद् और सद्-असद् वासना रूपी ऊति-लीला का भी यहाँ सूचन हुआ है।

इस प्रकार ३५ तुकों से श्रीकृष्ण की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण और ऊति ऐसी पाँच लीलाओं को तत्वरूप से सूरदास ने सारावली में गाया है। तत्वरूप से इसलिए कि उनमें तत्तत्कथाओं का विस्तार नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि ये कथाएँ विस्तार से सूरसागर में कही जा चुकी हैं. अतः यहाँ पर उनको तत्वरूप से कहा गया है।

महाप्रभु के मत से भागवत की ये पाँच लीलाएँ 'भगवदन्वय' रूप हैं. अर्थात् इन पाँच लीलाओं में भगवान् का समन्वय है। भगवान् कारण रूप से उनमें रह कर इन लीलाओं को करते हैं। शेष मन्वंतरादि पाँच लीलाएँ 'व्यतिरेक' वाली हैं, अतः उनमें भगवान् भिन्न रूप से दिखायी देते हैं। इसीलिए उन लीलाओं का निरूपण सूरदासने २४ अवतारों के कार्यों द्वारा सारावली में विस्तृत रूप से किया है। इस प्रकार सूरसागर रूपी भागवत में भगवान् के अनेक अवतारों का जो निरूपण किया गया है, उनके सार रूप से सारावली में मुख्यतः २४ अवतारों का वर्णन हुआ है। अन्य पुराणादि के सहारे उनकी कथाओं का विस्तार और गौण रूप से अन्य अवतारों का भी उसमें उल्लेख हुआ है, जो कि तत्तत् लीलाओं के पोषक हैं। इस प्रकार सारावली में श्री वल्लभ गुरु द्वारा बतलाये हुए तत्व और दशधा लीलाओं का उल्लेख हुआ है।

महाप्रभु ने बाल्मीकि रामायण और महाभारत को भी शास्त्र रूप में प्रमाण माना है, इसलिए इन दोनों ग्रंथों की विशेष कथाओं को भी सारावली में गाया है। जैसा कि—

---

† अर्थोऽयमेव 'निखिलैरपि वेदवाक्यै' 'रामायणैः' सहित 'भारत' पंचरात्रैः।
अन्यैश्च 'शास्त्रवचनैः सह तत्त्व 'सूत्रै' निर्णीयते सहृषते हरिणा सदैव।

रामायण— ब्याह केलि सुख बरनन कीनों मुनि बाल्मीकि अपार।
सो सुख 'सूर' कह्यौ यह कीरति जगत करी विस्तार ॥२४२
— सभा रची चौपर क्रीडा करि कपट कियौ अति भारी।
जीत युधिष्ठिर भई सब जानी तउ मन में अधिकारी ॥७६२

सूरदास ने सागर और सारावली में अन्य पुराणों की कथाओं को भी स्वीकार किया है। इसका उल्लेख भी उन्होंने कहीं-कहीं किया है। जैसा कि—

सो 'ब्रह्मांड पुराण' व्यासमुनि कियौ बदन उच्चार। १६२।

इस प्रकार सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' और द्वादशस्कंध के कथात्मक 'सूरसागर' के तात्विकसार रूप सिद्ध होती है। भाषा, भाव, वर्णन शैली, कथा के प्रकार और सिद्धांतादि के साम्य से भी इसकी पुष्टि होती है। इससे सारावली के निम्न कथन की प्रामाणिकता निर्विवादतः स्पष्ट होती है—

कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला वेद बतायौ॥
ता दिन तें यह लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर' सारावली गावत अति आनंद॥

उपर्युक्त विवेचन से भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि 'सारावली' के रचयिता अष्टछाप के सूरदास ही थे। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना सूरदास के लिए की थी; अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए नहीं, जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है। सूरसागर के तात्विक सार रूप होने के कारण सारावली सूरदास की स्वतंत्र रचना सिद्ध होती है, क्यों कि सूरसागर और सारावली के दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हैं।

अब हम 'सारावली' में कथित '६७ बरस प्रवीन' और 'सरस संवत्सर लीला' इन दो महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करते हैं। ये दोनों कथन ऐतिह्य दृष्टि से एक दूसरे के सापेक्ष हैं, अतः हम इन दोनों पर एक साथ विचार करते हैं।

"सरस संवत्सर लीला" वाले कथन को स्पष्ट करने से '६७ वरस प्रवीन' वाला कथन अपने आप स्पष्ट हो जाता है, इसलिए सब से प्रथम 'सरस संवत्सर लीला' वाले उल्लेख पर ही विचार किया जाता है।

सूरदास की कही हुई "सरस संवत्सर लीला" कौनसी है, यह जानना सर्व प्रथम आवश्यक है। श्री मुंशीराम जी शर्मा 'सरस' नामक संवत्सर की कल्पना द्वारा व्यर्थ उलझन में पड़ गये हैं‡। हमारा निश्चित मत है कि 'सरस' नाम का कोई संवत् नहीं होता है। ऐसी दशा में 'सरस संवत्सर लीला' का अर्थ होगा संवत्सर की सरस लीला। यहाँ संवत्सर की सरस लीला का तात्पर्य श्रीकृष्ण की वर्ष भर की दान-मानादि रसात्मक लीलाओं से है, जिनको सूरदास ने सारावली में गाया है। इन लीलाओं के उल्लेखों का महत्व तब समझ में आ सकेगा, जब हम वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांत और उसकी सेवा-प्रणाली विषयक आवश्यक अंगों को जान लेंगे।

वल्लभ संप्रदाय में 'रसोवैसः' 'सर्वरसः' आदि श्रुतियों के आधार पर परब्रह्म को रसात्मक माना है। महाप्रभु के मत से यह रसात्मक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण हैं, अतः पुष्टिमार्ग के परमदैवत् तथाच उपास्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

ये रसात्मक श्रीकृष्ण अपने वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं संकर्षण व्यूहों से ब्रज में प्रगट हुए थे। उन चार व्यूहों से उन्होंने मोक्ष, वंशवृद्धि, धर्मोपदेश तथाच संहार कार्य किया था। धर्मी मूलस्वरूप रसात्मक श्रीकृष्ण ने तो एक मात्र आनंददायी लीलाएँ की हैं। महाप्रभु के मत से ये धर्मी स्वरूप की स्थिति केवल ब्रज में और भक्तों के हृदय में रहती है, क्यों कि इनको केवल भाव रूप माना गया है। भक्त जब, जैसे और जहाँ इस स्वरूप की भावना करते हैं, तब वैसे और वहाँ स्वरूप प्रकट होकर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करता है, इस लिए यह स्वरूप और उसकी लीलाएँ भी नित्य मानी गयी हैं। ऋग्वेद आदि से भी लीला की नित्यता का समर्थन होता है*।

रसात्मक भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज में श्रुतियों को दिये हुए वरदान की पूर्ति के लिए प्रकट होकर उनके साथ अनेक प्रकार की आनंदमयी लीलाएँ की हैं। इन लीलाओं का वर्णन श्रीमद्भागवत तथाच पद्म, ब्रह्म, बाराह आदि पुराण और गर्ग संहिता, नारद पंचरात्रि आदि में प्राप्त है।

---

‡ सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३३

* ता वां वास्तून्यूश्मसिगमध्यैयत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमपदमवभाति भूरि॥

—ऋग्वेद २—२—२५

इन प्रमाणों के आधार पर पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना का निर्माण हुआ है। इसमें नित्य और वर्षोत्सव की भावनाएँ प्रधान हैं। नित्य की भावना में भगवान् श्रीकृष्ण नंदालय में बाल भाव से और निकुंज में किशोर भाव से प्रातःकाल से शयन तक अनेक प्रकार की आनंदात्मक लीलाएँ करते हैं। वर्षोत्सव की भावना में भगवान की प्रागट्य लीला से लगाकर हिंडोलना पर्यंत की षट्ऋतु की लीलाओं का समावेश हुआ है। ये सब लीलाएँ रसात्मक ब्रह्म के संबंध वाली होने से सरस हैं।

नित्य की भावना और वर्षोत्सव की भावनाओं का क्रमबद्ध वर्णन पुष्टि-मार्गीय सेवा प्रणाली के अनुसार सूरदास ने सारावली में तुक ८७० से १०८६ तक किया है। पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम जन्माष्टमी से माना गया है, इसलिए सूरदास ने भी जन्माष्टमी से ही इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

जन्माष्टमी (भाद्र० कृ० ८-६)—

नित प्रति मंगल रहत महर के, नितप्रति बजत बधाई।
नितप्रति मंगल कलस धरावत, नितप्रति वेद पढ़ाई ॥८७०॥

ये सब बातें पुष्टिमार्ग की सेवा में प्रति वर्ष होती हैं। श्रीमद्भागवत् दशमस्कंध के जन्म प्रकरण की देवस्तुति भी पढ़ी जाती है।

राधाष्टमी (भाद्र० शु० ८)—

श्री वृषभानुराय के आँगन नितप्रति बजत बधाई।

पुष्टिमार्ग में जन्माष्टमीवत् राधाष्टमी भी प्रतिवर्ष मानी जाती है।

बाललीला—

बाल केलि क्रीडत व्रज आँगन जसुमति कों सुख दीन्हों।

जन्माष्टमी और राधाष्टमी के बीच बाललीला गायी जाती है। पलना आदि भी होते हैं।

चंद्रावली आदि का उत्सव (भाद्र० शु० ५-६-७)—

चंद्रावली गोप की कन्या चंद्रभाग गृह जाई ॥८७२॥

पुष्टिमार्ग में भादों सुदी ५ को चंद्रावली जी का, सुदी ६ को विशाखाजी का तथा सुदी ७ को ललिता जी का प्रागट्योत्सव माना जाता है।

दान (भाद्र० ११ से) –

लूट लूट दधि खात साँवरो जहाँ साँकरी खोर (८७३ से ८६४)

इसी दान के प्रकरण में सूरदास ने नंदालय और निकुंज की नित्यकेलि के क्रमों को भी ले लिया है, जो पुष्टिमार्गीय भावना के अनुकूल हैं।

पुष्टिमार्ग में दान, होरी, रास आदि उत्सवों में नित्य की तथाच वर्षोत्सव की सभी अनुकूल भावनाओं का समावेश किया जाता है। इस बात की पुष्टि इन पदों* से होती हैं—

(१) होरी में दान की भावना—

माई मेरौ मन मोह्यौ साँवरे अब घर हो मोपै रह्यौ न जाय।

इस होरी की धमार में—

माई हौं गोरस लै निकसी श्री वृन्दावन ही मँझार।
आय अचानक औचका मटुकी हो मेरी दीनी ढार॥ (त्रिलोकी)

(२) दान की धमार—

सखी री रसिया नंदकुमार दधि बेचन गई री।
गलिन गलिन सखी हौं फिरी दधि कौहु नांहि लई री॥ (सूरदास)

(३) कनक पुरी होरी रची मोहन ब्रज बाला।
कहाँ की तुम ग्वालिनी मोहन ब्रज बाला।
कहाँ दधि बेचन जाय मोहन ब्रज बाला। (छीतस्वामी)

होरी में मंगला से शयन पर्यंत की नित्य की भावना के अनेक पद प्राप्त होते हैं, जैसा कि—

आज भोरहिं ब्रज युवतिन. रोर मचायौ॥ आदि

इन पदों से उक्त बात की पुष्टि होती है। इसी भावना के अनुसार सूरदास ने दान प्रकरण में निकुंज तथा नंदालय की नित्यकेलि की इस प्रकार संगत भावनाएँ की हैं—

इंदा वृंदा और राधिका चंद्रावलि सुकुमारि।
बिमल-बिमल दधि खात सबन कौ करत बहुत मनुहारि॥८६५॥
गहि बहियाँ लै चले स्याम घन सघन कुंज के द्वार।
पहले सखी सबै रचि राखी कुसुमन सेज सँवार॥८६६॥

---

* १-२-३ पद देखो त्रिकमचक द्वारा प्रकाशित 'वर्षोत्सव के पद' द्वितीय भाग पृ० ४४४–४८०

नाना केलि सखिन संग बिहरत नागर नंद कुमार ।
गोवर्धन की सघन कंदरा कीनौं रैंन निवास ।
भोर भये निज धाम चले अति आनंद विलास ॥६०७॥

नंदालय की मंगला से राजभोग पर्यंत की लीला—

नंद धाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ रहे निज सैंन ।
यसोमति मात जगावत भोरहिं जागे अंबुज नैंन ॥६०२॥
करी मुखारो और कलेऊ कीनों जल असनान ।
करि शृंगार चले दोऊ भया खेलन को सुखदान ॥६०३॥
कहुँ खेलत कहुँ ग्वाल मंडली आँख मिचौनी खेल ।
भोजन समय जात यसुमति ने लीनें दुहुन बुलाय ॥६०५॥

पुनः निकुंज की नित्य लीला (मान आदि)—

राधा सों मिलि अति सुख उपज्यौ उन पूछी इक बात ॥६१०॥
द्वितीय रूप देख अबला कौ मान बढ़्यौ तन छाँह ॥६१४॥

निकुंज के मंगला शृंगार आदि—

जागे प्रात निपट अलसाने भूषन सब उलटाने ।
करत सिंगार परस्पर होऊ अति आलस सिथिलाने ॥१०१६॥

सांझ की उत्थापन आदि की लीला वन की है, उसका वर्णन—

कंद मूल फल दीने गोधन सो निसि कों मैं खायौ ॥६११½॥

दान के पद १५ दिन तक गाये जाते हैं । इसलिए भी नित्य की भावनाएँ संगत होती हैं ।

निकुंज प्रकरण में सूरदास ने रास, व्रतचर्या, जल-विहार और हिंडोलना की लीलाओं को प्रसंगानुसंधान तथा इन भावनाओं के अनुकूल होने से ले लिया है, जैसा कि—

नित्यरास—

नाना बंध विधि रस क्रीड़ा खेलत स्याम अपार ॥ ६७६ ॥
यह निकुंज कौ वर्णन करिके वेद रहे पचिहार ।
नेति नेति कहेउ सहस वेद विधि तऊ न पायौ पार ॥१००६॥

इस स्थान पर सूरदास ने बृहद् बामन पुराण तथा पद्म पुराण की उन कथाओं का भी उल्लेख किया है, जिनका संबंध रासलीला से है । बृहद् बामन पुराण के अनुसार श्रुतियों को ब्रह्म ने अपने निर्गुण रसात्मक स्वरूप तथा

अपनी आनंदमयी लीला का दर्शन देकर उनको अपने स्वरूपानंद देने का वरदान दिया था। इसलिए सारस्वत कल्प में ये श्रुतियाँ व्रज में गोपियों के रूप में प्रकट हुई थीं। इसी प्रकार दंडकारण्य के ऋषियों को रामचंद्र जी ने वरदान दिया था, अतः वे व्रज में कुमारिकाओं के रूप में हुए। यह कथा पद्मपुराण में है।

इन गोपियों और कुमारिकाओं के साथ कृष्ण ने रासलीला की थी, अतः पुष्टिमार्ग में रास का उत्सव आश्विन शु० १५ को माना जाता है। इसके अनुसार सूरदास ने यहाँ दोनों प्रकार के रास का वर्णन किया है—एक नित्य-रास, जो निकुंजादि में विविध प्रकारों से होता है और दूसरा कृष्णावतार का रास।

'नाना बंध विधि रस क्रीड़ा' वाला सारावली का पूर्व वर्णन नित्यरास का सूचक है और तुक १००७ से १००६ का रास अवतार दशा का है। सूरदास ने वहाँ इस प्रकार उल्लेख किया है—

कृष्णावतार का रास—

सो श्रुति रूप होय व्रजमंडल कीनों रास विहार।
नवल कंज में अंस बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार ॥१००८॥
पुनि ऋषि ' राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय।
'चरन प्रसाद राधिका देवी' उन हरि कंठ लगाय ॥१००६॥

व्रतचर्या—

'चरन-प्रसाद राधिकादेवी' से यहाँ तात्पर्य है, श्रीकृष्ण की तामस आधिदैविक शक्ति रूप 'कात्यायनी' से। 'राधिका' शब्द 'राधस्' मुख्य शक्ति वाचक है। उनकी आराधना से ही कुमारिकाओं को रास का वर प्राप्त हुआ था*। इसमें हेमंत मास की व्रतचर्या की भी सूचना मिलती है। पुष्टिमार्ग में व्रतचर्या का उत्सव मार्गशीर्ष कृ० १ से एक मास पर्यंत माना जाता है, अतः रास और व्रतचर्या का क्रम भी सेवा-प्रणाली के क्रमशः संगत ही रहता है।

इसके आगे सारावली में जल-विहार और झूला का जो वर्णन निकुंज की नित्य-केलि में आया है, वह वर्षोत्सव के क्रम से संगत नहीं है, क्यों कि वर्षोत्सव के क्रम में ये उत्सव उष्णकाल और वर्षाऋतु में होते हैं।

सूरदास ने इन उत्सवों का यहाँ उल्लेख कर जिस प्रकार निकुंज-केलि के वर्णन में विशेषता की है, उसी प्रकार यह भी सूचित किया है कि ये दोनों

* इस विषय का विस्तृत विवेचन महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी तथा श्री विट्ठलेश ने अपनी टिप्पणी में किया है।

उत्सव प्रत्येक ऋतु में होते हैं। इसलिए इनमें क्रम का प्राधान्य नहीं दिया है। युगलगीत के श्लोक और लीलाओं की संगति से भगवान श्रीकृष्ण पौष में भी जलविहार करते हैं, यह सुबोधिनी प्रभृति से जाना जा सकता है। चूंकि संप्रदाय की सेवा में वात्सल्य भाव का प्राधान्य है, अतः जल-विहार को उष्ण-काल के क्रम में रखा गया है, अन्यथा किशोर भाव से तो शरद-ऋतु में भी रासोत्सव के समय प्रभु ने जलक्रीड़ा की ही है।

इस प्रकार ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण के जलविहार तथा हिंडोला के उत्सवों के क्रम को सारावली में निकुंज की नित्य-केलि के साथ ले लिया है। जैसा कि—

'कबहुँक' केलि करत यमुना जल सुंदर 'शरद' तड़ाग।'
'कबहुँक' मधुर माधुरी 'झूलत' आनँद अति अनुराग ॥१०२३॥

इन वर्णनों के अनंतर सूरदास ने बसंत, होरी, डोल और बनविहार (फूलमंडलियों) की लीलाओं को तुक १०२५ से १०८८ तक गाया है, जो सांप्रदायिक वर्षोत्सव की भावनाओं से क्रम के अनुकूल हैं।

'प्रथम बसंत पंचमी' शुभ दिन मंगलचार बधाये ॥१०२५॥

संप्रदाय की प्रणाली के अनुसार बसंत माघ शु० ५ से शु० १४ तक माना जाता है। शु० १५ की होरीदांडारोपण होता है। इसका उल्लेख सारावली में इस प्रकार है—

होरी दाडों दिवस जानिके अति फूले ब्रजराज ॥१०५०॥
विप्र बुलाय वेद विधि करिके होरी दांडो रोप ॥१०५१॥

फिर फाल्गुन कृ० १ से फाल्गुन शुक्ल १५ तक तीस दिन की होरी मानी जाती है, जिसका मितिवार वर्णन सारावली में इस प्रकार प्राप्त होता है—

'परिवा' प्रथम दिवस होरी कौ नंदराय गृह आई ॥१०५२॥
'शुक्लपक्ष' परिवा पुरुषोत्तम क्रीडा करत अपार ॥१०६७॥
'पून्यौ' सुख पाये ब्रजवासी होरी हरख लगाय ॥१०८५॥

फिर 'डोल'—

यसुमति माय लाल अपुने कों 'सुभ दिन डोल' झुलायौ।

यहाँ शुभ दिन इसलिए कहा गया है कि पुष्टिमार्ग में श्रीविट्ठलेश व निर्णय के अनुसार 'उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र' जिस दिन हो, उस दिन प्रभु को डोल झुलाने का नियम है। मिति निश्चित नहीं है। उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र १५-१-२ फाल्गुन शुक्ल और चैत्र कृष्ण के दिनों में किसी एक दिन आता है।

चैत्र कृ० २ को द्वितीया को पाट का उत्सव माना जाता है। उसमें गोपादि की यमुना-स्नान की तथाच प्रभु के पाट विराजने की भावनाएँ हैं। इस आधार पर सूरदास ने सारावली में गाया है कि—

'यमुना जल क्रीडत' ब्रजवासी संग लिये गोविंद।
सिंहद्वार 'आरती उतारत' यसुमति आनँद कंद ॥१०८७॥

फिर बनविहार की भावना से संप्रदाय में दो-तीन मास तक फूलमंडलियाँ होती हैं। इनमें उपवन क्रीड़ा-कुंज और निकुंजादि की भावना है। इसीलिए उन दिनों में कुंज-निकुंजादि के पद भी गाये जाते हैं। यथा—'चलो किन देखन कुंज कुटी' इत्यादि। इस वनविहार की भावना सारावली में इस प्रकार प्राप्त है—

यह विधि क्रीडत गोकुल में हरि निज वृंदावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन सुंदर बहुलावन अभिराम ॥१०८८॥
नंदग्राम संकेत खिदरबन और कामबन धाम।
लोहबन माँट बेलबन सुंदर भद्र महदबन ग्राम ॥१०८९॥
चौरासी ब्रज कोस निरंतर खेलत हैं बल मोहन।

इस प्रकार सूरदास ने पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव की लीला भावनाओं को सारावली में 'सरस संवत्सर की लीला' रूप में गाया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वर्षोत्सव की सेवा-भावना का विधि पूर्वक निर्माण गो० विट्ठलनाथ जी ने बड़ी अद्भुत रीति से किया था। इस रीति के अनुसार सेवा करने से कलियुग में भी द्वापर का अनुभव होता है। भक्तमाल के रचयिता नाभा जी ने इसीलिए गाया है कि—

'राग भोग नित विविध रहत परिचर्या ततपर।
सज्या भूषन बसन रुचिर रचना अपने कर॥
वह गोकुल वह नंद-सदन दीच्छित कौ सोहै।
प्रगट विभौ जहाँ घोष देखि सूरपति मन मोहै॥

बल्लभ सुत बल भजन के, 'कलियुग में द्वापर कियौ।
विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों, लाल लड़ाल कै सुख लियौ॥'

गो० विट्ठलनाथ जी ने इस कलियुग में कृष्णलीलाओं को सेवा-प्रणाली द्वारा साक्षात् कर दिखाया था, इसीलिए सूरदास ने गाया कि 'गुरुप्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।' अर्थात् महाप्रभु और विट्ठलनाथ जी के प्रसाद से ही आज मुझे अपनी सरसठ वर्ष की आयु में यह संपूर्ण साक्षात्कार की भावनाओं वाली सेवा की नित्य और वर्षोत्सवों की लीलाओं के दर्शन हो

हे हैं। इन लीलाओं के समझने में सूरदास उस समय 'प्रवीन' हो चुके थे, अतः उन्होंने अपने लिये 'प्रवीन' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन लीला-भावनाओं के ज्ञान में प्रवीणता की नितांत आवश्यकता है, क्यों कि जब तक लीला भेद नहीं जाना जाय, तब तक इन भावनाओं का वास्तविक ज्ञान भी नहीं हो सकता है। इसी महत्ता को प्रकट करने के लिये सूरदास ने शिवजी का दृष्टांत भी दिया है कि अनेक विधानों से बहुत दिनों तक तप करने पर मर्यादा भक्त शिरोमणि शिवजी ने भी इस लीला का पार नहीं पाया है, अर्थात् उनको भी इसका अनुभव नहीं हुआ है। शिवजी को भी यह लीला दुर्लभ है, इस बात को सूरदास ने रामचरित्र आदि कई स्थानों पर अन्यत्र भी कहा है—

सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव रामचरित सुखसार।
अवगाहन करि कै सब देख्यौ तऊ न पायौ पार ॥१४७॥

नहिं प्रवेस अज, सिव, गनेस पुनि कितक बात संसार ॥६६६॥

सूरदास अपने को अन्य स्थानों पर भी प्रवीन, चतुर, सुजान आदि कहते हैं, यथा—

'ब्रज बधू बस कियौ मोहन, 'सूर' 'चतुर सुजान'।'

संप्रदाय के इतिहास की संगति के अनुसार गो० विट्ठलनाथ जी ने वर्षोत्सव के अद्भुत सेवा प्रकार का निर्माण वि० सं० १६०२ में किया था। इस समय सूरदास ६७ वर्ष के थे। इससे सूरदास का जन्म वि० सं० १५३५ में होना सिद्ध होता है, जैसा गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है।

सारावली के अनंतर सूरदास ने 'सेवाफल' की रचना की है। इसमें उन्होंने सेवा के विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

सेवा की यह 'अद्भुत रीति'। श्री विट्ठलेश सों राखो प्रीति ॥

इस कथन से उक्त बात की पुष्टि होती है। श्री विट्ठलनाथ ने महाप्रभु की प्रकट की हुई सेवा में वर्षोत्सव की भावनाओं को अद्भुत रीति से स्थापित कर उनका विस्तार किया है। इसका रहस्य श्री विट्ठलनाथ पर प्रीति रखने से ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि ये भावनाएँ उनकी स्वतंत्र खोज की हुई वस्तुएँ हैं।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि सारावली में सर्गादि लीलाओं के साथ वर्षोत्सव की सेवा-भावना को क्यों मिलाया गया है? इसका उत्तर इस प्रकार है—

(१) वर्षोत्सव की सेवा-भावना का पर्यवसान निरोध में है । इससे प्रपंचासक्ति दूर होकर भगवदासक्ति सिद्ध होती है । इसलिए सारावली के तत्व रूप आठवीं निरोध लीला से उसकी संगति होती है, अतः उसका विस्तार यहाँ आवश्यक था ।

(२) वर्षोत्सव की इन लीलाओं की संगति सूरदास ने भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणि के प्रति कही हुई ब्रज-लीलाओं के वर्णन से की है, इसलिए भी ये आवश्यक हैं । जैसा कि—

एक दिना रुकमनि सों माधव करत बात सुखदाई ।
सुनि रुकमनि राधिका बिनु मोहि पल छिन कल्प बिहाई ॥

श्रीकृष्ण का यह कथन भागवत की कथा में नहीं है, किंतु पुराणांतर मे प्राप्त है, अतः उसकी पूर्ति सूरदास ने इस वर्णन से की है ।

विशेष मिलान—

सारावली—(१) कंचन बरन जात तेरौ वपु 'पीतांबर' पहिरावै ॥६३४॥

पद—वे जो धरत तन कनक 'पीतपट'सो तो सब तेरी गति ठानी ।

सारावली—(२) वायस अजा सब्द मन मोहन रटत रहत दिन रैन॥६५५॥

दृष्टिकूट पद—वायस अजा शब्द कौ मिलिबौ ता कारन उठि धावै ।

कवि-छाप के प्रयोगों की शैली भी सूरसागर के समान होने के कारण इसी की पुष्टि करती है । जैसा कि—

सारावली—(३) सातों द्वीप कहे सुक मुनि ने 'सोई' कहत अब सूर ।

फलश्रुति—

सूरदास की बड़ी-बड़ी सभी रचनाओं में जिस प्रकार फलश्रुति मिलती है, इसी प्रकार इसमें भी है । इससे भी इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि होती है।

इस रचना की विशिष्टता यह है कि सारावली के प्रारंभ में जिस 'अविगत आदि अनंत अनूपम' स्वरूप और उसके नित्य अलौकिक विहार का संकेत किया गया है, उसी स्वरूप और विहार के वर्णन का अंत में भी उससे मिलान किया है । जैसा कि—

सदा 'एक' रस 'एक अखंडित' 'आदि', 'अनादि', 'अनूप' ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत बिहरत जुगल स्वरूप' ॥१०६६॥

इसी प्रकार होरी के वर्णन की भी समाप्ति इस प्रकार की है—

संकर्षन के बदन अनल तें उपजी अग्नि अपार।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सों मानों होरी दई पजार ॥११००॥

यहाँ उत्पत्ति, पालन और प्रलय करने वाले 'आश्रय' स्वरूप ब्रह्म का वर्णन समाप्त होता है।

इसी प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत का भी अंत में सूचन इस प्रकार किया गया है—

सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण 'सबहिं अंस' गोपाल ॥११०१॥

इस प्रकार सारावली का प्रारंभ और अंत एकसा है। इससे कवि की काव्य-निपुणता भी प्रकट होती है। ऐसी रचना सूर के सिवाय और कोई नहीं कर सकता है।

होरी-भावना का रहस्य—

सारावली में जगत् की उत्पत्ति का वर्णन होरी की लीला के रूपक से किया गया है। इसका रहस्य यह है कि होरी में जिस प्रकार ऊँच-नीच का भेद तथा च किसी प्रकार की संकुचित भावना नहीं रहती है, उसी प्रकार इस सृष्टि के खेल में सभी से सभी प्रकार का खेल ईश्वर करता है, इसमें सब एक-रस खेल होता है, इसीलिए यह सारा जगत ईश्वर का होरी के खेल रूप है।

इस प्रकार यह सारावली अष्टछाप के सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है, और उसमें बड़ा भारी तत्वज्ञान भरा हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि—

(१) कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से यह सारावली निःसंदेह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसमें प्राप्त आत्म-कथन और कवि छापों से भी इसकी पुष्टि होती है।

(२) सारावली की रचना वि० सं० १६०२ में हुई है।

(३) सारावली का आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है।

(४) सारावली का दृष्टिकोण सैद्धांतिक रहा है।

(५) वि० सं० १६०२ पर्यंत सूरदास ने श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंध के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के जिन पदों को गाया था, उन्हीं का यह सूचीपत्र अथवा सिद्धांतात्मक सार है। सृष्टि रचना के

लिए उसकी प्रारंभिक 'विशिष्ट प्रस्तावना' और 'होरी खेल की कल्पना' इस सिद्धांतात्मक दृष्टि की पुष्टि करती है।

(६) द्वादशस्कंधात्मक भागवत के सार रूप से इसमें प्रधानतः २४ अवतारों का वर्णन और नित्य एवं उत्सव की सेवाओं के पदों के सार रूप से "सरस संवत्सर लीला" की भावनाओं का वर्णन है। इस प्रकार सारावली में "कथा वस्तु" को दो भागों में पृथक् पृथक् बाँटना भी 'ताकौ सार सूर सारावली' वाले कथन की पुष्टि करता है।

इस प्रकार सारावली सूरदास की एक स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना है।

२. साहित्य-लहरी—यह भी सूरदास की प्रमुख रचना है। इसमें ११८ दृष्टिकूट के पदों का संग्रह है। १०९ और ११८ संख्या वाले पदों को छोड़ कर अन्य सब पदों में काव्यशास्त्रोक्त रस प्रकरण के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। १०९ संख्या वाले पद में 'साहित्य-लहरी' का रचना-काल और ११८ संख्या वाले पद में सूरदास का वंश परिचय दिया गया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन सर्व प्रथम भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की प्रति के आधार पर सन् १८९२ ई० में खड्गविलास प्रेस से हुआ था। इसके पश्चात् संवत् १९९६ वि० में पुस्तक भंडार, लहेरियासराय इसका पुनः प्रकाशन हुआ है।

११८ संख्या वाले पद के अतिरिक्त साहित्य-लहरी के अन्य समस्त पदों को हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने सूरदास कृत माना है। हम भी उक्त पद के अतिरिक्त इसके सभी पदों को प्रामाणिक मानते हैं। जिस पद को हमने अप्रामाणिक माना है, उसमें जहाँ इतिहास विरुद्ध अनेक कथन हैं, वहाँ अन्य पदों के विरुद्ध उसमें दृष्टिकूट शैली का भी नितांत अभाव है। इस पद की अप्रामाणिकता के विषय में हम गत पृष्ठों में विशेष रूप से लिख चुके हैं।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस में "साहित्य-लहरी" पर भी विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने अपने 'विश्लेषण' से दो बातें स्पष्ट की हैं—

"एक तो यह कि 'साहित्य-लहरी' के प्रणयन में उसके कवि की मूल प्रेरणा साहित्यिक है, भक्ति नहीं और दूसरी यह कि इन दृष्टिकूट कहे जाने वाले पदों में राधा एवं राधाकृष्ण के नखशिख के वर्णन नहीं हैं; कुछ पद शृंगार से संबद्ध होते हुए भी राधा का उल्लेख नहीं करते तथा कुछ स्पष्टतया राधा और दाम्पत्य रति से असंबद्ध है।"

उन्होंने आगे लिखा है—

"सूरसागर का कोई प्रसंग और कदाचित कोई पद ऐसा नहीं है, जिसमें कवि की भक्ति-भावना किसी न किसी रूप में प्रकट न हुई हो'''
'साहित्य-लहरी' का रचना-काल संवत् १६२७ मानें, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि सूरदास ने इसकी रचना की है तो अपनी मृत्यु के कुछ ही पहले उन्होंने अपनी भक्ति-भावनापूर्ण मनोवृत्ति में आकस्मिक परिवर्तन कर दिया और मानों वे अपने साधन को साध्य रूप में ग्रहण करके मरते-मरते एक अफसल और शिथिल लक्षण-ग्रंथ रच कर अपने भावी साहित्यिक बंधुओं का नेतृत्व करने के लिये तत्पर हो गए।''''''' सूरसागर जैसे वृहद् ग्रंथ में जो कवि अपनी रचना के विषय में मौन रहा हो, वह 'साहित्य-लहरी' जैसे असफल प्रयत्न में नाम और रचना-काल में इतना मुखर हो जाए, यह भी उसकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल जान पड़ता है† ।"

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर डॉ० वर्मा साहित्य-लहरी को भी सूरदास कृत नहीं मानते हैं। डॉ० वर्मा की मुख्य मुख्य शंकाओं का निम्न लिखित प्रश्नों में समावेश हो जाता है—

१. सूरदास जैसे विरक्त महात्मा और सिद्ध कोटि के ज्ञानी भक्त को अपनी पूर्ण वयोवृद्ध अवस्था में इस प्रकार के काव्य-साहित्य रस का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता थी ?

२. जब इसमें राधा के नख-शिख का वर्णन नहीं, तब इसे दृष्टिकूट शैली में रचने की क्या आवश्यकता थी ?

३. सूरसागर जैसे वृहद् ग्रंथ में जब कवि ने रचना-काल आदि नहीं लिखा, तब ऐसे एक असफल प्रयत्न में संवतादि देने की क्या आवश्यकता हुई ?

इन तीनों प्रश्नों पर विचार करते समय हमको पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-प्रणाली तथा उसके सिद्धांत को प्रथम जान लेना आवश्यक है। पुष्टि संप्रदाय में भगवान् श्रीकृष्ण को 'रसोवैसः" श्रुति के अनुसार रसात्मक माना गया है और ब्रह्मांड में जहाँ कहीं आनंद-रस अभिव्यक्त है, वह भगद्रूप माना गया है—

'वस्तु तस्तु ब्रह्माण्ड मध्ये आनन्दोऽभिव्यक्तस्तिष्ठति भगद्रूप‡ ।'

---

† सूरदास, पृ० ८७, ९३ ‡ सुबोधिनी तृ० स्कं० १५-३१

इसी के आधार पर नंददास ने भी अपनी "रसमंजरी" में लिखा है—

रूप-प्रेम-आनंद-रस जो कछु जग में आहि ।
सो सब गिरिधर देव कौ निधरक वरनों ताहि ॥

अर्थात् जगत् में जहाँ कहीं भी और जो कुछ भी आनंद (रस) है, वह भगवान् श्री कृष्ण का ही स्वरूप है । इसलिए शुकदेव जी ने भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की रास पंचाध्यायी के अंतिम अध्याय के २६ वें श्लोक में कहा है—

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः समत्यकामोऽनुरताबला गणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथा रसाश्रयाः ॥२६॥

इस श्लोक के अंतिम चरण 'सर्वाः शरत्काव्य कथा रसाश्रयाः'से स्पष्ट होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्रोक्त प्रकारों से भी लीलाएँ की हैं । इसका स्पष्टीकरण महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने भी अपनी सुबोधिनी में इस प्रकार किया है—

'काव्य कथा अपिनीताः । काव्योक्त प्रकारेण गीतगोविन्दोक्त न्यायेनारपि रतिं कृतवान् । तत्र हेतुः रसाश्रया इति† ।'

अर्थात् काव्य कथाओं का भी इस प्रकार सेवन किया । काव्योक्त प्रकारेण, तथाच गीत गोविन्दोक्त न्याय से भी भगवान् ने रमण किया ।

इससे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्र के अनुसार नायिकाभेद की पद्धति से भी रमण किया है । इन्हीं आधारों पर अष्टछाप के भक्त कवियों ने अनेक प्रकार की नायिकाओं को उपस्थित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गायन किया है ।

हमारे सूरदास ने भी श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त श्लोक के स्पष्टीकरण एवं विश दीकरण में ही समस्त 'साहित्य-लहरी' का निर्माण किया है । इसीलिए इसमें नायिकाभेद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है ।

सूरदास की समस्त रचनाओं का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत रहा है, क्योंकि महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उनको शरण में लेते ही तत्काल 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम'और 'दशम् स्कंध की अनुक्रमणिका' द्वारा श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं का बोध कराया था । इसी के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत की कथाओं का सामान्य अनुवाद और दशम् स्कंध की अस्पष्ट एवं स्पष्ट लीलाओं का विशेष रूप से विस्तार के साथ वर्णन किया है । इसी में दशम-

† सुबोधिनी १०-३३-२६

स्कंध की अस्पष्ट सांकेतिक लीलाओं में इस विषय का भी समावेश हो जाता है। यदि सूरदास ने इस ग्रंथ की रचना न की होती, तो उनके द्वारा भागवत की लीलाओं का पूर्ण रूप से वर्णन न हो पाता। अब 'साहित्य-लहरी' नाम पर विचार करते समय यह बात दृष्टव्य है कि उन्होंने भगवत् लीलात्मक नाम न रख कर 'साहित्य' शब्द का उपयोग क्यों किया ? इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस रचना में किसी एक विशिष्ट लीला का उल्लेख नहीं है। इसमें केवल शृंगार-रस ही नहीं है, वरन् अन्य रसों का भी वर्णन किया गया है। ये रस काव्य-शास्त्र की आत्मा हैं, अतः इनके विवेचन के कारण इस रचना का नाम साहित्य से संबंधित रखा गया है। इसका दूसरा मुख्य कारण यह है कि इसमें भगवान् कृष्ण की लौकिक प्रकार की काव्य कथा होने के कारण अनधिकारी व्यक्तियों में अन्यथा भाव उत्पन्न न हो। राजा परीक्षित जैसे ज्ञानी भक्त को भी उक्त श्लोक को सुन कर जब शंका हुई थी, तब अन्य व्यक्तियों का तो कहना ही क्या है ! इसीलिए नायिकाभेद की रचनाएँ दृष्टिकूट शैली में लिखी गयी हैं, जिससे अधिकारी विद्वान ही उनका रसानुभव कर सकें। दृष्टिकूट शैली के आवरण के कारण ही इस रचना में काव्यानंद की स्पष्ट झलक नहीं दिखलायी देती। यह आवरण जानबूझ कर रखा गया है।

उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचन से दो बातें स्पष्ट होती हैं—एक तो यह कि साहित्यलहरी का नाम और उसका बाह्य कलेवर काव्य-साहित्य का सूचक होते हुए भी वह भक्ति की उच्चतम भावना से अनुप्राणित है। इससे कवि का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की रहस्यमयी लीलाओं का गायन करना मात्र था, 'साहित्यिक-नेतृत्व' करना नहीं। दूसरी बात यह है कि इन पदों में काव्योक्त (लौकिक प्रकारों वाली) कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हें गूढ़ रखना आवश्यक था, अतः इनमें प्राप्त नायिकाओं के उल्लेखों में भी कुछ गूढ़ता लायी गयी है, जिसके कारण नखशिख वर्णन न होते हुए भी इसमें दृष्टिकूट शैली की नितांत आवश्यकता थी।

यहाँ एक गौण प्रश्न और हो सकता है। वह यह कि सूरदास कृत इस प्रकार की लीलाओं के ऐसे भी अनेक पद हैं, जिनमें दृष्टिकूट शैली का सर्वथा अभाव है—इसका क्या कारण है ? इसका उत्तर यह है कि एक तो उन पदों में नायिकाओं का स्पष्ट कथन प्राप्त नहीं है; केवल लक्षणों से ही उनका ज्ञान होता है। दूसरे वे पद श्रीनाथजी के सन्मुख स्वतः गाये हुए हैं, जहाँ उन्हें छिपाने

की कोई आवश्यकता नहीं थी। 'साहित्य-लहरी' के पद भागवत की कथा के विशदीकरण रूप में विशिष्ट कारण से रचे गये हैं।

इस विवेचन से उक्त दोनों प्रश्न हल हो जाते हैं। अब रह जाता है तीसरा रचना-काल विषयक प्रश्न। इसका उत्तर यह है—

श्रीमद्भागवत की कथाओं का अनुवादात्मक सूरसागर सूरदास की परतंत्र रचना है। इसमें भागवत की कथाओं का अनुसरण है, अतः यह स्वतंत्र रचना नहीं है। फिर इस रचना के अनंतर ही इसके तत्वरूप से सूरदास ने सूर-सारावली की सैद्धांतिक स्वतंत्र रचना की थी। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख कर दिया है, जिससे सूरसागर का भी रचना-काल जाना जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से जहाँ साहित्य-लहरी की रचना का उद्देश्य ज्ञात होता है, वहाँ डा० ब्रजेश्वर वर्मा की शंकाओं का भी स्वतः समाधान हो जाता है; अतः उन शंकाओं पर पृथक् विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

डा० वर्मा का एक तर्क यह है कि—

"उक्त गोस्वामी जी के द्वारा साहित्य-लहरी का कोई उल्लेख न होना, जब कि इस रचना में कवि ने तिथि और नाम तथा अपनी वंशावली का उल्लेख किया है, वास्तव में इस रचना को सूरदास कृत न मानने के लिये एक प्रबल कारण है*।"

वार्ता साहित्य के गंभीर अध्ययन से यह ज्ञात हो सकता है कि समग्र वार्ता-साहित्य प्रासंगिक रूप से कहा हुआ है, अतः जहाँ जिस विषय का प्रसंग चल पड़ा, वहाँ उसका वर्णन किया गया है। इसको ऐतिहासिक ढंग से आद्योपांत चरित्र रूप में नहीं लिखा गया है। यदि वार्ता में सूरदास की रचनाओं पर पूर्ण रूप से एक स्थान पर विचार किया गया होता, तब तो उक्त तर्क का महत्व सिद्ध होता; किंतु उसमें प्रासंगिक स्थानों पर सूरदास की अमुक-अमुक रचनाओं का उल्लेख हुआ है, अतः उक्त तर्क पर बल देना निरर्थक है।

साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली और उसके पदों के वर्ण्य विषय सूरसागर में तथा सूरदास की अन्य रचनाओं में भी प्राप्त हैं। इनसे भी इसकी प्रमाणिकता का अनुमान हो सकता है।

---

* सूरदास, पृ० ६६

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने साहित्य-लहरी के रचयिता और उसके रचना-काल के विषय में इस प्रकार अनुमान किया है—

"संभव है इसका रचयिता कोई अप्रसिद्ध सूरजचंद नामक भाट हो और वह भी संभव है कि स्वयं उसी ने इसकी टीका की हो। ऐसी दशा में उसका समय भाषाभूषण-कार जसवंतसिंह के पहले नहीं माना जा सकता।"†

यदि डा० वर्मा के मतानुसार 'साहित्य-लहरी' का रचयिता कोई अन्य सूरजचंद माना जाय और उसका समय सं० १७०० के पश्चात् का मानें, तो निम्नलिखित बातों का हमें प्रामाणिक उत्तर भी देना होगा—

१. साहित्य-लहरी के रचना-काल सूचक पद में प्राप्त संवत, मिति, वार, नक्षत्र, योग आदि का प्रामाणिक उल्लेख लगभग सौ वर्ष पश्चात् किस प्रकार जाना जा सकता था ?

२. उक्त रचना-काल सूचक पद से यह जाना जा सकता है कि रचनाकार अपने को अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि सूरदास के रूप में ही उपस्थित करता है, अतः किसी भी परवर्ती कवि को अपना अस्तित्व मिटाकर इस प्रकार का नाम-साम्य करने से क्या लाभ हो सकता था ? फिर नक्षत्र आदि का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करने का अत्यंत कष्ट भी उसने क्यों उठाया, जब कि सामान्य संवतादि के सूचन से भी वह अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकता था ?

३. वास्तव मे देखा जाय तो 'साहित्य-लहरी' काव्य नहीं, किंतु काव्यशास्त्र है। इसमें नायिका, अलंकार और रसों की अत्यंत क्लिष्ट और जटिल रचनाएँ उपलब्ध हैं। इतना श्रम कोई साधारण कवि नहीं ले सकता है। उस दशा में एक प्रकांड कवि 'नाम-साम्य का अपराध' करे, यह कैसे संभव हो सकता है ?

जहाँ तक हम समझते हैं कोई आलोचक इन प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर नहीं दे सकता है, अतः 'साहित्यलहरी' निश्चित रूप से सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध होती है। इसकी पुष्टि निम्न लिखित पदों के साम्य से भी होती है—

---

† सूरदास, पृष्ठ ६७

कृष्ण जन्म-कुंडली का पद—

नंद जू मेरे मन आनंद भयौ सुनि मथुरा तें आयौ।
लग्न सोधि जोतिस को गिनि कै चाहत तुम्हें सुनायौ॥
संवत्सर ईश्वर कौ भादों नाम जू कृष्ण धरयौ है।
रोहिनि बुध आठें अँधियारी हर्षन योग परयौ है॥
वृष है लग्न उच्च के उडपति तन कों अति सुखकारी।
दल चतुरग चलै सँग इनके ह्वै है रसिक बिहारी॥
चौथे भवन सिंह के दिनमनि महि मंडल कों जीतैं।
करि हैं नास कंस मातुल कों निश्चै कछु दिन बीतैं॥
पंचम बुध कन्या के सोभित पुत्र बढ़ेंगे सोई।
षष्टम सुक्र तुला के सनि युत सत्रु बचै नहिं कोई॥
नीच ऊँच युवती बहु भोगें सप्तम राहु परयौ है।
केतु मूर्ति में स्याम बरन चोरी में चित्त धरयौ है॥
भाग्य भवन में मकर महीसुत अति ऐश्वर्य बढ़ैगौ।
द्विज गुरुजन कों भक्त होय कें कामिनि चित्त हरैगौ॥
नव निधि जाके नाभि बसत हैं मीन वृहस्पति केरी।
पृथ्वी भार उतारें निश्चै यह मानों तुम मेरी॥
तब ही नंद-महर आनंद गर्ग पूजि पहरायौ।
असन, वसन, गजराज, धेनु, धन भूरि भंडार लुटायौ॥
बंदीजन द्वारें जस गावें जो जाच्यौ सो पायौ।
ब्रज में कृष्ण-जनम कौ उत्सव "सूर" विमल जस गायौ॥

इस पद में प्राप्त श्रीकृष्ण की जन्म-कुंडली और नंदादि के वात्सल्य रस का वर्णन 'साहित्य-लहरी' के निम्न-लिखित पद की दृष्टिकूट शैली में इस प्रकार मिलता है—

विप्र जी पावन पुन्य हमारे।
जो जजमान जानि कै मो कहँ आपु यहाँ पगु धारे॥
एक बार जो प्रथम सुनाई लगन-कुंडली सोइ।
पुनहीं मोहि सुनावहु सुन कर कहन लगे सुख होइ॥
संवत मास षष्ठ वसु तिथि है रवि तें चौथी बार।
पुन्न पच्छ औ वेद नषत है हरषन जोग उदार॥
दुती लगन में है सिव भूषन सो तन कों सुखकारो।

केहरि वेद रास त्रै मूरत सेस भार सब लैहैं ।
बान सखी सुत है पुत्री के मदन बहुत उपजैहैं ॥
सास्त्र सुक्र तुल के रवि सुत ते बैरी हरता जोग ।
मुनि बस तिय बस करै भूमि सुत भागवान में भोग ॥
लाभ थान पंचमी काम धुज ग्रहनिधि गृह में आई ।
मान लेहु मन अपने भू सब हरो भार इन भाई ॥
बान वर्ष में कब देखैगी, कहीं तिहारी पूरी ।
"सूरदास" दोउ परे पाँइ तर भूषन चित्र समूरी ॥८१॥

प्रथम पद में गर्ग नाम स्पष्ट है। उसको यहाँ दृष्टिकूट शैली के कारण विप्र कहा है। इसी प्रकार मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और ग्रहों का भी दृष्टिकूट शैली में वर्णन हुआ है। उन सब के फल भी वही कहे हैं, जो प्रथम पद में प्राप्त हैं। इसमें वात्सल्य रस को इन पंक्तियों में विशेष रूप से प्रकट किया गया है—

एक बार सो प्रथम सुनाई लगन-कुंडली सोइ ।
पुनहिं मोहिं सुनाबहु सुन कहन लगे सुख भोइ ॥
× × × ×
बान वर्ष में कब देखैगी कही तिहीरो पूरी
'सूरदास' दोउ परे पाँइ तर भूषन चित्र समूरी ॥

इन दोनों पदों से कृष्ण की जन्म-कुंडली इस प्रकार निर्मित होती है—

इसी प्रकार एक ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अनुरूप का साम्य देखिये—

नंदनंदन हँसे नागरी हर्ष चंद्रावलि कंठ लाई ।
बाम भुजा बनी दक्षिण भुजा सखी पर चले बन धाम सुख कही न जाई ॥

मनों बिंब दामिनी बीच नव घन सुभग देखि छबि काम रति सहित लाजै।
किधों कंचनलता बीच तरु तमाल भामिनी बीच गिरिधर विराजै॥
गये गृह कंज अलि गुंज सुमननि पुंज देखि आनंद भरे 'सूर' स्वामी।
राधिकारवन पुवतीरवन मनरवन निरखि छवि मन होत काम कामी।
(अनुराग लीला—पृष्ठ ४६३)

इस पद में राधिका को वाम भाग और चंद्रावलि को दक्षिण भाग में रखकर भगवान कृष्ण गृह को गये—ऐसा वर्णन है। राधिका को ज्येष्ठा और चंद्रावलि को कनिष्ठा कह कर साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली में इस प्रकार गाया गया है—

आज सखिन सँग सुरुचि साँवरी करत रही जल केलि।
आइ गयौ तहाँ सरस साँवर प्रेम पसारन बेलि॥
× × × ×
भूषन हित परनाम 'छोट बड़' दोहुन कों कर राखी।
'सूरज' प्रभु फिर चले गेह कौ करत सत्रु सिव साखी॥७॥

इसी प्रकार नेत्र वर्णन, नायक का मान, विपरीत रमण और खंडिता आदि साहित्य-लहरी के कई विशिष्ट विषय सूरदास के सागर और उनके अन्य पदों से मिलते हैं।

दृष्टिकूट पदों का साम्य—

सखी री री सुन परदेसी की बात।
अरध बीच दै गये धाम कों हरि अहार चलि जात।
ग्रह नछत्र अरु वेद अरध कर को बरजै मुहि खात॥
रवि पंचक सँग गये स्यामघन तातें मन अकुलात।
कहुँ सहुक्त कवि मिले 'सूर' प्रभु प्राण रहत न जात† ॥२३॥

† लहेरियासराय वाली प्रति में "न तो जात" पाठ है, किंतु वह अशुद्ध है। टीकाकार ने और भी कई पाठों को अशुद्ध बना दिया है, जैसा कि—"राधे कियौ कौन सुभाव" इस पद में "प्रानपति वेदन विभूषित सु'न गुन चित्त चाव॥" यहाँ वास्तव में "सुन गुन" चाहिए "सु'न गुन" नहीं। इससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। इसी प्रकार और भी कई अशुद्धियाँ हैं; जैसे "आवत थी"—यहाँ "आवत ही" चाहिए इत्यादि।

कहे न कोई परदेसी की बात ।
जब तें बिछुरे नंदसाँवरौ ना कोइ आवै न जात ॥
मंदिर अर्ध अवधि प्रभु बदि गये हरि अहार चलि जात ।
अजयाभख अनुसारत नाहीं कैसेक समय सिरात ॥
ससिरिपु बरस भानुरिपु जुग सम हरि रिपु कीन्हों घात ।
नखद वेद ग्रह जोरि अरध करि सोइ बने अब खात ॥
मधपंचक लै गयौ साँवरौ तातें मन अकुलात ।
"सूर" श्याम आवन कै आसा प्रान रहे नतु जात† ॥

साहित्य-लहरी के कतिपय विषय व्रतचर्या, नायक का मान आदि संप्रदाय से पूर्णतः संबंधित हैं। नायक का मान अष्टछाप में सूर एवं परमानंद के अतिरिक्त और किसी ने नहीं गाया है। उसका आभास इस साहित्य-लहरी के कई पदों में है। इन सब कारणों से संप्रदाय के मर्मों से अपरिचित व्यक्ति इसकी रचना नहीं कर सकता है। इस प्रकार काव्य की गंभीरता को देखते हुए भी यह रचना साधारण कवि की ज्ञात नहीं होती है। इसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के प्रतिपादन के लिए महाभारत आदि की कथाएँ भी उपलब्ध हैं। अन्य कवि, जिसका उद्देश्य केवल शृंगार वर्णन करना हो, इस प्रकार की रचना सर्वथा नहीं कर सकता है, अतः यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी पुष्टि आंतर प्रमाणों से भी भली भाँति होती है।

अब हम इसके रचनाकाल विषयक पद पर विचार करेंगे। वह पद इस प्रकार उपलब्ध होता है—

"मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख ॥
नंदनंदन मास* छय तें हीन तृतीया वार ।
नंदनंदन जनम तें हैं बान‡ सुख आगार ॥
तृतीय ऋतु सुकर्म जोग विचार 'सूर' नवीन ।
नंदनंदनदास हित साहित्य-लहरी कीन ॥

† लहेरियासराय द्वारा प्रकाशित प्रति में पृ० २७ पर इसे पाठांतर के रूप में उपस्थित किया गया है, किंतु यह एक स्वतंत्र पद है।
* माधव मास। ‡ पाँचवाँ।

उक्त पद की रचना-शैली भी साहित्य-लहरी के अन्य पदों की रचना-शैली के समान दृष्टिकूट वाली है, अतः इस पद में भी 'नंदनंदन मास' (माधव-वैशाख मास) और 'नंदनंदन जनम तें है बान सुख-आगार' (श्रीकृष्ण के जन्म-दिन बुध से पाँचवाँ वार रवि) आदि वाक्य परोक्ष सूचक प्राप्त होते हैं। सूरदास विशिष्ट अवसर पर समय का भी अनुसधान रखते थे, जैसा कि सारावली में 'गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन' वाक्य दिया हुआ है। इसलिए यहाँ पर दिए हुए संवतादि समय का कथन भी उनके स्वभाव के अनुकूल ही है। श्रीकृष्ण की जन्मपत्री सूचक पदों से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास ज्योतिषज्ञ भी थे, अतः यहाँ 'नक्षत्र'-'योग' आदि का कथन भी इस पद को सूरदास की रचना बतलाने में सहायक होता है।

सूरदास ने अपनी प्रायः सभी रचनाएँ किसी न किसी विशिष्ट हेतु से की हैं। जैसा कि—'सूर-पचीसी' बादशाह अकबर के लिए, 'सूर-साठी' एक बनिया के लिए, 'भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ' वाला पद चतुर्भुजदास के लिए, 'आज काम काल काम' यह पद भी एक बनिया के लिए, 'मन ! तू समझ सोच विचार' यह पद चौपड़ के खेलाड़ियों को देख कर, दान-मान आदि के अनेकानेक पद श्रीनाथजी की सेवा के लिए, 'सूरसागर' महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की आज्ञानुसार और 'सूर-सारावली' उस 'सागर' की लीलाओं और वर्षोत्सव की सेवा-भावनाओं के तात्विक अनुसंधान के हेतु से रची गयी हैं। इन हेतुओं को देखते हुए यह विचार उत्पन्न होता है कि 'साहित्य-लहरी' की रचना का भी कोई विशेष प्रयोजन अवश्य रहा है। इसका उल्लेख उक्त पद के 'नंदनंदनदास हित साहित्य-लहरी कीन' वाले वाक्य में किया गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि 'नंदनंदनदास' अर्थात् कृष्ण के भक्तों के लिए यह 'लहरी' बनायी गयी, तो वह एक सामान्य प्रयोजन कहा जायगा। उस सामान्य प्रयोजन का इस प्रकार विशेष प्रयत्न पूर्वक उल्लेख करना निरर्थक सा है, क्योंकि सूरदास की सभी रचनाएँ कृष्ण-भक्तों के लिए तो हैं ही, फिर 'साहित्य-लहरी' में इस बात का पृथक् उल्लेख क्यों किया गया ? अतः यह मानना होगा कि जिस प्रकार पूर्वोक्त विशेष रचनाओं के विशिष्ट हेतु रहे हैं, उसी प्रकार इस वृहद् रचना का भी कोई विशिष्ट हेतु अवश्य रहा है।

आख्यायिका और वार्ता से इस रहस्य का उद्घाटन होता है। आख्यायिका के अनुसार नंददास का नंदनंदनदास के नाम से संबोधन सूर द्वारा किया जाना स्पष्ट होता है। अष्टछाप के सातों कवि प्रारंभ से ही कृष्ण-भक्त थे, केवल नंददास ही पहले राम-भक्त थे। जब वे बल्लभ संप्रदाय में प्रविष्ट हुए, तब सूरदास ने ही उनको 'नंदनंदनदास' कहा था। इससे भी उक्त बात का समर्थन होता है।

इस गूढ़ उद्देश्य को समझने के लिए हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। 'भावप्रकाश वाली वार्ता' से यह जाना जा सकता है कि नंददास ने जब पुष्टिमार्ग में प्रवेश किया, तब सर्व प्रथम वे सूरदास की संगति में छै मास तक चंदसरोवर पर रहे थे‡।

'वार्ता' के इस कथन की पुष्टि नंददास की रचनाओं में सूरदास के पदों की भाषा, उनके भाव आदि के अनुसरण से हो जाती है। यहाँ पर दोनों कवियों के कतिपय ऐसे पद दिये जाते हैं—

सूर का पद—

माई री कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री, तब तें भूली री भवन बावरी सी भई री। भरि-भरि आवें नैन, चित न रहत चैन, बैन नहीं सूधौ भूली मन की दसा सब और ह्वै रही री॥ कौन माता, कौन पिता, को बहिनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान, कौन ध्यान, मदन हई री। 'सूर' स्याम जब तें परे री मेरी दृष्टि बाम, काम, धाम, निसि-याम लोक-लाज कुल-कानि निनई री॥

नंददास का पद—

कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री आली, भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री। भरि-भरि आवैं नैंन, चित्त हू न परत चैन, मुख हू न आवैं बैन, तन की दसा कछु औरें भई री॥ जेतेक नैम धरम व्रत कीने री मैं बहु बिध, अंग-अंग भई हौं तो स्रवन मई री। 'नंददास' जाके स्रवन सुने यह गति माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री॥

सूर का पद—

दौरि-दौरि आवत, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री। गई तौ गई, न गई तौ न गई, ऐसी कहा कछु गरज भई री॥ सुनि राधे कैधौं मान मेरौ कह्यौ, तो बिनु लालन कछु न सही री। 'सूरदास' मन हरि लीन्हों, हँसि-मुसिक्याय निकट गई री॥

नंददास का पद—

दौरि-दौरि आवति, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री। अचरा पसारति, मोहि कों खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री॥ जा री, जा दूति! तू भवन आपुने, लख बातन की एक बात कही री। 'नंददास' प्रभु वे क्यों नहीं आवत, उनके पाँयन कहा महेंदी दई री॥

‡ प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३८०

(मकर संक्रांति)

सूरदास का पद—

'मेष' सी अचल कहा बैठी 'वृष' भान लली, 'मिथुन' के काजैं तोहि स्याम सुधि करी है। 'करकें' सिंगार आज 'सिंह' ह्वै चलो री आली, प्यारी 'कन्या' रितुमान ह्वै कहा गुमान भरी है। 'तुल' रे विरही कान, वृत्त तरे ठाडे आन 'धन' 'मकर' करै आली, येही सुभ घरी है॥ 'कुंभ' ज्यों मिलोगी जाय, व्याकुल कान कुंजन में, 'मीन' ह्वै से तलफत सुध करै घरी-घरी है। 'सूरदास' मदनमोहन सुमिरत हैं निस-दिन, द्वादस रासि रूप कृष्ण चरन जाय ढरी है॥

नंददास का पद—

'मेष' सी ह्वै रही अति 'वृषभ' गति तेरी आली, 'मिथुन' के काजैं हमारौ कह्यौ क्यों न कीजै। 'करक' मिटाओ आछे 'सिंह' की सरनि आओ, 'कन्या' कौ सुभाव सो तौ बेग तजि दीजै॥ 'तुला' तो अतुल रस 'वृश्चिक' कौ विष मेटि, 'धन' घनस्याम जू की सरनि गहि लीजै। 'मकर' न कीजै आछे कुंभ के गुन नेह, 'नंददास' भानमती 'मीन' गति लीजै॥

इसी प्रकार का एक पद कृष्णदास का भी प्राप्त है, जिसमें सूरदास के भावों का अनुकरण किया गया है—

कृष्णदास का पद—

'मीन' से चपल अरु 'मेष' हू न लागै पल, 'वृषभ' सी गति लिएँ डोलत भवन में। 'मिथुन' पै चलै अंक 'करक' लावै 'सिंह', 'कन्या' प्रवेस सो तौ आयौ तेरे तन में॥ 'तुला' जिन करै आली 'वृश्चिक' व्यथा समान, 'धनुष' सी भौंह सोहैं 'मकर' तेरे प्रन में। 'कुंभ' जैसे कुच साज, भेंट पिय अंक आज, दंपति छबि निरख 'कृष्णदास' हरषि मन में॥

(ज्येष्ठ की दुपहरी)

सूरदास का पद—

सूर आयौ सीस पर, छाया आई पाँइन तर, पंथी सब झुक रहे देखि छाँह गहेरी। धंधीजन धंध छाँड़ि, बैठे धूपन के लिएँ, पसु-पंछी जीव-जंतु चिरैया चुप रहे री॥ ब्रज के सुकुमार लोग दै दै किंवार सोए, उपवन की व्यारि तामैं सुख क्यों न लहे री। 'सूर' अलबेली चलि, काहे कों डराति बलि, माह की मध्य राति जैसे ये जेठ की दुपहरी॥

नंददास का पद—

सूर आयौ माथे पर, छाया आई पाँइन तर, उतर डरे पथिक डगर देखि छाँह गहेरी ॥ सोए सुकुमार लोग जोरि कै किंवार द्वार, पवन सीतल घोख मोख भवन भरत गहेरी। धंधी जन धंध छाँड़ि जब तपत धूप डरन, पसु-पंछी जीव-जंतु छिपत तरन सहेरी। 'नंददास' प्रभु ऐसे में गवन न कीजै कहुँ, माघ की आधी रात जैसी ये जेठ की दुपहरी ॥

इसी प्रकार नंददास के और भी अनेक पद हैं, जिनमें सूरदास के पदों के ज्यों के त्यों शब्द, भाव और उनकी रचना-शैली भी प्राप्त होती है। नंददास का भ्रमरगीत भी सूरदास के भ्रमरगीत का विस्तार और उसकी छाया रूप है।

सूरदास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो किनु कान दै।
सुंदर स्याम सुजान पठायौ मान दै॥
कोउ आयौ उत ओर जितैं नँदसुवन सिधारे।
वहै बैनु धुनि होइ मनों आये नँद-प्यारे॥
धाई सब गल गाजि कै ऊधौ देखे जाय।
लै आई ब्रजराज मैं हो आनद उर न समाय॥
अरघ आरती तिलक दूब दधि माथे दीन्ही।
कंचन कलस भराय आनि 'परिकरमा' कीन्हीं॥
गोप भीर आँगन भई मिलि बैठे जादव जात।
जल झारी आगें धरी हो 'बूझत हरि कुसलात'॥
'कुसल छैम' वसुदेव 'कुसल' छैमहिं कुबजाऊ।
'कुसल' छैम अक्रूर 'कुसल' नीके बलदाऊ॥

नंददास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो ब्रज-नागरी।
रूप सील लावण्य सबै गुन-आगरी॥
× × × ×
ऊर्धासन बैठाय बहुरि 'परिकरमा' कीनों।
× × × ×
'बूझत सुधि नँदलाल' की बिहँसत मुख ब्रजबाल।
'नीके हैं बलबीर जू' बोलत बचन रसाल॥
'कुसल'राम अरु स्याम'कुसल' संगी सब बिनके।
'यदुकुल' सगरे कुसल परम आनँद हैं तिनके॥

इस प्रकार सूरदास के भ्रमरगीत की पद्धति, उसके भाव और शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग नंददास ने अपने भ्रमरगीत में स्वतंत्र किया है। फिर भी नंददास को सूरदास ने इसके लिए कभी टोका नहीं था। इससे निश्चित होता है कि नंददास सूरदास के काव्य-शिष्य थे और संप्रदाय की भावनाओं का ज्ञान भी उनको सूरदास से ही प्राप्त हुआ था। इसी लिए नंददास ने अपने अनेक पदों में सूरदास के पदों के कई वाक्य भी ज्यों के त्यों ले लिये हैं। उनको शिष्यत्वेण उनके वाक्य, भाव और भाषा का उपयोग करने का संपूर्ण अधिकार था, अन्यथा सूरदास ने जिस प्रकार कृष्णदास अधिकारी को उनके पदों में प्राप्त अपने पदों की मामूली छाया को देख कर भी टोका था†, उसी प्रकार वे नंददास को भी अवश्य ही टोकते। नंददास की 'रस मंजरी' में जो नायिकाभेद का उल्लेख मिलता है, उसके मूल में भी कदाचित 'साहित्य-लहरी' की अनुकरणात्मक प्रेरणा हो सकती है।

नंददास के अंतःसाक्ष्य और सोरों की सामग्री के अनुसंधान से भी इस बात की पुष्टि होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नंददास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर सूरदास के आदेश पर अपने गृह गये थे। वहाँ पर उन्होंने गृहस्थाश्रम का उपभोग किया था। तत्पश्चात् वि० सं० १६२० के लगभग वे विरक्त होकर पुनः स्थायी रूप से व्रज में आकर रहने लगे थे। उक्त कथन की पुष्टि नंददास के अंतःसाक्ष्य और वार्ता के उल्लेख से होती है।

जिस पद से नंददास का गृहस्थ होना और दूसरी बार व्रज में आना स्पष्ट होता है, वह यह है—

प्रीति लगी श्री नंदनँदन सों, इन बिनु रह्यौ न जाय री।
सास नँनद को डर लागत है, जाउँगी नैंन बचाय री॥
गुरजन, सुरजन, कुल की लाजन, करत सबहिं मन भाय री।
'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ, हम तुम लागत पाँय री॥'
जाकों सिव नारद मुनि तरसत, श्रुति पुरान गुन गाय री।
मुख देखें बिनु, घट प्रान नहिं रहि हैं 'जाउँगी पौर व्रजराय री॥'
स्यामसुंदर मुख कमल अमृत रस, पीवत नाहिं अघाय री।
'नंददास' प्रभु जीवन धन मिले 'जनम सुफल भयौ आय री॥'

† प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० २०६

उक्त पद में सामान्यतः गोपीजन का वर्णन दिखायी देता है, किंतु अर्थानुसंधान से इसमें गोपी-प्रेम-भाव-भावित नंददास का वृत्तांत ही स्पष्ट होता है। इस पद का 'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ' वाला वर्णन श्रीमद्भागवत के रास से संबंधित है। रास के समय गोपीजनों को उनके पुत्र आदि ने वन में जाने से रोका था; किंतु इसमें " जाउँगी पौरि ब्रजराय री" वाक्य उस अर्थ के विरुद्ध पड़ता है। श्रीमद्भागवत में ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता है कि "ब्रजराय की पौरि" अर्थात् नंदराय जी के घर जाने से किसी भी गोपी को उसके पुत्र-कलत्र आदि ने इस प्रकार विनय के साथ रोका हो। फिर इस पद के अंतिम चरण "जनम सुफल भयौ आय री" भी नंददास के द्वितीय बार ब्रजागमन की ही सूचना देता है; क्यों कि गोपीजनों का जन्म तो श्रीकृष्ण के जन्म और उनके नित्यप्रति के दर्शनादि के कारण प्रारंभ से ही सुफल हो चुका था, अतः उनके लिए इस प्रकार का उल्लेख प्रमाण-विरुद्ध और असंगत ज्ञात होता है। इस प्रकार मानना होगा कि नंददास गृहस्थ होने के पश्चात् घर से नाता तोड़ कर द्वितीय बार ब्रज में आकर स्थिर रूप से रहे थे, जिसका समय वि० सं० १६२० के आस-पास का, वार्ता में वर्णित "जयति रुकमनि नाथ पद्मावती प्राणपति" वाले कथन से सिद्ध हो सकता है। ब्रज के विरह सूचक पदों से भी नंददास के द्वितीय वार ब्रजागमन की पुष्टि होती है।

नंददास अपनी गृहस्थी को छोड़ कर ब्रज में आये थे, तभी तो उनके भाई तुलसीदास को उन्हें समझाने के लिए ब्रज में आना पड़ा, जिसका समय वि० सं० १६२६ गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है। इससे सूरदास और नददास का विशिष्ट सांप्रदायिक एवं साहित्यिक संबंध भी ज्ञात हो सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वार्ता में उनके दुबारा ब्रज में आने का स्पष्ट कथन क्यों नहीं मिलता ? इसका उत्तर वार्ता की कथात्मक शैली है। इस शैली में ऐतिहासिक उल्लेखों का क्रमबद्ध विवरण न मिलना स्वाभाविक है।

अब 'साहित्य-लहरी' के रचनाकाल का निश्चय करना हमारे लिए शेष रह जाता है। उक्त पद के "मुनि पुनि रसन के रस लेख। दसन गौरी-नंद कौ लिखि सुबल संवत पेख" से कुछ विद्वान इसकी रचना का समय वि० सं० १६०७ करते हैं। कुछ विद्वान अब १६१७ और कुछ १६२७ भी करने लगे हैं। इस भिन्नता का कारण 'रसन' शब्द के अर्थ का मतभेद है। हमारे मत से ज्योतिष के अनुसंधान एवं 'रसन' शब्द की वास्तविकता के आधार पर उसको 'एक' संख्यावाची मानना अधिक समीचीन कहा जायगा,

क्यों कि "रसन के रस" अर्थात् जिह्वा का पट रस अर्थ ही प्रामाणिक है। कुछ विद्वान "मुनि सुन रसन के रस लेख" ऐसा पाठ भी उपस्थित करते हैं। इसके आधार पर 'सुन' का अर्थ ० और 'रसन के रस' अर्थ ६ करने से १६०७ संवत् स्पष्ट होता है। यहाँ पर हम इस रचना के उपर्युक्त हेतु का ऐतिहासिक अनुसंधान करना उचित समझते हैं, जिससे उक्त रचना के निर्माण काल पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इसकी रचना नंददास के हितार्थ की गई थी। इसके लिए नंददास के बल्लभ संप्रदाय में प्रवेश करने का समय निश्चित करना आवश्यक होगा।

नंददास के पुत्र का नाम कृष्णदास, रामपुर का नाम श्यामपुर आदि उल्लेख भी सोरों सामग्री द्वारा प्राप्त होते हैं और उससे यह भी ज्ञात होता है कि नंददास ने वि० सं० १६१३ में अपना विवाह किया था। इस अनुसंधान से उनका व्रज में आना निश्चित होता है।

नंददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। इसकी पुष्टि गोकुलनाथ जी के प्रत्यक्ष वचनों से होती है, अतः तुलसीदास के जन्म के अनंतर ही उनका जन्म काल माना जा सकता है। यद्यपि तुलसीदास का जन्म वि० सं० १५८९ प्रायः सभी विद्वानों ने मान लिया है, फिर भी वह किसी प्रामाणिक और प्राचीन सूत्र से पुष्ट नहीं है, अतः तुलसीदास के जन्म का निश्चित समय अभी संदिग्ध ही कहा जावेगा। यदि हम तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ मान लें, तब नंददास का जन्म उसके बाद मानना उचित होगा। सोरों-सामग्री और वार्ता के अनुसंधान से नंददास का जन्म सं० १५९० माना जा सकता है। तभी वि० सं० १६१३ में उनके विवाह वाला कथन और उससे पूर्व उनका किसी संघ के निरीक्षण में व्रज आदि स्थानों में जाना संभव हो सकता है। वार्ता से ज्ञात होता है कि नंददास किसी संघ के निरीक्षण में तुलसीदास द्वारा सर्व प्रथम यात्रा को भेजे गये थे, अतः उस समय वे शायद वयस्क नहीं थे, ऐसा ज्ञात होता है। फिर भी वे तरुण अवस्था में प्रवेश कर रहे थे, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति का वर्णन वार्ता द्वारा प्राप्त होता है। इन सब अनुसंधानों पर विचार करते हुए प्रथम व्रजागमन के समय उनकी आयु ज्यादा से ज्यादा १८ वर्ष की मानी जा सकती है। इस अनुमान से उनका प्रथम व्रजागमन वि० सं० १६०७ के आस-पास का स्पष्ट होता है। यही समय उनका बल्लभ संप्रदाय में प्रवेश करने का है। इस कच्ची अवस्था और लौकिक आसक्ति के कारण ही गोसाईं जी ने उन्हें

सूरदास जैसे सिद्ध कोटि और विरक्त ज्ञानी भक्त के पास रखा था। अवश्य ही उस समय तक वे संस्कृत विद्या के विशेष ज्ञाता हो चुके थे, जिसकी सूचना वार्ता और उनकी रचनाओं से भी प्राप्त होती है।

सूरदास ने नंददास के मन के अनुकूल विषय को साहित्य-लहरी द्वारा उपस्थित कर उनकी श्रीमद्भागवत के प्रति निष्ठा दृढ़ की, जिसके कारण उनका मन श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीलाओं में क्रमशः एकाग्र होता गया। सूरदास के उपदेशानुसार ही उन्होंने गृहस्थी का भी उपभोग किया था, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति सर्वथा निर्मूल हो गयी थी।

इस प्रकार के अनुसंधान से साहित्य-लहरी का समय वि० सं० १६०७ ज्ञात होता है। उक्त अनुसंधान के कारण यह मान लिया जाय कि नंददास के गृह जाने के अनंतर सूरदास ने समय-समय पर अन्य रस आदि के कुछ विशेष पदों की रचना कर वि० सं० १६१७ में इसकी पूर्ति की, तब भी उक्त विवरण में 'हेतु' की कोई असंगति नहीं दिखलायी देती है। अथवा नंददास से दूसरी वार ब्रज में आने पर उन्होंने इसकी रचना सं० १६२७ में की थी—ऐसा भी माना जाय, तब भी कोई असंगति नहीं दिखलायी देती है। इसकी रचना उपर्युक्त संवतों में से किसी भी संवत् में मान ली जाय, तब भी उक्त प्रमाणों से यह निश्चित है कि साहित्य-लहरी की रचना का मूल हेतु नंददास थे।

३. **सूरसागर**—यह सूरदास की प्रामाणिक और सर्व प्रधान रचना है। इसके दो संस्करण अभी तक प्रकाशित हुए हैं—एक बंबई वेंकटेश्वर प्रेस से, दूसरा लखनऊ नवलकिशोर प्रेस से। पहले संस्करण में श्रीमद्भागवत के प्रथम से द्वादश स्कंध पर्यंत के पद हैं। दूसरे में केवल दशम के पूर्वार्द्ध की लीलाओं के ही पद हैं। इन दोनों में सब मिलाकर करीब ५००० पद हैं। लखनऊ वाले संस्करण के प्रारंभ में कुछ नित्य-कीर्तन के भी पद हैं, जिनमें सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाएँ भी हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर के अपूर्ण संस्करण में उक्त दोनों मुद्रित प्रतियों के अतिरिक्त अन्य हस्त लिखित प्रतियों से कुछ विशेष पद बढ़ाये गये हैं। उक्त सभा को प्रथम से द्वादश स्कंध वाले संस्करण की सब से ज्यादा प्राचीन प्रति सं० १७५३ की लिखी हुई काशी से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार केवल दशम पूर्वार्द्ध वाले संस्करण की एक प्राचीन प्रति वि० सं० १६६७ की उदयपुर में है। इन दोनों प्राचीन प्रतियों से उक्त संस्करणों की प्राचीनता सिद्ध होती है।

उपलब्ध मुद्रित एवं हस्तलिखित प्रतियों के अध्ययन से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह श्रीमद्भागवत का न तो अनुवाद है, न इसमें उसकी प्रथम से द्वादश स्कंध की कथाओं का पूर्ण समावेश ही हुआ है। फिर भी हमें इस विषय पर सूरसागर में सूरदास का निम्न कथन मिलता है—

व्यास कहै सुखदेत सों द्वादस स्कंध बनाइ ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाय ॥
(स्कंध १, पद २२१)

इस उल्लेख से जान पड़ता है कि सूरदास ने द्वादश स्कंध पर्यंत की कथाओं को, जो व्यास जी द्वारा कथित हुई हैं, गाया है।

इन दोनों विरोधाभास वाले कथनों का एक अविरुद्ध निष्कर्ष यह हो सकता है कि भी बल्लभाचार्य जी ने व्यास जी की जिस समाधि भाषा को प्रमाण रूप माना है, उसी का सूरदास ने गायन किया है।

श्री बल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीमद्भागवत में त्रिविध भाषा है—लौकिकी, परमत और समाधि। लौकिकी भाषा उसे कहते हैं, जो सूत जी द्वारा ऐतिहासिक चरित्र रूप से कही गयी है। परमत भाषा उसे कहते हैं, जो अन्य ऋषि-मुनियों के विभिन्न मतों के रूप में उपस्थित की गयी है। समाधि भाषा उसे कहते हैं, जो व्यास जी को समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था, उसी के वर्णन रूप में, व्यास-शुकदेव द्वारा कही हुई है। महाप्रभु जी ने इसी समाधि भाषा को प्रमाण चतुष्टय में स्वीकार किया है† यह भाषा भक्तिमार्ग का मूल है। इसी के आधार पर चारों भक्ति-संप्रदायों की विविध भावनाओं का विस्तार हुआ है। संभव है सूरदास ने अन्य भाषाओं की आवश्यक कथाओं आदि पर ध्यान न दिया हो। इसी प्रकार परमत स्वरूप कर्म-ज्ञान वाले वर्णनों की भी उपेक्षा की गई हो। भक्ति में आवश्यक ऐसे कर्म-ज्ञान का तो सूरदास ने वर्णन किया ही है, जिनके फलस्वरूप ईश्वर में प्रेम बढ़ाने वाले कर्म और ब्रह्म के माहात्म्य सूचक अनेक प्रसंग और वर्णन प्राप्त होते हैं। सूरदास का हेतु श्रीमद्भागवत वर्णन से भगवान की भक्ति और उनकी अनेक लीलाओं का कथन करना मात्र था—ऐसा ज्ञात होता है। इसीलिए सूरसागर की कथाओं में स्कंधानुक्रम होते हुए भी प्रत्येक प्रसंग या अन्य वर्णनों का भागवत-क्रम पूर्णतः अपेक्षणीय नहीं समझा गया है।

---

†'समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्'। (निबंध)

सूरसागर के अध्ययन से दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की प्रत्येक प्रमुख कथा को वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों में भी गाया है। उनके अंतर्गत जहाँ कहीं ईश्वर का माहात्म्य अथवा उनकी भक्ति के उल्लेखनीय वर्णन आते हैं, वहाँ सूरदास ने तद्विषयक अनेक छंदों में स्फुट पदों की रचना द्वारा प्रसंगों को ऐसा भावपूर्ण और रोचक बना दिया है, जिनसे श्रोता के हृदय में भक्ति का अनायास प्रादुर्भाव होता है। इन स्थानों में सूरदास ने श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराण, महाभारत आदि का भी आश्रय लिया है। इसके लिए 'द्रौपदी सहाय' तथा इसी प्रकार के अन्य पदों को देखना चाहिए। इससे भागवत की अपेक्षा भी सूरसागर विशेष आकर्षक और उपयोगी सिद्ध होता है।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास का अभिप्राय सूरसागर की रचना द्वारा 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ सर्वतोऽधिक स्नेह' रूप भक्ति का वर्णन और विकास करना मात्र है, और उसमें वे पूर्णतः सफल भी हुए हैं। यह एक विकल्प है।

दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि जब सूरदास सूरसागर के प्रारंभ में यह स्पष्ट कहते हैं कि—

व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ॥

तब संभव है उन्होंने समस्त श्रीमद्भागवत का ही अनुवाद किया हो, उसके 'सहस्रावधि' पद होने के कारण उसकी आद्योपांत प्रतिलिपि न हो सकने से उसमें से मुख्य-मुख्य अंशों को किसी ने संगृहीत कर लिया हो और उसी की फिर अनेक प्रतिलिपियाँ होती रही हों, जो आज-कल उपलब्ध हैं।

इस अनुमान की पुष्टि सूरसागर की अनेक प्रतियों के पदों का मिलान करने से भी होती है। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियों में दशम-स्कंध के पद ही विशेष रूप से मिलते हैं, किंतु काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सं० १७९८ की एक ऐसी प्रति का विवरण दिया गया है, जिसमें दशम-स्कंध का केवल १ पद है, और द्वादश स्कंध के १७४५ पद हैं। इससे ज्ञात होता है कि अन्य स्कंधों के भी अनेक पद रचे गये होंगे, जो इस समय किसी कारणवश उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।

जो भी हो, "सूर-सारावली" के 'सार' वाले उल्लेख से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि—

(१) सूरदास ने अपने गुरु श्री बल्लभाचार्य जी से श्रीमद्भागवत तत्व का उपदेश प्राप्त कर उसकी अनेक विधि हरि-लीलाओं को गाया था, जिनका आधार श्रीमद्भागवत और उसके अनुकूल अन्य पुराण, महाभारत, रामायण, पंचरात्र और संहितादि रहा है। ये लीलाएँ कथात्मक शैली की हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि इनको उन्होंने अपने सेवकों को उपदेशार्थ गाया था।

(२) संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की लीलाओं को प्रति वर्ष नवीन भाव, छंद और वर्णन की विभेदता से सूरदास ने श्रीनाथ जी के सन्मुख स्वतः उद्गार रूप से गाया था।

संभव है ये दोनों संग्रह प्रारंभ में भिन्न-भिन्न रूप में लिखे जाते हों और पीछे किसी ने उन्हें एक कर दिया हो, जो आज द्वादश स्कंधात्मक और दशम पूर्वार्द्ध के रूप में उपलब्ध होते हैं।

द्वादश स्कंधात्मक उपलब्ध संस्करण निम्न लिखित पदों के अनुसंधान से सूरदास के बाद का संकलन निश्चित होता है। सूरसागर के जो पद अप्रासंगिक हैं, उनका ज्ञान उनके अध्ययन से स्वतः हो जाता है।

उदाहरणार्थ संख्या १६ से २२३ तक के पद स्पष्टतः सूरदास के दीनता, आश्रय और विनय आदि के हैं। इनका उस स्थान की कथा से कोई संबंध ज्ञात नहीं होता है। इनमें सूरदास के व्यक्तिगत उद्गार प्रकट हुए हैं। यथा—

महा मोह में परयों 'सूर' प्रभु काहें सुधि बिसरी ॥ पद १६ ॥
असरन सरन 'सूर' जाँचत है को अब सरति करावै ॥पद १७॥

इसी प्रकार अन्य स्थानों में कई पद अप्रासंगिक हैं। इनसे सूरसागर के इस संस्करण का संकलन सूर के अनंतर किसी व्यक्ति द्वारा हुआ है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।

इस मान्यता के आधार पर सूरसागर के नवीन संस्करणों में भागवत के क्रमानुसार परिवर्तन करना चाहिए। इसके स्पष्टीकरण के लिए यहाँ सूरसागर–प्रथम स्कंध के कुछ पदों पर विचार किया जाता है।

(प्रथम स्कंध)

प्रथम अध्याय—

सूरसागर के ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५ संख्या वाले पद मंगलाचरण (भागवत) के श्लोक में वर्णित निर्गुण स्वरूप की सगुण लीलाओं का बोध कराने वाले हैं। ये सब पद सूरसागर संख्या २

वाला पद—"अविगत गति कछु कहत न आवै" के अंतिम चरण वाले "तातें सूर सगुन-पद गावै।" कथन का विस्तार रूप है। इससे भगवान का अनवगाह्य माहात्म्य, 'कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुंम सर्व सामर्थ्य रूप' तथाच भक्त-वत्सलता, शरणागत-वत्सलता आदि गुण भी प्रकट होते हैं।

"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिरिति"—इस प्रकार की आचार्य प्रतिपादित भक्ति को हृदयस्थ करने के लिए प्रथम 'ईश्वर का माहात्म्य', फिर उनके दिव्य गुणों का जानना जरूरी है। इसीलिये सूर ने भागवतोक्त भगवत्लीला वर्णन के पूर्व मंगलाचरण वाले श्लोक के भक्तिपक्ष को स्पष्ट किया है। यह कथन "सत्यं परम धीमहि" का ही भाष्य है—यदि ऐसा कहा जाय तो यथार्थ होगा।

उक्त सख्या वाले पदों में ८ वाँ पद "प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ" सूरसागर के उक्त प्रसंग में असंबद्ध है। वार्ता के अनुसार सूरदास ने इस पद का कथन अपने अंतिम समय में गो० विट्ठलनाथ जी के लिए किया था। इसकी सत्यता "बदन प्रसन्न कमल सन्मुख ह्वै देखत हो हरि जैसे" इत्यादि पंक्तियों से स्पष्ट होती है। इसके प्रत्यक्षदर्शी वचन हरि के सदृश किसी अन्य व्यक्ति के लिए कहे हुए स्पष्ट प्रतिभाषित हो रहे हैं।

सूरसागर के १६ से २२३ संख्या तक के स्फुट पद दीनता, आश्रय और विनय विषयक हैं, जो अप्रासंगिक हैं। सूरसागर का २२४ संख्या वाला पद भागवत के द्वितीय श्लोक में प्राप्त उसके कथा-माहात्म्य के अनुकूल है। भागवत तृतीय श्लोक "निगम कल्पतरु" के अनुसार यहाँ पर सूरसागर का 'निगम कल्पतरु' वाला पद देना आवश्यक था। इसी प्रकार सूरसागर का 'सुत व्यास सों हरिगुन सुने' वाला सं० २२८ का पद भागवत के ४-५ श्लोक के अनुसंधान से यहाँ देना आवश्यक था।

द्वितीय अध्याय—

इसके बाद "व्यास कह्यौ जो सुक सों गाय" यह शुक के जन्म की कथा वाला सं० २२६ का पद भागवत श्लोक २ के व्याख्यान रूप होने से आवश्यक है। इसमें शुकदेव का वर्णन आने से सूरदास ने अन्य पुराणों से शुक के जन्म की कथा का आद्योपांत वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय—

इसमें भगवान के अवतारों का वर्णन है। सूरदास ने इन अवतारों में व्यास का सबसे प्रथम वर्णन पद सं २२६ में किया है। भागवत के श्लोकों

में जहाँ व्यास-जन्म का अत्यंत सूक्ष्म उल्लेख है, वहाँ सूरदास ने उसका बड़े रोचक ढंग से विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसमें "देखो काम प्रताप अधिकाई। कियौ परासर बस रिपिराई॥ प्रबल शत्रु आहैं यह मार। यातैं संतो चलौ सँभार॥"—इस प्रकार उपदेश भी दिया है। यहाँ अन्य अवतारों के उल्लेख वाला पद भी होना चाहिए था।

चौथा, पाँचवाँ, छटा अध्याय—

व्यास जी के असंतोष का विशद वर्णन—"भयौ भागवत जा परकार।" सं० २३० के पद में है। इसमें भागवत की महिमा और नारदजी के चरित्र का संकेत भी है। श्लोक २८ से ३७ तक के अंतर्गत लीला-कीर्तन का महात्म्य है। इन्हें सूरदास ने पद सं० २३१ से २३५ तक माहात्म्य के रूप में गाया है। फिर विदुर-गृह-गमन और द्रौपदी-वस्त्र-हरण के पद २३७ से २५६ तक के वर्णनों से सूरदास ने उस भक्ति की महिमा के उत्कर्ष को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया है। इन पदों में सूरदास ने अनेक प्रकार से भक्ति को प्रकट किया है। इसके अध्ययन से हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता है।

सात से पंद्रह अध्याय—

इन अध्यायों में भागवत के मुख्य अधिकारी परीक्षित के जन्म से संबंधित और पांडव के उत्तर-गमन विषयक महाभारत की कथा है। इसके वर्णन में सूरदास ने पद सं० २६० से २६१ तक पांडव-राज्याभिषेक का समय संक्षिप्त एवं रोचक ढंग से गाया है।

इनके वर्णन में सूरदास ने भागवत के अध्यायों के क्रम का अनुसरण नहीं किया है, क्योंकि ऐसा करने से कथा में रोचकता और सरलता नहीं आ सकती थी।

भीष्म के कथन के तत्स्वरूप से सूरदास ने २६२ तक के स्फुट पद और गाये हैं। सं २६६ का पद अप्रासंगिक है। सं० २६७ से २८० तक में भक्त-वत्सलता का वर्णन है। इनमें अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण-गृह-गमन, भीष्म के प्रति दुर्योधन के वचन, भीष्म-प्रतिज्ञा आदि का कथन किया गया है। पद २८२, २८३ में कुंती-स्तुति का वर्णन है, जो अध्याय ८ के अनुकूल होने के कारण पहले दिया जाना चाहिए। पद २८१ में द्वारिका-गमन का वर्णन है, जो भागवत अध्याय १० के अनुकूल है। इसी प्रकार पद सं० २८४ से २९८ तक का वर्णन भागवत क्रम के अनुकूल एवं प्रासंगिक है, किंतु सं० २९९, ३०५, ३०९ और ३२५ वाले पद अप्रासंगिक हैं।

आज कल कई विद्वानों का ध्यान सूरसागर का प्रामाणिक संस्करण निकालने की ओर गया है, किंतु उनको सूरसागर का मूल स्वरूप निश्चित करने में बड़ी कठिनाई ज्ञात होती है। हमने अपने मतानुसार सूरसागर के मूल स्वरूप का निर्देश किया है। यदि इस प्रकार के परिवर्तन और संशोधन के अनुसार सूरसागर का संपादन किया जाय तो पूर्व विकल्प भी संगत हो जायगा और इससे श्रीमद्भागवत की संगति भी मिल जायगी। इस प्रकार के संपादन में विनय तथा नित्य एवं नैमित्तिक वर्षोत्सव वाले लीला-पदों को भिन्न-भिन्न रूप से परिशिष्टों में देना होगा। इनके अतिरिक्त प्रासंगिक एवं विशिष्ट स्फुट रचनाओं का संपादन उनके वृत्त के साथ स्वतंत्र रूप से करना उचित है। इस प्रकार संपादन होने पर ही हम सूरसागर के मूल रूप की वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। संपादन के पूर्व सूरदास के पदों की विशेष खोज भी नितांत आवश्यक है।

अब यहाँ पर सूरदास की उन १४ कृतियों पर भी विचार करना है, जिनको हमने सूरसागर के अंतर्गत इनकी प्रामाणिक रचनाएँ माना है।

भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर-रामायण—इन रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी मिलता है। इनके नाम और परिचय से ये स्पष्टतया सूरसागर के ही अंश ज्ञात होते हैं। सूर-रामायण सूरसागर के नवम स्कंध के राम-विषयक पदों का संकलन है।

मानलीला और राधारसकेलिकौतुहल—ये दोनों रचनाएँ श्रीनाथजी के मंदिर में आज तक गायी जाती हैं। 'मानलीला' में मान के स्फुट पदों का संग्रह है। 'राधारसकेलिकौतुहल का दूसरा नाम 'मान-सागर' भी है, जो मान का विस्तृत वर्णन करने वाली बड़ी रचना है। यह मंदिरों में ग्रहण आदि के समय गायी जाती है।

गोवर्धनलीला—इसमें एक सौ से भी ज्यादा पद हैं, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा के विस्तृत अनुवाद रूप हैं, अतः इस रचना का समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है। इसको सरस लीला भी कहते हैं। सूरदास के गोवर्धन-लीला विषयक फुटकर गेय पद भी प्राप्त हैं, अन्नकूट के समय मंदिरों में गाये जाते हैं।

दानलीला-सूरदास की तीन बड़ी-बड़ी दान लीलाएँ प्राप्त हैं, जो 'ब्रजनागरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मंदिरों में गायी जाती हैं। दानलीला के अन्य स्फुट पद भी प्राप्त होते हैं।

भँवर गीत—यह सूरदास की प्रसिद्ध और प्रशंसनीय रचना है । इसके भी तीन बड़े-बड़े पद उपलब्ध हैं, जो श्रीमद्भागवत दशम स्कंध के विस्तृत अनुवाद हैं । इनका समावेश सूरसागर के ही अंतर्गत हो जाता है ।

नाग लीला—यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है और श्रीमद्-भागवत दशम स्कंध की कथा से संबंधित है । इसका समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है ।

ब्याहलो—इसके कई पद सूरसागर और बल्लभ संप्रदाय की कीर्तन पुस्तकों में उपलब्ध हैं । इसका एक विस्तृत पद चौपाई और गीतिका छंद में भी उपलब्ध होता है । ये सब पद संप्रदाय के मंदिरों मे देव प्रबोधिनी की गाये जाते हैं । इस रचना में राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन है ।

प्राणप्यारी—इस रचना को सूरसागर के अंतर्गत नहीं पाने से डा० दीनदयालु गुप्त ने इसे संदिग्ध माना है, किंतु यह रचना संप्रदाय के मंदिरों में राधाष्टमी के अनंतर निश्चित समय में और निश्चित रूप से गायी जाती है । इसको श्याम-सगाई भी कहते हैं । यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है और इसका समावेश सूरसागर के अंतर्गत होना चाहिए ।

दृष्टिकूट के पद और सूर-शतक—ये सूरदास के दृष्टिकूट पदों के स्फुट संग्रह हैं । संभवतः ये दोनों एक ही रचना के उभय रूप हैं । सूर-शतक में सूरदास की दृष्टिकूट शैली के १०० पदों का सूरसागर से संग्रह किया गया है । इनकी टीका भी संग्रहकार ने ही की है । सूर-शतक के निम्न लिखित मंगला-चरण से उसका परिचय इस प्रकार मिलता है—

श्री 'गोवर्धनधरन' जय करन सरन जन मोद ।
वृंदारक वंदित सकल वृंदा विपिन विनोद ॥
'श्रीबल्लभ' 'विट्ठल' पदन वंदित विसद विचार ।
बढ़त सुविद्या बुद्धि बल विनसत विकट विकार ॥
भक्तन के पद हिय धरत जिय कौ प्रियकर होत ।
तम तजि उत्तमता उदित विदित जगत कौ पोत ॥
यह संसार असार में हरि-कीर्तन सुखसार ।
कहे करत सबहून लों बड्डे उबर बिसार ॥
उपकारक हे सबन कों हेतु अर्थ समुझाय ।
तातें गाये भक्त जन भाषा सरल सुभाय ॥

सूरदास तिनमें भए जगत 'जगत ज्यों सूर'।
गाये सब विधि करि सुजस हरिलीला रस पूर॥
जिनके पद में 'गूढ़' बहु 'अर्थ भाव' कौ व्यंग।
सूझि परे जेते तिते संग्रह कियौ सुसंग॥
श्री बल्लभकुल सकल को कृपा पाय अनुकोस।
'भाग नगर' दक्षिन दिसा कियौ सुमति निरदोस॥
"बालकृष्ण" की बीनती सुनिए रसिक सुपंथ।
लीजै सुमति सुधार कै "सूर सतक" यह ग्रंथ॥

यह बालकृष्ण कवि श्रीगुसाईं जी के २५२ सेवकों में से थे। उनकी वार्ता "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में है। इसमें उनको भावनगर दक्षिण के रहने वाला ब्राह्मण कहा है। यह कवि श्रीगुसांईजी का सेवक होने के कारण सूरदास का भी समकालीन था। कवि की उपस्थिति का समय उसके माला-प्रसंग के इस पद से जाना जा सकता है—

बल्लभकुल में कलहंस कुल कलसा। भक्ति मर्यादा राखी, चारों वेद वदैं साखी तिलक और माल पहरे सांचे तुलसा॥ कलियुग में कीरत भई तिहुँ लोक जस गावै नारी नर घर-घर सरसा। 'बालकृष्ण' बलिहारी कहाँ लों कहै तिहारी गोकुलनाथ चिर जियो कोटि बरीसा॥

इस पद से कवि की स्थिति श्री गोकुलनाथ जी के माला-प्रसंग के समय अर्थात् वि० सं० १६७७ पर्यंत तो अवश्य थी-ऐसा निश्चित होता है। कवि ने 'सूर-शतक' में सूरदास के दृष्टिकूट वाले १०० पदों का अर्थ किया है। काशी नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट में लिखा है—

"यह टीका तथा संग्रह श्रीबल्लभ संप्रदाय के आचार्य काशीस्थ गो० गोपाललाल जी के शिष्य बालकृष्ण ने अपने गुरु की आज्ञा से गुजरात भावनगर में किये†।"

रिपोर्ट का यह उद्धरण भ्रमात्मक है। गुजरात में भावनगर नाम का कोई ग्राम नहीं है। बल्लभ संप्रदाय में मुसलमानों के नामों से संबंधित ग्राम एवं नगरों का उच्चारण नहीं होता है, इसलिए जिस प्रकार अहमदाबाद को राजनगर कहते हैं, उसी तरह दक्षिण हैदराबाद को "भावनगर" कहते हैं। यह नाम आज तक वहाँ की जनता में भी प्रसिद्ध है। अतः जैसा पहले कहा

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृ० १७४

जा चुका है, इसका संग्रह और इसकी टीका सूरदास के प्रायः समकालीन और श्री गुसांई जी के सेवक बालकृष्ण कवि ने की है। यह रचना भी सूरसागर का ही अंश है। इसकी अनेक प्रतियाँ संप्रदाय में सर्वत्र प्राप्त हैं। इसका मुद्रण बंबई से प्रकाशित ठाकोरदास वाली "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" के अंत में भी हो चुका है।

इस प्रकार सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचनाएँ हैं। सूरदास की जिन १४ छोटी रचनाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे वास्तव में सूरसागर के ही अंतर्गत हैं। उपर्युक्त तीनों प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास की ४ स्वतंत्र रचनाएँ और हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

४. **सूरसाठी**—वार्ता के अनुसार सूरदास ने इसकी रचना एक बनिया के लिए की थी, अतः यह एक स्वतंत्र रचना है। सूरसागर में जिस स्थान पर यह प्राप्त होती है, वहाँ इसकी असंगति स्पष्ट ज्ञात होती है।

५. **सूरपच्चीसी**—वार्ता के अनुसार इसकी रचना सूरदास और अकबर की भेंट के समय हुई थी, अतः यह भी एक स्वतंत्र रचना है।

६. **सेवाफल**—महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के संस्कृत ग्रंथ "सेवाफल" के विवरण स्वरूप सूरदास ने इसकी रचना की थी। महाप्रभु जी ने अपने "सेवाफल विवरण" नामक संस्कृत ग्रंथ में कहा है—

"सेवायाः फलत्रयं। अलौकिकसामर्थ्यं, सायुज्यं, सेवैपयोगिदेहो वा वैकुण्ठादिषु।"

सूरदास रचित इस सेवाफल में भी "वैकुण्ठादिषु" का विशेषतः स्पष्टीकरण हुआ है, अतः यह भी एक स्वतंत्र रचना है।

७. **सूरदास के पद**—इसमें सूरदास के स्फुट पदों का संग्रह है। सूरदास ने मंदिर में प्रार्थना आदि के रूप में तथा कतिपय व्यक्तियों को वैराग्य आदि का उपदेश देते हुए जिन छोटे-छोटे पदों की रचना की थी, उन सबका इसमें समावेश हो जाता है। सूरसागर के प्रासंगिक वैराग्यादि के पद इन पदों से भिन्न समझने चाहिए। इन दोनों प्रकार के पदों का पृथक्करण इनके अध्ययन से हो सकता है। शयन के अनंतर और मंगला-आरती के पूर्व जो दीनता, आश्रय, और विनय आदि के पद मंदिरों में गाये जाते हैं, जिनमें कई स्थानों पर आत्म-चारित्रिक उल्लेख भी आ गये हैं, वही पद इस रचना के अंतर्गत हैं।

सूरदास की समस्त रचनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे स्वतंत्र और परतंत्र दो प्रकार की हैं। उनकी स्वतंत्र रचनाओं में आत्मानुभूति और भावानुभूति के सजीव वर्णन मिलते हैं, जिनके कारण वे साहित्य-गगन के सूर्य माने गये हैं। उनकी परतंत्र रचनाएँ श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों के अनुवाद रूप हैं। इनमें भी जहाँ मनोवैज्ञानिक ढंग का कथन हुआ है, वहाँ सूरदास की वर्णन-शैली के कारण वे परतंत्र होते हुए भी चमत्कृत हो गयी हैं; जैसा कि भ्रमरगीत आदि से ज्ञात होता है। जिन परतंत्र रचनाओं में केवल वर्णनात्मक कथन है, वहाँ कुछ शिथिलता भी दिखलायी देती है।

प्रामाणिकता की परीक्षा—

सूरदास नाम के कई कवि हुए हैं, अतः उनकी रचनाओं का सूरसागर में मिल जाना स्वाभाविक है। इसके लिए सूरदास कृत रचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच करना नितांत आवश्यक है। अष्टछापी सूरदास कृत रचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच उनकी रचना-शैली, भाषा-शैली, भाव, सिद्धांत और विचारों की विशिष्टता के कारण सरलता पूर्वक हो सकती है। बल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में परंपरागत प्रचलन और सार्थक शब्द-योजना सूरदास के प्रामाणिक पदों की मुख्य पहचान है। सार्थक शब्द-योजना की शैली सूरदास के पदों की विशिष्टता है, जो अन्य कवियों की रचनाओं में प्रायः कम मिलती है। सूरदास की सार्थक शब्द-योजना का कुछ परिचय हम गत पृष्ठों में उनके अंधत्व के संबंध में दे चुके हैं।

रचना-परिमाण—

सूर-सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख से अनेक विद्वानों ने अनुमान किया है कि सूरदास ने एक लाख पदों की रचना की थी। हम गत पृष्ठों में सूर-सारावली पर लिखते हुए यह स्पष्ट कर चुके हैं कि उपर्युक्त उल्लेख संख्यावाची नहीं है। फिर भी परंपरागत जनश्रुतियों और वार्ता के प्रमाण से यह ज्ञात होता है कि सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी।

अनुसंधान करने पर अब तक सूरदास कृत ८–१० हजार से अधिक पद प्राप्त नहीं हुए हैं, इसीलिए उनके द्वारा लाख–सवालाख पद-रचना की बात अविश्वसनीय सी ज्ञात होती है। कुछ विद्वानों ने सूरदास के रचना-काल का हिसाब लगा कर यह सिद्ध किया है कि उनकी नेत्र–विहीनता और श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रति दिन एक नया पद गाने के कारण उनके द्वारा लाख सवालाख पद-रचना की बात संभव भी ज्ञात नहीं होती।

अवश्य ही इस समय सूरदास कृत ८-१० हजार से अधिक पद प्रसिद्ध नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भी संदेह है कि पूर्ण अनुसंधान के अनंतर भी उनके रचे हुए लाख-सवालाख पद कभी मिल सकें। फिर भी हम यह देखना चाहते हैं कि उनके द्वारा इतने अधिक पद रचने की बात संभव भी है या नहीं।

सूरदास के चरित्र-प्रकरण में लिखा जा चुका है कि वे अपनी ३१ वर्ष की आयु में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के सेवक हुए थे। इससे पूर्व वे प्रायः १८ वर्ष की आयु से ३१ वर्ष की आयु तक अपनी स्वामी अवस्था में विनय-दीनता आदि के पदों द्वारा अपने शिष्य-सेवकों को उपदेश दिया करते थे। यह अवस्था यदि १३ वर्ष तक मानी जाय, और उस समय उन्होंने प्रति दिन कम से कम एक पद की रचना की हो, तो बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व वे कम से कम ४५०० पदों की रचना कर चुके थे।

श्री बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् सूरदास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में रहे थे। गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि उनका श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन-सेवा में रहना वि० सं० १५६७ से प्रारंभ होता है। इससे पूर्व केवल कुंभनदास श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन किया करते थे; किंतु वे गृहस्थ होने के कारण आठों दर्शनों में उपस्थित नहीं रह सकते थे। इस आवश्यकता की पूर्ति महाप्रभु जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के यहाँ स्थायी रूप से कीर्तन-सेवा में रख कर की थी। तब से सूरदास श्रीनाथ जी के मुख्य कीर्तनकार हुए। इस वृतांत के आधार पर श्रीनाथ जी के सन्मुख तब से नित्यप्रति आठों समय के कम से कम नये आठ कीर्तन भी गाये गये मान लिये जाँय, तब भी सूरदास ने प्रति वर्ष २८८० नये कीर्तनों की रचना की होगी।

यह संभव नहीं कि आशु कवि अपने बनाये हुए अमुक पदों का ही श्रीनाथ जी के सन्मुख नित्य प्रति पाठ करते हों। यह बात सूरदास जैसे प्रकृत आशु कवि के लिए तो और भी असंभव मानी जायगी। चूंकि श्रीनाथ जी सूरदास के इष्टदेव थे और सूरदास उनके सच्चे भक्त थे, इसलिए अपनी भक्ति के उद्रेक में अनेक भावों द्वारा नित्य प्रति नये पदों की रचना कर श्रीनाथ जी को सुनाना और रिझाना ही उनका मुख्य ध्येय था। फिर सूरदास के हृदय में भगवल्लीलाओं की अनेक तरंगें भी उठती रहती थीं, जिनको वे तत्काल पद-रचना द्वारा व्यक्त करते थे। इन सब बातों का विचार करने पर यह सरलता से समझा जा सकता है कि सूरदास जिस पद को एक बार गा लेते थे, उसको फिर नहीं गाते थे।

उक्त २८८० कीर्तनों में यदि आधे कीर्तन कुंभनदास के भी मान लिए जाँय, तब भी सूरदास प्रतिवर्ष श्रीनाथ की सेवा विषयक १४४० पद नये रचकर अवश्य गाते थे। इस संख्या का क्रम तब तक माना जायगा, जब तक कि परमानंददास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में नियुक्त नहीं हुए थे।

महाप्रभु जी ने वि० सं० १५७१ में परमानंददास को सूरदास के साथ श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करने की आज्ञा दी थी, अतः वि० सं० १५६७ से १५७७ पर्यंत के ११ वर्ष में सूरदास ने पूर्व हिसाब से कम से कम १५८४० नये पद अवश्य रचे होंगे। इस प्रकार वि० सं० १५७७ तक सब मिलाकर सूरदास २०००० से ऊपर पदों की रचना कर चुके थे।

परमानंददास की नियुक्ति के पश्चात् हम कीर्तन के पदों की संख्या को तीन भागों में विभाजित कर देंगे। परमानंददास वि० सं० १५७१ से श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त हुए थे, अतः तब से अष्टछाप की स्थापना तक सूरदास के प्रति वर्ष लगभग ६०० पद मान लेना आवश्यक है।

महाप्रभु जी ने कृष्णदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा नहीं दी थी। शरण में लेने के बाद उनको प्रारंभ में भेंट उगाहने की सेवा दी गयी थी। इसके बाद उनको भंडारी और अंत में अधिकारी बनाया गया। इसलिए अष्टछाप की स्थापना के पूर्व हम उनको श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मान सकते हैं।

अष्टछाप के छीतस्वामी, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास को भी हम तब तक कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मानेंगे, जब तक अष्टछाप की नियमित स्थापना नहीं हुई थी। हाँ! उनको सहायक रूप में कीर्तन करने की आज्ञा अवश्य मिली होगी।

वि० सं० १६०२ में गो० विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की थी, अतः वि० सं० १५७७ से वि० सं० १६०२ पर्यंत के २५ वर्षों में प्रति वर्ष के ६०० पदों के हिसाब से सूरदास ने २२५०० पद और रचे होंगे। इस प्रकार अष्टछाप की स्थापना के समय तक सूरदास सब मिलाकर लगभग ४२५०० पदों की रचना कर चुके थे।

अष्टछाप की स्थापना के अनंतर प्रति वर्ष के २८८० पदों के ८ भाग कर देने से सूरदास द्वारा गाये हुए पदों की संख्या ३६० होती है। यह क्रम सं० १६०२ से सूरदास के अंतिम समय सं० १६४० तक चलता रहा था, अतः इस अवधि के ३९ वर्षों में सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या १४०४०

होता है। इस संख्या को पूर्व संख्या में जोड़ देने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की कुल संख्या ५६५४० हो जाती है। यह संख्या सूरदास द्वारा नित्य गाये जाने वाले श्रीनाथ जी के आठों समय के कम से कम पदों की है।

गो० विट्ठलनाथ जी ने वि० सं० १६०२ में सेवा मार्ग का जो विस्तार किया था, उसमें अनेक वर्षोत्सव बढ़ाये गये थे। इनके अनुसार डोल, दुतिया पाट, संवत्सर, गनगौर, रामजयंती, महाप्रभु का जन्मोत्सव, अक्षय तृतीया, नृसिंह जयंती, ज्येष्ठाभिषेक, षष्ठपंडगु, पवित्रा एकादशी, रक्षा, वामन जयंती, साँझी, दशहरा, शरदोत्सव, धनतेरस, रूप चतुर्दशी, दिवाली, अन्नकूट, भैया-दोज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी, व्रतचर्या, मकर संक्रांति, बसत, होरी आदि उत्सवों का प्रचलन आरंभ हुआ। इनके अतिरिक्त फूलमंडली, खप्पनवाना, हिंडोरा, रथ और श्री विट्ठलनाथ आदि के जन्मोत्सव भी इस वर्षोत्सव की सेवा में सम्मिलित हैं। रथ के उत्सव के सिवाय अन्य सब उत्सव गो० विट्ठलनाथ जी ने सं० १६०२ में आरंभ कर दिये थे।

गो० विट्ठलनाथजी ने इन उत्सवों के दिन भी निश्चित कर दिये थे। जैसे जन्माष्टमी की बधाई श्रावण कृष्णा ४ से आरंभ होकर एक मास और चार दिन पर्यंत गायी जाती है। इस हिसाब से उक्त उत्सवों का सब मिलाकर समय प्रायः ६ मास का होता है।

६ मास पर्यंत के दिन विशेष उत्सवों का यदि एक-एक पद भी सूरदास का मान लिया जाय, तब भी उनके रचे हुए वर्ष भर के २७० पद होते हैं। इस हिसाब से उनके रचे हुए ३६ वर्ष के १०५२० पद और होते हैं। इस संख्या को पूर्व संख्या में जोड़ने से सूरदास के सब मिला कर ६७०७० पद होते हैं।

अब सेवा-पद्धति के अनुसार शयनोत्तर गाये जाने वाले दीनता-आश्रय के पदों का हिसाब भी लगाना चाहिये। यह प्रणाली महाप्रभु के समय से ही रखी गयी है, अतः सूरदास कृत प्रतिदिन कम से कम एक पद भी दीनता-आश्रय का माना जाय, तो उनके ७३ वर्ष के सांप्रदायिक काल में रचे हुए २६२८० पद और होते हैं। पूर्व संख्या में इस संख्या को जोड़ने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या ९३३५० निश्चित होती है।

अब रह जाते हैं सूरदास के सागरोक्त लीला, सिद्धांत और अनुवादात्मक पद। उन्होंने श्री भागवत की तृणावर्त-अघासुर वध, माटी भक्षण, कालीयदमन आदि लीलाओं में से प्रत्येक के अनेक पद रचे हैं, जिनका हिसाब लगाना

भी कठिन है। यदि इन पदों को पूर्व संख्या में जोड़ा जाय तो सूरदास द्वारा रचे हुए लाख-सवालाख पदों की बात प्रमाणित हो जाती है। हमने सूरदास के पदों की जो आनुमानिक गणना की है, वह कम से कम है और प्रामाणिक आधार पर है, अतः उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है।

अब यहाँ पर अष्टसखाओं कृत सांप्रदायिक सेवा के पास पदों की संक्षिप्त सूची दी जा रही है, जिसमें सूरदास द्वारा रचित कई उत्सवों के आवश्यक पद भी नहीं मिलते हैं। कुछ के एक-दो पद मिलते हैं; इस लिए यह मानना होगा कि सतत खोज करने पर सूरदास के असंख्य पद और मिलने चाहिएँ। बल्लभ सांप्रदाय के स्फुट कीर्तन ग्रंथों में भी अभी सूरदास के ऐसे अनेक पद उपलब्ध होते हैं, जो संप्रदायिक मंदिरों के अतिरिक्त अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं हैं। इनका संकलन करने से भी सूरदास के प्राप्त पदों में कई हजार पद और बढ़ जावेंगे।

अष्टछाप कृत सेवा विषयक वर्षोत्सव के पद।

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों का प्रथम चरण
जन्माष्टमी—	सूरदास	ब्रज भयौ महरि कें पूत
,,	कुंभनदास	नंद महरि के पूत भयौ
,,	परमानंददास	जन्म फल मानत जसोदा माय
,,	कृष्णदास	गोकुल बरषत आनंद मेहा
,,	गोविंदस्वामी	नंद महरि के आज बधाई
,,	चतुर्भुजदास	नैंन भरि देखो नंदकुमार
,,	नंददास	पुत्र भयौ है आज श्री नंदराज के
पलना—	सूरदास	दिव्य कनक कौ बन्यौ पालनौ
,,	परमानंददास	झुलावै सुत कों महरि पलना
,,	कृष्णदास	परम मनोहर बन्यौ है पलना
ढाढ़ी—	सूरदास	नंद जू मेरे मन आनंद भयौ
,,	कृष्णदास	नंद जू हौं ढाढ़ी वृषभान गोप कौ
,,	गोविंदस्वामी	आज नंद-गृह कौतुक सुनिकैं
,,	चतुर्भुजदास	हौं ब्रजराज की ढाढ़िन
,,	नंददास	रंग भीनी ढाढ़नि अति रुचि सों चारु मंगलरा गावै हो

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
मास दिना—	सूरदास	तेल भरे भरे केस सौंधे
अन्नप्राशन—	सूरदास	आज कान्ह करि हैं अन्न प्रासन
,,	परमानंददास	अन्न प्रासन दिन नंदलाल कौ करत यसोदा माय
कर्णछेदन—	सूरदास	कान्ह कों कर्णछेदन हाथ सुहारी भेली गुरकी
,,	परमानंददास	गोपाल के वेध कर्ण कों कीजै
,,	कृष्णदास	आयौ कर्ण वेध दिन नीकौ
नामकरण—	परमानंददास	जहाँ गगन गति गर्ग कह्यौ
मृतिका भक्षण—	सूरदास	मोहन तैं माटी क्यों खाई
,,	परमानंददास	देखो गोपालजू की लीला ठाटी
करवट—	परमानंददास	करवट लई प्रथम नँदनंदन
ऊखल—	सूरदास	निगम साखि देखो गोकुल हरी
,,	पमानंददास	गोविंद बार-बार मुख भाखै
बाललीला—	सूरदास	आँगन स्याम नँचावहिं यसोमति रानी
,,	परमानंद	रानी तेरे लाल सों कहा कहूँ
,,	कृष्णदास	लेउ लाल मेरे लाल खिलौना
,,	गोविंददास	गोपी नाँचति गोद लै गोविंद
,,	चतुर्भुजदास	माई लैन देहु जो मेरे लालहिं भावै
,,	नंददास	माधौ जू तनिक सौ बदन सदन सोभा कौ
पूतना वध—	सूरदास	देखो यह विपरीत नई
शकटासुर वध—	सूरदास	नृपति बचन यह सबन सुनायौ
तृणावर्त—	सूरदास	सोभित सुभग नंदजू की रानी
दावानल—	सूरदास	अबके राखि लेहु गोपाल
कालीयदमन—	सूरदास	अति कोमल तनु धरयौ कन्हाई
चंद्रावली जू की बधाई-	कृष्णदास	चंद्रभान के नवनिधि आई
राधिका जी की बधाई-	सूरदास	आज बरसाने बजत बधाई
,,	कुंभनदास	प्रगटि नागरी रूप निधान
,,	परमानंद	राधा जू कौ जनम सुन्यौ मेरी माई
,,	कृष्णदास	श्रीवृषभान राय जू के आँगन
,,	गोविंददास	सुनियत रावल होत बधाई

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
राधिका जी की बधाई—	छीतस्वामी	सकल लोक की सुंदरता वृषभान गोप के आई
,,	चतुर्भुजदास	तू देखि सुता वृषभान की
,,	नंददास	बरसाने तें दौरी नारी एक नंद-भवन में आई
राधाजी की ढाढ़ी—	कृष्णदास	महिर जू ! याचन तुम पै आयौ
राधिका जी कौ पलना-	सूरदास	अहो मेरी लाड़िली कुँवरि
,,	परमानंददास	रसिकिनी राधा पलना झूलैं
,,	कृष्णदास	लड़ैती पालने झूलैं
राधिकाजी की बाललीला	सूरदास	खेलन के मिस कुँवरि राधिका
,,	परमानंददास	एहै पीत पट कहाँ तें पायौ
बल नागरी—	सूरदास	नवल नागरी सब गुन आगरी
दान—	सूरदास	मोहन तुम कैसे हो दानी
,,	कुंभनदास	हमारौ दान दैहो गुजरैटी
,,	परमानंददास	पिछौंडी बाहन दैहो दान
,,	कृष्णदास	नीके दान निबेरत हो
,,	गोविंदस्वामी	गोरस बेचन लै चली
,,	छीतस्वामी	अहो बिधना तौपै अचरा पसार
,,	चतुर्भुजदास	कहो किन कीनों दान दही कौ
,,	नंददास	लाल तुम परे हमारे ख्याल
वामन जी—	सूरदास	राजा मैं दानी सुनि कें आयौ
,,	परमानंददास	वामन आये बली पै माँगन
,,	गोविंदस्वामी	प्रगटे श्री वामन अवतार
साँझी—	सूरदास	राधा प्यारी कह्यौ सखीन सों
देवी पूजन	सूरदास	बन धरि देवी पूजी
,,	परमानंददास	श्री राधे कौन गौर तैं पूजी
,,	गोविंदस्वामी	पूजन चलो हो कदम बन देवी
मुरली—	सूरदास	मुरली हरि कौं अपने बस कीने माय
,,	परमानंददास	यातें माई भवन छांडि बन जैये
,,	कृष्णदास	बाँसुरी बाजत मदनमोहन
,,	चतुर्भुजदास	नंदलाल बजाई बांसुरी श्री यमुना जू के तीर री

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
करखा—	सूरदास	परदेसनि नारि अकेली
,,	कृष्णदास	पाँय तौ पूजि चले रघुनाथ
,,	नंददास	कपि चल्यौ सीय सुधि कों
दशहरा (जवहारा)—	परमानंददास	सरद रितु सुभ जान अनूपम
,,	गोविंदस्वामी	विजय दशमी और विजय महूरत
,,	चतुर्भुजदास	जवारे पहिरत श्री गोवर्धननाथ
रास—	सूरदास	हा हा हो हरी नृत्य करो
,,	कुंभनदास	यह गति नाँचत नाँच नई
,,	परमानंददास	बन्यौ रास मंडल में माधौ
,,	कृष्णदास	मन लाग्यौ गिरिधर गावै
,,	गोविंदस्वामी	मदनमोहन कमलनयन
,,	छीतस्वामी	लाल संग रास रंग लेत मान
,,	चतुर्भुजदास	प्यारी भुज ग्रीवा मेलि
धन तेरस—	कुंभनदास	आज माई धन धोवत नंदरानी
,,	परमानंददास	दूध सों स्नान करो मनमोहन
रूप चतुर्दशी—	कृष्णदास	आज न्हाओ मेरे कुँवर कन्हैया
दीपावली—	परमानंददास	आज दिवारी मंगलचार
गाय खिलायवौ—	सूरदास	आज दीपत दिव्य दीपमालिका
,,	कुंभनदास	गाय खिलावत स्याम सुजान
,,	परमानंददास	किलक हँसै गिरिधर ब्रजराय
,,	कृष्णदास	ब्यार बड़ौ करि डार री सारंग
,,	छीतस्वामी	खिरक खिलावत गायन ठाढे
,,	चतुर्भुजदास	गाय खिलायौ चाहत
,,	नंददास	बड़े खिरक में धूँमरि खेलत
हटरी—	सूरदास	सुरभी कान जगाय खरिक बल मोहन बैठे राजत हटरी
,,	परमानंददास	गिरिधर हटरी भली बनाई
,,	गोविंदस्वामी	हटरी बैठे श्री गोपाल
,,	नंददास	दीपदान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
अन्नकूट—	सूरदास	अपने-अपने टोल कहत ब्रजवासियाँ
,,	कुंभनदास	गोवर्धन पूजन चले री गोपाल
,,	परमानंददास	छैल छबीले लाल कहत नंदराय सों
,,	गोविंदस्वामी	गोवर्धन पूजा कों आये सकल ग्वाल लै संग
,,	चतुर्भुजदास	गोधन पूज सबै रँगभीने
इंद्र मान-भंग—	सूरदास	राख लेहु गोकुल के नायक
,,	कुंभनदास	आज कछु बदरन अंबर छायौ
,,	परमानंददास	आवो आवो रे भैया
,,	कृष्णदास	बलिहारी गोपाल की
,,	गोविंदस्वामी	ब्रजजन लोचन ही कौ तारौ
,,	छीतस्वामी	सब गोकुलकौ जीवन गोपाललाल प्यारौ
,,	चतुर्भुजदास	वारी मेरे कान्ह प्यारे
,,	नंददास	कान्ह कुँवर के कर पल्लव पर
गोचारण—	सूरदास	आज अति आनंद ब्रजराय
,,	परमानंदस्वामी	खेलन ही चले ब्रजराई
,,	गोविंदस्वामी	प्रथम गोचारन चले गुपाल
,,	चतुर्भुजदास	टेरत ऊँची टेर गोपाल
,,	नंददास	कैसे कैसे गाय चराइ गिरिधर
देव प्रबोधिनी—	परमानंददास	लाल कौ सिंगार करावत मैया
,,	कृष्णदास	प्रबोधिनी व्रत कीजै नीकौ
,,	गोविंदस्वामी	देव जगावत यसोदा मैया
,,	चतुर्भुजदास	बैठे कुंज मंडप में आय
ब्याह—	सूरदास	मेंहदी स्यामसुंदर कें रचि-रचि हाथन पाँय लगावै
,,	परमानंददास	मैया मोहि ऐसी दुलहनि भावै
,,	कृष्णदास	कंकन कुँवर कन्हैया के कर देखि री
,,	नंददास	एक दिन राधे कुँवरि नंद-गृह खेलन आई
मान—	सूरदास	ललन की बातन पर बल जैये
,,	परमानंददास	कुंज भवन में मंगलचार
,,	नंददास	लाड़िली न मानें लाल

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
भोगी (मकरसंक्रांति)–	परमानंददास	भोगी भोग करत सब रस कौ
,,	कृष्णदास	बन ठन भोगी रस बिलसन कों भोर
,,	नंददास	भोर भये भोगी रस बिलस भयौ ठाड़ौ
अभ्यंग स्नान—	सूरदास	कहत नंदरानी गोपाल सों तात कों बुलाय लावो बड़ौ परव उत्तरायन
,,	कुंभनदास	मात जसोदा परव मनाहै
फूलमंडली—	कुंभनदास	बैठे लाल फूलन के चौबारे
,,	परमानंददास	मुकुट की छाँह मनोहर किये
,,	कृष्णदास	देखन सखी फूलन अठखंभा
,,	गोविंदस्वामी	फूलन की मंडली मनोहर
,,	छीतस्वामी	फूलन के भवन गिरिधरन
,,	चतुर्भुजदास	फूलन की मंडली मनोहर बैठे
,,	नंददास	फूलन कौ मुकुट बन्यौ, फूलन कौ पिछौरा
गनगौर—	परमानंददास	क्यों बैठी राधे सुकुमारी,
,,	कृष्णदास	ठाड़े कुंज द्वार पिय प्यारी
,,	नंददास	छबीली राधे ! तू पूजि लै री गनगौर
रामनवमी—	सूरदास	रघुकुल में प्रगटे रघुवीर
,,	परमानंददास	नौमी के दिन नौवत बाजै
,,	गोविंदस्वामी	मेरौ रामलला कौ सोहिलौ
महाप्रभु की बधाई—	कुंभनदास	बरनों श्री बल्लभ अवतार
,,	परमानंददास	श्री बल्लभलाल आँगन निधि खेलन
,,	कृष्णदास	आनँद भयौ लक्ष्मण नंदकुमार
,,	गोविंदस्वामी	बधाई सब मिलि गावो आज
,,	छीतस्वामी	श्रीबल्लभ जू के देखें जीजैं
,,	नंददास	लक्ष्मण-घर बाजत आज बधाई
शृंगार—	सूरदास	पीत पिछौरी कहाँ तें मानों पाद अति झीनी
,,	कृष्णदास	सगुन मनाय रही ब्रजबाला
,,	छीतस्वामी	ये ही सुभाव सदा ब्रज बसिबौ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
ब्यारू—	नंददास	चंदन भवन मधि करत ब्यारू परोस धरी है कंचन थारी
चंदन—	कुंभनदास	चंदन पहिरत गिरिधरनलाल
,,	गोविंदस्वामी	चंदन पहिर आय हरि बैठे कालिंदी के कूल
,,	चतुर्भुजदास	आज बने नँदनंदन री नव चंदन कौ
नरसिंह चतुर्दशी —	सूरदास	तौलौं हौं बैकुंठ न जैहौं
,,	परमानंददास	गोविंद तिहारौ स्वरूप निगम नेति-नेति गावै
नौका—	परमानंददास	बैठे घनस्याम सुंदर खेवत हैं नाव
,,	नंददास	चंदन पहरि नाव हरि बैठे
गंगा दशमी—	छीतस्वामी	जय जय श्री सूरजा कलिंद-नंदिनी
,,	नंददास	जय जय श्री यमुना आनंद-कंदनी
स्नानयात्रा—	सूरदास	यमुना-जल गिरिधर करत विहार
,,	परमानंददास	पूरनमासी पूरन तिथि श्री गिरिधर करत स्नान मन भायौ
,,	गोविंदस्वामी	ज्येष्ठ मास सुदि पून्यौ शुभ दिन करत स्नान गोवर्धनधारी
रथयात्रा—	सूरदास	तुम देखो सखी री आज नयन भर हरि जू के रथ की सोभा
,,	कुंभनदास	रथ बैठे मदनगोपाल
,,	परमानंददास	तुम देखो सखी रथ बैठे गिरिधारी
,,	कृष्णदास	तुम देखो सखी रथ बैठे ब्रजनाथ
,,	गोविंदस्वामी	तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा
,,	नंददास	देखो माई नंदनंदन रथहिं बिराजें
मल्हार—	सूरदास	बोले भाई गोवर्धन पर मुरवा
,,	कुंभनदास	सखी री बूँद अचानक लागीं
,,	परमानंददास	उठत प्रात रसना रस लीजै
,,	कृष्णदास	करत कलेऊ किलकत दोउ भैया
,,	गोविंदस्वामी	स्यामहिं देख नाँचत मुदित मनमोहन
,,	छीतस्वामी	बादर झूमि-झूमि बरसन लागे
,,	चतुर्भुजदास	करत कलेऊ किलकत मोहन
,,	नंददास	घुमड़ रहे बादर सगरी निसा के अहो महरि लालैं दीजै जगाय

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
कसूमी छट—	कुंभनदास	पहरैं सुभग अंग कसूमी सारी
,,	परमानंददास	मोहन सिर धरें कसूमी पाग
,,	कृष्णदास	बरषत मेघ मोर-पिक बोलत
,,	चतुर्भुजदास	ठाँय-ठाँय नाँचत मोर सुन-सुन
,,	नंददास	निकसि ठाढ़ी भई री चढ़ नवल
घटा (गुलाबी)—	सूरदास	रही झुकि लाल गुलाबी पाग
,, (हरी)—	,,	आज अति राजत हैं री हरे
,, (श्याम)—	,,	स्याम घन कारे-कारे बादर
,, (पीली)—	कुंभनदास	झूलैं माई जुगलकिसोर हिंडोरे
,, (श्याम)—	परमानंददास	बन स्याम बिहार करें
,, ,,	कृष्णदास	देखि सखी नीलांबर कौ छोर
,, ,,	चतुर्भुजदास	देखो माई बसन ए रही चटक
,, (गुलाबी)—	नंददास	गुलाबी कुंजन छवि छाई
चूनरी लहरिया—	परमानंददास	देखो माई भींजत रस भरे दोऊ
,,	गोविंदस्वामी	लाल मेरी सुरंग चूनरी देउ
,,	चतुर्भुजदास	स्याम सुन नेरे आए मेह
,,	नंददास	लाल सिर पाग लहेरिया सोहै
हिंडोरा—	सूरदास	राधे जू देखिये बन सोभा
,,	कुंभनदास	हरि संग झूलत हैं ब्रजनारी
,,	परमानंददास	यह सुख सावन में बनि आवै
,,	कृष्णदास	रोप्यौ हिंडोरौ नंद-गृह
,,	गोविंदस्वामी	दंपति झूलत सुरंग हिंडोरे
,,	चतुर्भुजदास	पावस ऋतु नीकी लागत
,,	नंददास	हिंडोरे माई झूलत गिरिधरलाल
पवित्रा—	परमानंददास	पहरि पवित्रा बैठे हिंडोरे
,,	कृष्णदास	पवित्रा पहिरें नंदकुमार
कुल्हे—	कुंभनदास	सुरंग कुल्हे रंग अरुन पिछौरा
,,	कृष्णदास	अब ही हौं आई लाल राधे कों मनाय

वर्षोत्सव के उपर्युक्त पदों की सूची से ज्ञात होगा कि उसके कई मुख्य विषयों पर सूरदास के दो-एक पद ही उपलब्ध हैं। किसी-किसी विषय पर तो उनका एक भी पद प्राप्त नहीं है। अब नित्य सेवा के पदों को देखना चाहिए। नित्य सेवा के निम्न लिखित प्रमुख विषयों पर अष्टसखाओं के अनेक पद मिलते हैं—

१. श्री यमुना आदि की स्तुति, २. जागरण, ३. कलेवा, ४. मंगला-आरती, ५. विविध शृंगार, ६. हिलग, ७. पनघट, ८. खंडिता, ९. बाल-लीला आदि, १०. राजभोग, गृह-भोजन, छाक, ब्रज-भक्तों के यहाँ का कुनवारा, छप्पनभोग, बीरी आदि, ११. राजभोग दर्शन, १२. राजभोग-आरती, १३. मान १४. उत्थापन, १५. गोवर्धन, १६. भोग का मान, १७. संध्या-आरती, १८. शृंगार बड़ा होना, १९. धैयाँ, २०. शयन-भोग, २१. शयन की बीरी, २२. शयन के दर्शन, २३. शयन-आरती, २४ पौढ़ना, २५. कहानी, २६. मान, २७. दीनता, आश्रय, विनयादि।

नित्य सेवा के उपर्युक्त विषयों पर सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा रचे हुए पदों की सूची हम स्थानाभाव के कारण यहाँ पर नहीं दे रहे हैं, किंतु वर्षोत्सव की तरह नित्य सेवा के उपलब्ध पदों में भी कई प्रमुख विषयों पर सूरदास के दो-एक पद ही उपलब्ध होते हैं, अथवा किसी-किसी विषय का एक भी पद उपलब्ध नहीं होता है। इससे सिद्ध है कि सूरदास के असंख्य पद अभी छिपे पड़े हैं, जिनको खोज निकालने की अत्यंत आवश्यकता है। अतीत की विषम परिस्थितियों ने अन्य प्राचीन कवियों की तरह सूरदास के भी अगणित पदों को अवश्य नष्ट किया होगा, किंतु परिश्रम पूर्वक अनुसंधान करने पर अब भी सूरदास के असंख्य पद प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार सिद्ध है कि जनश्रुति और वार्ता के अनुसार सूरदास के रचे हुए चाहें लाख-सवालाख पद इस समय प्राप्त न हो सकें, तब भी पूर्ण अनुसंधान होने पर उनके प्राप्त पदों की संख्या अब से कई गुना अधिक हो सकती है।

———

चतुर्थ परिच्छेद

सिद्धांत-निर्णय

★

१—सूरदास और शुद्धाद्वैत सिद्धांत

इतिहास और अंतःसाक्ष्यों से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी एवं पुष्टिमार्गीय भक्त होना निश्चित है, तथापि सूरसागर के कतिपय पदों के कारण कुछ विद्वान प्रतिबिंववाद और वृंदाबनी संप्रदायों की भक्ति-भावना से भी सूरदास को प्रभावित मानते हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि-भक्ति के वास्तविक परिचय से उक्त मान्यता नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होती है। हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सूरदास की उपलब्ध प्रत्येक रचना शुद्धाद्वैत सिद्धांत और विशुद्ध पुष्टि-भक्ति से ही संपूर्णतः प्रभावित और संबद्ध है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने वेद और भगवान् बादरायण व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रों से शुद्धाद्वैत सिद्धांत का दोहन किया है, इसलिए उन्होंने इस सिद्धांत के गुरु व्यासदेव को ही माना है†।

सूरदास के पदों में परब्रह्म, अक्षरब्रह्म, जगत, जीव और माया आदि तत्वों का जो वर्णन किया गया है, वह शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार है। इन पदों के अध्ययन से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी होना निश्चित होता है। हम यहाँ पर उक्त तत्वों का विवेचन और तत्संबंधी सूरदास के पदों को उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत, पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना और सेवाप्रणाली का किस प्रकार सफलता पूर्वक वर्णन किया है।

१. परब्रह्म

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—वेद की श्रुतियाँ "नायमात्मा प्रवचेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" आदि कह कर जिस आत्मा-तत्त्व को निर्गुण बतलाती हैं, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कहा गया है।

---

† "व्यासोऽस्माकं गुरु।" — श्रीवल्लभाचार्य जी

यही ब्रह्म प्रकृतिजन्य धर्मों के अभाव में जिस प्रकार निर्गुण कहलाता है, उसी प्रकार यह आनंदात्मक दिव्य धर्मों वाला होने से सगुण भी है*। इसी लिए वेद की श्रुतियाँ इसे "आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि" रूप में साकार सगुण भी कहती हैं‡।

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण—परब्रह्म के तीन मुख्य धर्म हैं—सत्, चित् और आनंद; अतः यह "सच्चिदानंद" अथवा "सदानंद" भी कहलाता है। सदानंद का ही पर्यायवाची शब्द 'कृष्ण' है, अतः इसको कृष्ण भी कहा गया है§। इस प्रकार वेदांत में जिसको भगवान् कहा गया है, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कृष्ण कहते हैं†, ये परब्रह्म अपनी आत्म-माया से सदा आवृत रहते हैं‡, इसलिए ही उनको 'श्रीकृष्ण कहते हैं।

परब्रह्म का विरुद्धधर्माश्रयत्व—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण सर्व धर्मों के आश्रय रूप हैं, इसी लिए वे "धर्मी" कहलाते हैं। इनमें विरुद्ध धर्म भी एक साथ रहते हैं; यही इनकी विशेषता और विचित्रता है। इनके धर्म भेद सहिष्णु अभेद रूप वाले अर्थात् तादात्म्य भाव वाले होते हैं, जिस प्रकार सूर्य और उसके प्रकाश की स्थिति रहती है। इनका विरुद्धधर्माश्रय इस प्रकार है—

ये निर्धर्मक—प्राकृत धर्मों से रहित—होते हुए भी सधर्मक—दिव्य आनंदात्मक धर्मों से युक्त हैं। इसी प्रकार निर्विशेष और निर्गुण होते हुए भी सविशेष और सगुण हैं। अणु से अणु हैं और महान् से महान् भी हैं। अनंत मूर्ति हैं, तथापि एक ही व्यापक हैं। कूटस्थ हैं, तथापि चल हैं।

---

* निर्दोष पूर्णगुणविग्रह आत्मतंत्रो। निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीनः। आनंदमात्रकरपादमुखोदरादिः। सर्वत्र च त्रिविध भेद विवर्जितात्मा॥ (निबंध)

‡ तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञान मयात्। अन्योन्तर आत्मानंदमयः। तेनैष पूर्णः॥ सर्वोऽव पुरुषविध एव। तस्य पुरुष विधताम्।

§ कृषिर्भूसत्तावाचकःणश्च निवृतिवाचकः। तयोरैक्यं परंब्रह्मकृष्ण इत्यभिधीयते॥

† परंब्रह्म तु कृष्णं हि..... । (सि० मु०)

‡ "माययावृत" (पु० स० नाम)

अकर्तृ हैं, तथापि कर्तृ हैं। अविभक्त हैं, तथापि विभक्त हैं। अगम्य हैं, तथापि गम्य हैं। अदृश्य हैं, तथापि दृश्य हैं। ये नानाविध सृष्टिकर्त्ता हैं फिर भी विषम नहीं है। क्रूर कर्म कर्ता हैं, फिर भी निर्घृण नहीं हैं—गाढ़ घनीभूत सैंधववत् बाह्याभ्यंतर सदा सर्वदा एक रस हैं।

इसी प्रकार पूर्णावतार दशा में—कृष्णावतार के समय में —वे बालक होने पर भी रसिक मूर्द्धन्य हैं। स्ववश हैं, तथापि अन्य (भक्त) वश हैं। अभीत हैं, तथापि (भक्ति के निकट) भीत हैं। भक्त सापेक्ष हैं, फिर भी निरपेक्ष हैं। चतुर हैं, फिर भी (भक्त के पास) मुग्ध हैं। सर्वज्ञ हैं, तथापि (भक्त के पास) अज्ञ हैं। आत्माराम हैं, फिर भी रमण कर्त्ता हैं। पूर्ण-काम हैं। फिर भी भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये कामार्त्त हैं। अदीन हैं, तथापि भक्त के सन्मुख दीन भाषण करते हैं। स्वयं प्रकाश हैं, फिर भी (भक्त से अन्यत्र) अप्रकाश हैं। वहिःस्थ हैं, तथापि अंतःस्थिति करते हैं। स्वतंत्र हैं, तथापि (भक्त के पास)अस्वतंत्र हैं, पराधीन हैं, परवश हैं, रसिक-वश हैं। अवतार दशा में वे प्रापंचिक धर्म को अंगीकार करते हैं, तथापि अच्युत हैं, च्युतिरहित हैं।

इस प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय रूप होने से• कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम् सर्व-भवन-समर्थ हैं। वे अपने इस रूप का भक्तों को अनुभव कराकर निःसीम माहात्म्य को जगत् में प्रकट करते हैं। यही उनकी विचित्रता है। ज्यादा क्या कहें; वे अविकृत होते हुए भी कृपा द्वारा परिणाम रूप होते हैं†।

संपूर्ण वेदों का अक्षरशः प्रामाण्य मानने पर परब्रह्म का यही स्वरूप निर्धारित होता है, और तभी वेद की निर्गुण-सगुण स्वरूप प्रतिपादक श्रुतियों का मतैक्य भी हो सकता है; पौराणिक अवतार भावनाएँ भी तभी संगत हो सकती हैं। इस प्रकार समग्र वेद और शास्त्रों के मतों को एक-वाक्य करने का संपूर्ण श्रेय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी को ही प्राप्त हुआ है। इसीलिए उनके मत में आध्यात्मिक विचारों की परिपूर्णता और सुस्पष्टता दिखायी देती है। यही कारण है कि सूरदासादि महान् आत्माएँ भी इस सिद्धांत को अनुयायी हुई।

सूरदास के पदों में परब्रह्म विषयक वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—

• विरुद्ध सर्व धर्माणामाश्रयो युक्तयगोचरः। (निबंध)

† "शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रदीप"

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—

१. करनी करुनासिंधु की कछु कहत न आवै ।
कपट हेतु परसै बकी जननी गति पावै ॥
वेद उपनिषद जस कहै, "निर्गुण" हि बतावै ।
सोई "सगुण" होय नंद कें दाँत्ररी बँधावै ॥

२. अविगत गति कछू कहत न आवै ।
ज्यों गूँगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही जू निरंतर अमित तोष उपजावै ।
मनवानी कों अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै ॥
रूप, रेख, गुण, जाति, जुगति विनु, निरालंब मन चकृत धावै ।
'सब विधि अगम' विचारहिं तातें 'सूर' 'सगुण' लीला पद गावै ॥

३. अविगत,आदि, अनंत, अनूपम 'अलख' पुरुष अविनासी ।
'पूरनब्रह्म', 'प्रगट पुरुषोत्तम' 'नित' निज लोक विलासी ॥

४. आदि सनातन 'हरि' अविनासी ।
'निर्गुण-सगुण' धरै तन दोई ····· ॥

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण हरि—

कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै ।
'कृष्णहि तें यह जगत प्रगट है 'हरि' में लय ह्वै जावै ॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही हरिलीला जग देखै ।
तौ तिहिं सुख-दुख निकट न आवैं, 'ब्रह्म रूप करि लेखै ॥

परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व—

१. बलि-बलि चरित गोकुलराय ।
दावानल कौ पान कीनों पिवत दूध सिराय ॥
पूतना के प्रान सोषे रहे उर लपटाय ।
कहति जननी दूध डारत खीझि कछु अनखाय ॥
तृणावर्त्त अकास तें गहि सिला पटक्यौ आय ।
डरत लालन झुलत पलना खरे देत झुलाय ॥
यमल-अर्जुन तोरि, तारे हृदय प्रेम बढाय ।
फटक तात पलास पल्लव देहु देत दिखाय ॥

कीर पिंजरा देत अंगुरी लेत स्याम भजाय ।
बकासुर की चोंच फारी दृष्टि अचरज लाय ॥
बिना दीपक सदन में हरि नैंकु धरत न पाय ।
अघासुर मुख पैठि निकसे बाल बच्छ जिवाय ॥
हरे बालक बच्छ नव कृत हेत दौरी माय ।
छूटि पसु जब रहत बन में द्रुमन ढूँढत जाय ॥
लिख्यौ द्वारे नाग कारौ देखि स्याम डराय ।
नृत्य काली फनन्हि ऊपर सप्त साल बजाय ॥
धरै गिरिधर दोंहनी कर धरत बाँह पिराय ।
सकट भंजन प्रसूत कछु जुग कठिन लागत पाय ॥
घोष-नारिन संग मोहन रच्यौ रास बनाय ।
कहति जननी व्याह की, तब लजत बदन दुराय ॥
वृषभ भंजन, हतन केसी हन्यौ पुच्छ फिराय ।
भजत सखन सनेह मोहन देखि आई गाय ॥
सेष महिमा कहि न आवै सहस रसना पाय ।
एक रसना "सूर" कहा कहे अंग अगनित भाय ॥

२. कौन सुकृत इन ब्रजवासिन कौ बदत बिरंचि-सिव-सेष ।
श्री हरि जिनके हेत मानुष वेष ॥
ज्योति-स्वरूप, जगन्नाथ, जगतगुरू, जगतपिता, जगदीस ।
जोग्य जग्य, जप, तप, व्रत तीरथ सो गृह गोकुल-ईस ॥
जाके जठर लोक-त्रय जल-थल पंचतत्व चोखाँन ।
सो बालक भूलत ब्रज-पलना जसुमति-भवन निधान ॥
एक एक रोम वैराट कूप सम अखिल लोक ब्रह्मंड ।
ताहि उछँग लिऐं मात जसोदा अपने निज भुज दंड ॥
रवि-ससि कोटि कला बिंब लोचन त्रिविध तिमिर भजि जात ।
अंजन देति हेत सुत के, चक्षु लै कर काजर मात ॥
छिति रति त्रिपद करि करुनामय बलि छलि दियौ पातार ।
डेहरि उलँघ एकत नहीं सो प्रभु खेलत नंद जू के द्वार ॥
अनुदिन श्रवन सुधारस पंचम चिंतामनि सी धेनु ।
सो तजि जसुमति कौ पय पीवत भक्तन कों सुख दैनु ॥

वेद वेदांत उपनिषद षट रस अरपै, भुगतै नाय।
सो हरि ग्वाल-बाल मंडल में हँसि हँसि जूठन खाय॥
वैकुंठ दायक कमला-नायक, सुख-दुख जाके हाथ।
काँधे कमरिया-लकुट, नगन पग, वत्स चरावन जात॥
करन हरन प्रभु दाता भुक्ता, विस्वंभर जग जानि।
ताहि लगाय माखन की चोरी बाँधे नँद जू की रानि॥
बकी बकासुर सकट तृणावर्त्त अघ धेनुक वृषभास।
केसी कंस कों यह गति दीनीं राखे चरनन पास॥
भक्त वत्सल प्रभु पतित-उद्धारन रहे सकल भरपूर।
मारग रोकि-परयौ हठि द्वारें पतित-सिरोमनि "सूर"॥

कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम्—

करुनानिधि तेरी गति लखि न परै।
धर्म-अधर्म, निषेध अविधहि, करन-अकरनहि करै॥
जय अरु विजय द्व कर्म कियौ कहँ ब्रह्म-साप दिवायौ।
असुर योनि दीनीं ता ऊपर धर्म-उच्छेद करायौ॥
मुक्ति हेतु योगी स्रम कर हीं असुर विरोधी पावै।
अधिगत गति करुनामय तेरी "सूर" कहा कहि गावै॥

परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार पूर्वोक्त परब्रह्म एक, अखंडित, आदि, अनादि, अद्वैत तत्व रूप है। वह अद्वैत भी पूर्ण शुद्ध रूप वाला है। अर्थात् वह सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद रहित है†, इसलिए वह एक रस है।

सूरदास ने परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता का वर्णन निम्न पदों में इस प्रकार किया है—

१. पहले हौं ही हौं एक।
'अमल' अकल, अज, भेद विवर्जित' सुति विधि विमल विवेक॥
२. राधिका-गेह हरि देह बासी। और त्रियन घर तनु प्रकासी॥
'ब्रह्म पूरन एक, द्वितीय न कोऊ'। राधिका सबै हरि सबै एऊ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी। तैसे हि ब्रह्म घर-घर बिहारी॥

† सजातीय विजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम्। (निबंध)

३. ब्रज ही में बसै आपुन ही बिसरायौ ।
प्रकृति पुरुष 'एक' करि जानहु वा तन भेद करायौ ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम' दोऊ सुख कारन उपजायौ ॥
४. सदा 'एक रस' एक अखंडित, आदि अनादि अनूप ॥

पुरुषोत्तम—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार निर्गुण परब्रह्म अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी आत्मा में निरंतर आंतर रमण करता है, इसलिए वह 'आत्माराम' कहलाता है। उसको जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है, तब स्वांतः स्थित दिव्य आनंद धर्मों वाले अपने "आधिदैविक" रूप से वह अपनी शक्तियों के साथ बाह्य रमण करता है। यही आनंद धर्मों वाला उसका बाह्य प्रकट रूप 'पुरुषोत्तम' कहलाता है। यह परब्रह्म का ही आधिदैविक साक्षात् रूप है, अतः आचार्य श्री ने श्रुतियों में प्रतिपादित तत्व-परब्रह्म को ही पुरुषेश्वर-पुरुषोत्तम कहा है*। यह सत्यादि सहस्रों नित्य गुणों से युक्त है†, इसलिए यह परब्रह्म का ही सगुण लीला रूप है। इसमें अपरिमित आनंद है, इसलिये यह "आनंदमय" अथवा "अगणितानद" कहा गया है। यह काल-पुरुष अक्षरादि से पर-उत्तम है, अतः यह पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है‡।

इसी सूरदास ने पुरुषोत्तम का इस प्रकार वर्णन किया है—

१. अविगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अविनासी ।
पूरनब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी ॥
२. सोभा अमित अपार अखंडित आप आत्माराम ।
पूरनब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब विधि पूरन काम ॥

पुरुषोत्तम की लीला—शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार परब्रह्म पुरुषोत्तम में अनंत शक्तियों की निरंतर स्थिति रहती है। ये सब शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा आधीन रहने वाली हैं। जब पुरुषोत्तम बाह्य रूपलीला करते हैं,

---

* यत्र येन यतो यस्य यस्मैयद्यद्यथा यदा ।
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वरः ॥ (निबंध)

† सत्यादिगुण साहस्रैर्युक्तमोत्पत्तिकैः सदा । (निबंध)

‡ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोकेवेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ (गीता)

तब उनकी शक्तियाँ भी बहिःस्थिति करती हैं, और विविध रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन अनंत शक्तियों में श्रिया, पुष्टि, गिरा और कांत्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य हैं। ये ही श्रीस्वामिनी, चंद्रावली, राधा और यमुना आदि आधिदैविक रूप और नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही नित्य-स्थिति करती हैं। इन द्वादश शक्तियों में से पुनः अनंत भाव प्रकट होते हैं, जो अनेक सखी-सहचरी रूप में उनके साथ रहते हैं।

इन शक्तियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए पुरुषोत्तम अपने में से श्रीवृंदावन, गोवर्धन, यमुना, श्रीगोकुल, पशु, पक्षी और वृक्षादिक को भी प्रकट करते हैं। ये सब पुरुषोत्तम के आधिदैविक ऐश्वर्य रूप होने से आनंदमय चैतन्य रूप हैं; फिर भी कृष्ण ललित लीला के लिए इन सब ने जड़ता धारण कर रखी है।

पुरुषोत्तम नित्य होने से इनके धर्म रूप में लीलाएँ भी नित्य हैं। इसीलिए ऋग्वेद, तैत्तरीय उपनिषद तथा श्रीमद्भागवतादि में वर्त्तमान काल की क्रियाओं से इनका वर्णन हुआ है‡।

अपनी इस आनंदमयी नित्यलीला का ज्ञान अन्य को भी हो, इस प्रकार की जब पुरुषोत्तम की इच्छा हुई, तब सर्वप्रथम वेद की श्रुतियों की प्रार्थना से उनको इनका दर्शन हुआ। पुनः श्रुतियों की प्रार्थना से सारस्वत कल्प में ब्रज में अवतरित होकर उनको भी इस लीला का साक्षात् आनंद देने का पुरुषोत्तम ने वरदान दिया। कृपायुक्त होकर दिये हुए इस वरदान को पूर्ण करने के लिए ही पुरुषोत्तम ब्रज में श्रीकृष्ण के रूप में साक्षात् आविर्भूत हुए और श्रुतियाँ ब्रज-गोपियों के रूप में प्रकट हुईं। पुरुषोत्तम के आविर्भाव से उनका समग्र लीलापरिकर और लीला के स्थान भी ब्रज की गोपियों और गोवर्द्धन आदि स्थानों में अपने आधिदैविक रूप से प्रविष्ट हुए*। तभी इस भूतल की सामग्री पूर्ण पुरुषोत्तम के भोग-योग्य हुई। साक्षात् गोलोक ने श्रीमद्गोकुल में प्रवेश किया। गोवर्धन ने इस गोवर्धन

---

‡ १. ता वां वास्तून्युश्मसि..... ऋग्वेद।

२. ते ते धामान्युश्मसि..... तैत्तरीय।

३. बहूनि सन्तिनामानि.....भागवत इत्यादि।

* इस विषय को विस्तृत रूप से समझने के लिए गो० श्री विट्ठलनाथजी रचित विद्वन्मंडन' ग्रंथ देखना चाहिए।

पर्वत में प्रवेश किया और वृंदावन ने इस वृंदावन में। इस प्रकार समग्र ब्रज तद्रूप हो गया। श्रीकृष्ण-पुरुषोत्तम—और उनके धर्म नित्य होने से उनका यह अवतार और उनकी यह अवतार लीला को नित्यता प्राप्त हुई। इसीलिए श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन वर्तमान काल का क्रियाओं से हुआ है और वृहद् वामन पुराण में भी कहा गया है कि "स्त्रियाँ अथवा पुरुषगण भक्ति-भाव से केशव को हृदय में धारण कर श्रुति गति को प्राप्त होते हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक भक्त भी श्रुति रूप गोपिकाओं के किये हुए भजन के अनुसार यदि श्रीकृष्ण का भजन करे तो वह श्रुतिरूप गोपिकाओं की गति को प्राप्त होता है। इससे भी इन गोपिकाओं की स्थिति की नित्यता सिद्ध होती है। इस प्रकार पुरुषोत्तम की मूल लीला और अवतार लीला का नित्य सबंध सिद्ध होता है।

सूरदास ने इन लीलाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

नित्य लीला का वर्णन—

जहाँ वृंदावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय-प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर।
सारस-हंस-चकोर-मोर-खग कूजत कोकिल-कीर॥
जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निसदिन करत बिहार॥'

× × ×

धीर समीर बहत त्यहिं कानन, बोलत मधुकर मोर।
प्रीतम-प्रिया बदन अवलोकत उठि-उठि मिलत चकोर॥
अमित एक उपमा अवलोकत जिय में परत बिचार।
नहिं प्रवेस अज-सिव-गनेस पुनि कितक बात संसार॥
'सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।'
कुमुद कली विगसित अंबुज मिलि मधुकर भागी सोय॥
नलिन पराग मेघ माधुरी, सो मुकुलित अंब कदंब।
मुनिमन मधुप सदारस लोभित सेवत अज-सिव-अंब॥

× × ×

सुख पर्यंक अंक ध्रुव देखियत कुसुम कंद द्रुम छाये ।
मधुर मल्लिका कुसु मित कुंजन दंपति लगत सोहाये ॥
गोवर्धन गिरि रतन सिंहासन दंपति रस सुख मान ।
निबिड कुंज जहाँ कोउ न आवत रसबि लसत सुखमान ॥
निसा भोर कबहू नहिं जानत प्रेम मत्त अनुराग ।
ललितादिक सींचत सुख नैंनन जुरि सहचरि बड भाग ॥
यह निकुंज कौ वरनन करिकैं वेद रहे पचिहार ।
नेति-नेति कर कहऊ सहस विधि तऊ न पायौ पार ॥
दरसन दियौ कृपा करि मोहन बेग दियौ बरदान ।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्री मुख कही बखान ॥

नित्य-लीला का भूतल पर प्राकट्य वर्णन—

गोपी-पद-रज-महिमा विधि सों कही । × ×
ब्रज सुंदरि नहिं नारि, रिचा श्रुति की आहीं ।
मैं अरु सिव पुनि शेष, लक्ष्मी तिहिं सम नाहीं ॥
अद्भुत है तिनकी कृपा, कहो सु मैं अवगाहीं
याहि सुनै जो प्रीति करि, सो हरि पदहिं समाहीं ॥
प्रकृति पुरुष लै भई, जगत सब प्रकृति समाया ।
रह्यौ एक बैकुंठ लोक, जहाँ त्रिभुवन राया ॥
अक्षर, अच्युत, निराकार अविगति है जोई ।
आदि अंत नहीं जाहि, आदि अंतहिं प्रभु सोई ॥
श्रुतिन विनय करि कह्यौ, सब तुमहिं देवा ।
दूरि निरंतर तुमहिं, जानत निज भेवा ॥
या बिधि बहुरि अस्तुति करी, भई गिरा अकास ।
माँगो बर मन-भावतौ पूरौं सो तुव आस ॥
श्रुतिन कह्यौ कर जोरि सच्चिदानंद देव तुम ।
जो नारायन आदि रूप तुमरौ सु लख्यौ हम ॥
निरगुन रहत जु निज स्वरूप लख्यौ न ताकौ एव ।
मन-बानी तें अगम अगोचर, दिखरावहु सो देव ॥
वृंदावन निज धाम कृपा करि तहाँ दिखरायौ ।
सब दिन तहाँ बसंत कल्पवृक्षन सों छायौ ॥
कुंज सुभग रमनीक तहाँ बेलि सुमग रहे छाय ।
गिरि गोवर्धन धातु मय झरना झरत सुभाय ॥

कालिंदी जल अमृत प्रफुलित कमल सुहायौ ।
नगन जटित दोऊ कूल हंस सारस तहँ छायौ ॥
क्रीडत स्यामकिसोर तहाँ लिएँ गोपिका साथ ।
निरखि सुछबि सब थकि रहे तब बोले जदुनाथ ॥
जो मन इच्छा होइ कहो सो मोहि कृपा कर ।
पूरन करौं सुकाम दियौ मैं यह तुम कों वर ॥
श्रुतिन कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करें तुव संग ।
एवमस्तु निज मुख कह्यौ ..... ॥
कल्प सारस्वत ब्रह्मा जब सृष्टिहिं उपावै ।
अरु तिहिं लोकनि वर्ण-आश्रम धर्म चलावै ॥
बहुरि अधर्मी होय नृप, जग अधर्म बढ़ि जाय ।
तब विधि पृथ्वी सुर सकल विनय करत मोहि आय ॥
मथुरा मंडल भरतखंड निज धाम हमारौ ।
धारौं मैं तहाँ गोप भेष सो तिन्हें निहारौ ॥
तब तुम ह्वै कर गोपिका करो हो मोसों नेह ।
करों केलि तुमसों सदा सत्य बचन मम एह ॥
श्रुति सुनि कैं यह बचन, भागि अपुनौ बहु मान्यौ ।
चितवन लागे समय दिवस जो जात न जान्यौ ॥
भार भयौ जब भूमि पर तब हरि लियौ अवतार ।
वे रिचा ह्वै गोपिका हरि सों कियौ विहार ॥
'जो कोउ भरता भाव करि हरि-पद धावै ।'
नारि पुरुष कोउ होय सोई श्रुति-रिचा गति पावै ॥
'तिनकी पद-रज जो कोउ वृंदावन भुव माँही' ।
'परसै सोउ गोपिका-गति लहे संशय नाँही ॥
भृगु तातें मैं चरन रज गोपिन की चाहत ।
श्रुति-मत बारंबार हृदय अपने अवगाहत ॥
बंदन विधि सों यों कह्यौ दियौ विधि ऋषिन बताय ।
व्यास कह्यौ वामन पुरान में सोई 'सूर' कह्यौ गाय ॥

अवतार लीला और उसकी नित्यता का वर्णन—

सो श्रुति रूप होय ब्रज मंडल कीनों रास-विहार ।
नवल कुंज में अंस बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार ॥

पुनि ऋषि रूप राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय ।
चरन प्रसाद राधिका देवी उन हरि कंठ लगाय ।।
वृंदावन गोवर्धन कुँजन यमुना पुलिन सुदेस ।
'नित प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामास्याम सुवेस ।।'

२. अक्षरब्रह्म

अक्षरब्रह्म परब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप है, इसलिए यह परब्रह्म-पुरुषोत्तम से भिन्न नहीं माना गया है। यह "सच्चिदानंद" रूप भी कहलाता है और इसे पुरुषोत्तम का "चरणस्थान" रूप भी माना गया है। यह ओंकर ज्योति रूप होने से परब्रह्म का धाम रूप भी है, इसीलिए यह परब्रह्म के समान आदि, सनातन, अनुपम और अविगत है; फिर भी इसमें आनंद की न्यूनता रखी गयी है, अतः यह "गणितानंद" कहलाता है। आनंद की कुछ न्यूनता के कारण ही इस ब्रह्म की अपेक्षा होती है, तब यह अपने में से जीव-जगत् आदि का निर्माण करता है।

प्रथम यह काल, कर्म, स्वभाव और अक्षर रूप होता है तथा प्रकृत्ति, जीव और अनेक देवादि रूप होकर सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता रूप भी होता है†। प्रकृति, पुरुष, नारायण आदि सब इन्हीं के अंश रूप हैं। प्रकृति के राजस, तामस और सात्त्विक गुणों के अधिष्ठाता ब्रह्मा, शिव और विष्णु भी इसी ब्रह्म के अंशात्मक विविध रूप हैं।

अक्षर ब्रह्म के ही सत् धर्म से जगत्, चित् से जीव और आनंद से अंतर्यामी का आविर्भाव होता है।

सूरदास ने अक्षरब्रह्म विषयक वर्णन सारावली आदि में इस प्रकार किया है—

आदि, सनातन एक अनूपम, अविगत अलप अहार ।
ॐकार आदि वेद असुरहन, निर्गुण, सगुण अपार ।। १ ।।

---

† १. उत्पत्तिस्थितिनाशानां जगतः कर्तृ वै बृहत् । (अणुभाष्य)
२. व्यष्टि, समष्टिः पुरुषो जीव भेदस्त्रियो मतः ।।
अन्तर्यामयक्षरं कृष्णो ब्रह्मभेदास्तथा परे ।
स्वभाव कर्मकालाश्च रुद्रोब्रह्माहरिस्तथा ।। (निबंध),
३. अक्षरस्य स्वभाव कर्मकाला भेदा रुद्राद्याः । (निबंध)

अंतर्यामी रूप—

१. हरि स्वरूप सब घट पुनि जानो ।
ईख मांहि ज्यों रस है सानो ॥
त्योंही तन रस आतम सार ।
ऐसी विधि जानो संसार ॥

२. अपने आप करि प्रकट कियौ है हरि "पुरुष अवतार" ।
माया कियौ क्षोभ बहु विधि करि "काल पुरुष" के अंग ।
राजस तामस सात्विक बहु करि "प्रकृति-पुरुष" कौ संग ॥

ब्रह्म-रुद्र विष्णु विषयक वर्णन—

१. हरि सौ ठाकुर और न जन कों ।
तिहूँ लोक भृगु ह्वै आयौ तब कह्यौ या विधि लोगन कों ॥
ब्रह्मा 'राजस" कौ अधिकारी, सिव 'तामस' अधिकारी ।

२. विष्णु रुद्र विधि एकहिं विधि । इन्हें जान मत भिन्न' स्वरूप ॥

३. यज्ञ प्रभु प्रगट दिखायौ ।
विष्णु विधि रुद्र मम रूप ए तीनि हू,
दक्ष सों वचन यह कहि सुनायौ ॥

४. हरि-पद प्रीति करै सुख पावै ।
उत्पत्ति, पालन, प्रलय, हेतु हरि तीन रूप धरि आवै ।
विष्णु रुद्र ब्रह्मा हरि सब प्रेरक अंतरजामी सोई ॥

५. प्रभु तुम मर्म समुझि नहीं परयौ ।
जग सिरजत, पालत, संहारत पुनि क्यों बहुरि करयौ ॥

३. जगत्

जगत् परब्रह्म का भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म ही अपने सत् धर्म से २८ तत्व होकर इस जगत् स्वरूप हुए हैं†, इसलिए शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार यह समग्र जगत् ब्रह्मरूप है, अतः यह ब्रह्म के समान सत्य है। क्वचित् जहाँ कहीं पुराणों में जगत् को मिथ्या कहा गया है, वह केवल

† अष्टाविंशति तत्त्वानां स्वरूप यत्र वै हरिः । (निबंध)

वैराग्य सिद्धि अर्थ ही है—ऐसा आचार्यजी का मत है†। इस सिद्धांत के अनुसार जगत् और संसार दो भिन्न-भिन्न तथ्य हैं। जगत् २८ तत्व रूप है और संसार जीव की अविद्या से माना हुआ "मैं" और "मेरेपने" की कल्पना मात्र है, अतः आचार्यजी ने संसार को मिथ्या कहा है। ज्ञान द्वारा जीव की मुक्ति होने पर संसार की निवृत्ति होती है, किंतु जगत् ज्यों का त्यों स्थिर रहता ही है*। यही इस भेद को समझने के लिए प्रबल युक्ति है। इस बात को श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के अतिरिक्त किसी और ने भी नहीं समझा था। प्रलय के समय जगत् का तिरोभाव होता है, नाश नहीं। जिस प्रकार घट के भीतर का आकाश घट के टूट जाने से वृहद् आकाश में समा जाता है, उसी प्रकार जगत् प्रलय के समय में अपने मूल तत्व रूप से ब्रह्म में समा जाता है। इस प्रकार वस्तुतः जगत् का नाश न होने के कारण भी उसकी ब्रह्म रूपता सिद्ध होती है।

सूरदास के पदों में भी जगत् विषयक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है—

२८ तत्व की उत्पत्ति—

(१) खेलत खेलत चित्त में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपुन आपु करि प्रगट कियौ है हरि "पुरुष अवतार"॥
कीने तत्व प्रगट तेहि छन सबै "अष्ट अरु बीस"।

(२) "आदि निरंजन निराकार" कोउ हतौ न दूसर।
रचौ सृष्टि विस्तार "भई इच्छा" इह औसर॥
निर्गुण तत्व तें महतत्व महतत्व तें अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंची तातें कियौ विस्तार॥
शब्दादिक तें पंच भूत सुंदर प्रगटाये।
पुनि सब कों रचि अंड आप में आप समाये॥
तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार॥

(३) कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै।
"कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है हरि में लय ह्वै जावै"॥

---

† मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते। (निबंध)
* संसारस्यत्रयौ मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचित। (निबंध)

जगत का सत्यत्व—

(१) जग प्रपंच हरि रूप लहै जब दोष भाव मिटि जाही ।
"सूरदास" तब कृष्ण रूप ह्वै हरि हिय में रहे आही ॥
(२) ब्राह्मण मुख क्षत्रिय भुज कहिये वैश्य जंघनहि जान ।
शूद्र चरण यह विधि 'जग हरिमय' यही ज्ञान दृढ मान ॥
दोष दृष्टि यहि विधि नहीं उपजै 'आनंदमय' दरसाय ।
'सूरदास' तब हरि हिय आवै प्रेम मगन गुन गाय ॥

वैराग्यार्थ—

हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है 'तउ माया कृत जानि† ।'
तातें मन निकारि सब ठाँ तें 'एक कृष्ण मन आनि ॥'

संसार की निःसारता—

(१) अरे मन मूरख जनम गँवायौ ।
'यह ससार सुआ सेंमर ज्यों' सुंदर देखि लुभ्यायौ ॥
चाखन लाग्यौ रूई उडि गई 'हाथ कछू नहीं आयौ ।'
(२) कहाँ तू कहाँ यह देह बिचार ।
... .''स्वप्न तुल्य यह संसार'' ॥
मैं मेरी यह हरि की माया । सकल जीव जग यही नचाया ॥

निम्न पंक्तियों से सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है, वह सर्वथा भ्रमात्मक है—

जो हरि करै सो होइ कर्ता नाम हरि ।
ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि कीरे ॥

प्रतिबिंबवाद में, माया में ब्रह्म का जब प्रतिबिंब पड़ता है, तब माया से जगत् की उत्पत्ति मानी गयी है । इससे माया का कर्तृत्व सिद्ध होता है । किंतु यहाँ तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "जो हरि करै सो होई कर्ता नाम हरि" इससे हरि को ही कर्ता माना गया है ।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में पहले कहा जा चुका है कि परब्रह्म अपने आध्यात्मिक ज्योति स्वरूप अक्षरब्रह्म से सत् धर्म से जगत, चित् धर्म से

† प्रपंचो भगवत्कार्यं स्वद्रूपोमायकाऽभवत् ।(निबंध)

जीव और आनंद से अंतर्यामी रूप होते हैं। इसी बात को 'ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि।"–इस प्रकार कहा है। यहाँ दर्पण के स्थान पर ज्योति रूप अक्षर है और उसमें स्थिर ब्रह्म के साकार रूप से इस सृष्टि की रचना की गयी है इस साकारत्व के सूचनार्थ ही प्रतिबिंब शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने साकारत्व के प्रतिबिंब रूप में इस सृष्टि की रचना की है, अन्यथा प्रतिबिंबवाद में माया को मलीन कहा गया है, इसलिए स्वच्छता के अभाव में उसमें न तो प्रतिबिंब ही पड़ सकता है, न उससे साकार सृष्टि की रचना हो सकती है।

इस पद की आगे की पंक्तियाँ उक्त बात को और भी स्पष्ट कर देती हैं—

'आदि निरंजन निराकार' कोउ हुतो न दूसर।
रचों सृष्टि विस्तार 'भई इच्छा' इह औसर॥
'निर्गुण तत्व ते महतत्व महतत्व तें अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंचो तातें कियौ विस्तार॥
शब्दादिक तें पंचभूत 'सुंदर" प्रगटाये।
पुनि सब कों रवि अंड 'आप में आप समाये'॥
तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार'॥

इसमें "आदि निरंजन निराकार" शब्द इस ज्योति रूप अक्षर धाम के सूचक हैं और 'रचौ सृष्टि विस्तार भई इच्छा इह औसर" वाला कथन उस धाम में स्थित साकार ब्रह्म का निरूपण करता है। "महतत्व" आदि की जिससे उत्पत्ति कही गयी है, वह "निर्गुणतत्व" ज्योति रूप अक्षर ही है। उससे तीन लोक की रचना कर उनको अपने देह में रखा। इस कथन से पुनः ब्रह्म के साकारत्व का सूचन हुआ है। 'आदि पुरुष सोई जौं प्रभु अगम अपार।' इस कथन में "आदि पुरुष" " "अक्षर ब्रह्म" की "अगम अपार" ऐसे पुरुषोत्तम परब्रह्म की अभेदता बतलायी गयी है। यह सिद्धांत शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का ही है, जिसको हम पहले लिख चुके हैं।

इस प्रकार यह समग्र पद प्रतिबिंबवाद से असम्बद्ध है। सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है, वह निःसंदेह भ्रमात्मक है।

४. जीव

जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म के संदेश से जड़ और आनंदांश से अंतर्यामी हुए, उसी प्रकार उसके चिदंश जीवों की उत्पत्ति हुई है†। अग्नि के विस्फुलिंगों की तरह ब्रह्म में से जीवों की उत्पत्ति होने से ये ब्रह्म के अंश रूप कहे गये हैं*, अतः विस्फुलिंगों में जिस प्रकार अग्नि की स्थिति रहती है, इसी प्रकार इस शुद्ध अवस्था में जीवों में भी भगवदैश्वर्यादि आनंदात्मक धर्मों की स्थिति रहती है, इसलिए इस अवस्था में जीव ब्रह्म रूप होता है।

ईश्वरेच्छा से जब जीवों को माया का संबंध होता है, तब उनमें से वह ऐश्वर्यादि भगवद् धर्म तिरोहित हो जाते हैं। तब वे जीव दीन, पराधीन एवं दुःखी होते हैं, और माया में बद्ध होकर संसारी बन जाते हैं‡।

पुनः पंचपर्वा विद्या और भक्ति आदि से जीव जब अविद्या से निर्मुक्त हो जाता है, तब वह भगवत्कृपा से क्रमशः अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह जीव की जीवन मुक्त अवस्था होती है।

इस प्रकार जीव की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं। प्रथम अवस्था शुद्ध, द्वितीय संसारी और तृतीय मुक्त अवस्था है। "योयद्ंश सतांभजेत्" श्रुति के अनुसार इन तीनों अवस्थाओं में जीव के लिए अपने अंशी परमात्मा का भजन अवश्य कर्त्तव्य माना गया है।

इन तीनों अवस्था वाले जीवों का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पदों में उपलब्ध होता है—

---

† (१) विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।
आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः। (निबंध)
(२) तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः।
सृष्टयादौ निर्गताः सर्वे निराकारस्तदिच्छया। (निबंध)

* ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता)

‡ अस्य जीवस्यैश्वर्यादि तिरोहितम्।.....तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्मतिरोभावः। ऐश्वर्यतिरोभावाद्दीनत्वं, पराधीनत्व, वीर्यतिरोभावात् सर्वदुःखसहनं.....आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो, येन जीवभावः अतएव कामयः। (अणुभाष्य २ अ०)

शुद्ध अवस्था वाले जीवों का वर्णन—

जहाँ वृंदाबन आदि अजर जहँ कुंज-लता विस्तार ।
सारस-हंस-चकोर-मोर खग कूजत कोकिल कीर ॥ ××
गोपिन मंडल मध्य बिराजत निस-दिन करत बिहार ।
'सहस रूप बहुरूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय' ॥

संसारी जीवों का वर्णन—

(१) जब लौं सत्य स्वरूप न सूझत ।
तब लौं मृगमद नाभि बिसारै फिरत सकल बन बूझत ॥
अपुनौ ही मुख मलिन मंदमति देखत दर्पन माँहि ।
ता कालिमा मेटिवे कारन पचत पखारत छाँहि ॥

(२) अपुनपौ आपुनहिं बिसरयौ ॥
जैसे स्वान काँच मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूसि मरयौ ।
ज्यों सपने में रंक भूप भयौ तस्कर अरि पकरयौ ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप परयौ ।
जैसे गज लखि फटिक सिला में दसननि आय अरयौ ॥
मरकट मूठि छाँडि नहीं दीनीं घर-घर द्वार फिरयौ ।
"सूरदास" नलिनी कौ सूआ कहि कौने जकरयौ ॥

इस पद को आधार बनाकर कुछ लोग सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का प्रभाव मानते हैं, किंतु पूर्व सिद्धांत के अध्ययन से उन लोगों की धारणा गलत सिद्ध होती है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं शुद्धाद्वैत सिद्धांत में जीव को उसकी शुद्ध अवस्था में ब्रह्म रूप माना है, किंतु जब वह माया में ग्रसित होता है, तब वह अपने सत्य स्वरूप को भूल कर भ्रमित हो जाता है, और जिस प्रकार स्वान अपने ही प्रतिबिंब को सच्चा स्वान समझ कर भूँसता है, उसी प्रकार जीव भी अपनी कल्पना द्वारा "मैं" और "मेरेपने" के मिथ्या ज्ञान से अपने क्षण-भंगुर शरीर को ही आत्मा समझ कर दुखी होता है। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान में जीव स्वयं फँस गया है। इसका उल्लेख इसी पद की अंतिम पंक्तियों में "मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनी" तथा "सूरदास नलिनी कौ सूआ कहि कौने जकरयौ" इस प्रकार हुआ है। इससे यह पद शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुकूल ही स्पष्ट होता है। शुद्धाद्वैत सिद्धांत में जीव को नित्य माना गया है। इसका उल्लेख सूरदास ने निम्न लिखित पद में किया है—

तनु स्थूल और दूबर होइ। परम आत्म कों एक नहिं दोइ॥
तनु मिथ्या छन-भंगुर जानो। चेतन जीव सदा थिर मानो।
जीवकों सुख दुख तनु संग होई। जोग बिजोग तन के संग सोई॥
देह अभिमानी जीवहिं जा। ज्ञानी जीव अलिप्त करि मानें॥

मुक्त अवस्थावाले जीव का वर्णन—

(१) ज्ञानी सदा एक रस जानैं। तन के भेद भेद नहिं मानैं॥
आत्मा सदा अजन्म अविनासी। ताकौ देह मोह बड़ फाँसी॥
तातें ज्ञानी मोह न करै। तनु कुटुंब सों हित परिहरै॥
जब लग भजै न चरन मुरारी। तब लग होइ न भव-जल पारी॥

(२) अपुनपौ आपुन ही में पायौ।
सब्द ही सब्द भयौ उजियारौ सतगुरु भेद बतायौ॥
ज्यों कुरंग नाभी कस्तूरी ढूंढत फिरत भुलायौ।
फिर चेत्यौ जब चेतन ह्वै करि आपुन ही तनु छायौ॥
राजकुमार कंठमनि भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सतजन तब तनु कौ ताप नसायौ॥
सपने मोहि नारि कों भ्रम भयौ बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ ज्यों कौ त्यों ही है, ना कहुँ गयौ न आयौ॥
'सूरदास' समुझै की यह गति मनहिं मन मुसिकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्यों गूंगो गुड़ खायौ॥

५. आत्ममाया

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार आत्ममाया परब्रह्म की "सर्वभवन समर्थ" रूपा शक्ति है। यह परब्रह्म से सदा वेष्टित रहती है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहक शक्ति, सूर्य और उसकी प्रकाश शक्ति भिन्न नहीं है, इसी प्रकार परब्रह्म में ही इस माया की स्थिति निरंतर रहती है। आत्ममाया परब्रह्म के आधीन है, परब्रह्म इसके आधीन नहीं। इसलिए यह परब्रह्म के सत्य स्वरूप को कभी आच्छादित नहीं कर सकती है। श्रीमद्बल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी में इसके दो रूप बतलाये हैं—कि एक "व्यामोहिका" और दूसरा "करण"। व्यामोहिका भगवान के चरण की दासी है†, इसलिए वह

† इयं (माया) चरणदासी।··· ···इयं मोहिका। (सु० २-७-४७)

भगवान के अनुचर के पास जाने में लज्जित होती है* । दूसरी माया को "करण" रूप से स्वीकार कर भगवान इस समग्र जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं† ।

माया संबंधी उपर्युक्त वर्णन सूरदास के पदों में इस प्रकार मिलता है—

व्यामोहिका माया—

(१) सबतें परे कृष्ण भगवान । × ×
सो माया है "हरि की दासी" निस दिन आज्ञाकारी ।
काल कर्म हम सिव अरु विष्णुहिं सब के कारन हरि धारी ॥
"पालन सृजन प्रलय के कर्ता माया के गुन जानो ।"
मोमें रजगुन, सिव में तमगुन, विष्णुहिं सतगुन मानो ॥

(२) मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया ।
मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि विसराया ॥

(३) हरि बिनु कोऊ काम न आयौ ।
यह माया झूंठी प्रपंच लगि रतन सौ जनम गँवायौ ॥

" करण रूप " योगमाया—

(१) हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है तऊ 'माया कृत' जानि ।

सूर के पदों में मिथ्यावाद-मायावाद का इस प्रकार खंडन मिलता है—

(१) रूप देखि जस जानि जगत 'बिनु निरवलंब कहो किन भावै ?'
(२) प्रगट ब्रह्म 'दूरयौ नहीं' तू देख नैन पसार ।
(३) छांड़ि स्याम अमीफल अमृत 'माया विष फल' पावै ।

---

* ....येवाऽभिमुखश्चकारादनुचराश्चज्ञानिनो भक्ताश्चतत्र सर्वत्रैव विलज्ज माना । (सु० २–७–४७)

† माया सर्वभवन सामर्थ्यम् , शक्तिर्वा काचित, अप्रयोजिका, तामपि करणत्वेन स्वीकृत्य इदं सर्वमेव जगदुत्पादयति पालयति नाशयति च । (सु० १०–५४–१५)

२—सूरदास और पुष्टिमार्गीय भक्ति

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के निर्माण के अनंतर श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने सोचा कि मस्तिष्क प्रधान मनुष्य शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के विशुद्ध ज्ञान से शुद्ध होकर इस संसार से मुक्त हो जावेंगे, किंतु केवल हृदय प्रधान भावुक व्यक्ति किस प्रकार इस संसार से मुक्त हो सकेंगे ! इस विचार के फल स्वरूप उन्होंने प्रेम को अपनाया, क्यों कि प्रेम ही एक ऐसा अनुपम तत्त्व है, जिससे केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी प्रभावित रहते हैं। चैतन्य स्वरूप प्रत्येक जीव का हृदय इस प्रेम की ओर सदा झुका हुआ रहता है। शास्त्रों में भी प्रेम के अगणित महिमा बतलायी गयी है। यहाँ तक कि किसी भी साधन से सर्वदा अप्राप्य ऐसे परम-तत्व रूप श्रीकृष्ण भी प्रेम से सुलभ हो जाते हैं। प्रेम से ही भगवान् कृष्ण कृपा युक्त होकर गोपीजनों के आधीन हुए हैं, इस लिए प्रेममय श्रीकृष्ण की साक्षात् कृपा प्राप्त करने के लिए आचार्य जी ने इस प्रेम को ही ही अपनाया, ताकि जीव सरलता पूर्वक कृष्णासक्त होकर इस संसार से मुक्त हो जाँय।

आचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम को ही शुद्ध पुष्टि कहा है†, अतएव पुष्टि भक्ति में प्रेम को अभिव्यक्त किया गया है। विशुद्ध प्रेम के दृष्टांत गोपिजन हैं, इस लिए उन्हीं को पुष्टि के गुरु मान कर आचार्य जी ने उनके प्रेमात्मक साधनों को ही पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है* ।

देवादि विषयक रति-प्रेम को भाव कहते हैं‡, अतः विशुद्ध प्रेम भाव स्वरूप होता है। आचार्य श्री के मत से इस भाव को सिद्ध करने का एक मात्र साधन उसकी भावना-सस्नेह क्रियात्मक चिंतन हैं‡। इसी से भाव की प्राप्ति होती है। अन्य किसी भी साधन से उस भाव-प्रेम-की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है। इसीलिए आचार्य जी ने भाव-भाविक परमदेव श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपीजनों की प्रेम-भावना वाली सेवा को प्रगट किया है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

---

† पुष्ट्या विमिश्रा. सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारता।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाति दुर्लभाः। (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)

* ·· ···गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं चतत्। (संन्यास निर्णय)

‡ रतिर्देवाविषया भाव इत्यभिधीयते।

‡ भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते। (संन्यास निर्णय)

श्री गोपीजनों के विभेद के साथ आचार्य जी ने उनकी प्रेमात्मक भक्ति साधन रूप भावनाओं का इस प्रकार निरूपण किया है—

"गोपांगना सु पुष्टिः। गोपीषु मर्यादा। व्रजांगना सु प्रवाहः। ... गोपांगनास्तु भुक्तमुक्ताः भुक्तं गृहै सुखं मुक्तं याभिस्ताः किं वा नाज्ञातो लोकवेदभययुक्तो याभिस्ता भुक्ता कुटुंब मायापत्यवैभव गेहाधिपतिधनवपुः पत्यादिक सकल मर्यादार्था मुक्ता याभिस्ता सर्वाम् धर्मान्निकृत्यकेवलं श्रीपुरुषोत्तममेव भजंति। तस्मात्तासां पुष्टित्वम्।

अथ गोपीनां व्रजकुमारिणां गोपीजनवल्लभभजनेतर भजनं जातम्। किंचतद्भजनोपायेऽपि कात्यायनीभजनं कृतम्।..... अतएव तासां मर्यादा भक्तिः।

तथा व्रजांगनानां मातृभावेनैव संग्रहः। तासाम् ईश्वरे पुत्र भावो वर्तते। तस्मात्तासां प्रवाहत्वम्। इति त्रिविधा गोप्यः।

(भगवत्पीठिका)

इसका तात्पर्य यह है कि व्रज में तीन प्रकार की गोपीजन हैं—एक "गोपांगना", दूसरी "गोपी" अर्थात् 'कुमारिकाएँ" तीसरी 'व्रजांगनाएँ"।

इन तीनों में 'गोपांगनाओं' ने लोक वेद भय से मुक्त होकर और सर्व धर्मों के त्याग पूर्वक शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही 'साक्षात्' भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिपुष्टि" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में परकीय भावना वाले उत्कृष्ट प्रेम व्यसन की स्थिति रहती है।

दूसरी 'गोपी' अथवा 'कुमारिकाओं' ने कात्यायनी व्रत आदि से पुरुषोत्तम का 'परोक्ष' भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिमर्यादा" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह-स्वकीय स्त्री भावना वाली आसक्ति की स्थिति रहती है।

तीसरी 'व्रजांगनाओं' ने पुरुषोत्तम का लोकवत् बाल भाव से भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिप्रवाह" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है।

आचार्य जी ने इन तीन भावनाओं की पुष्टि भक्ति का मुख्य साधन माना है। इसका विवेचन पुष्टिमार्गीय सेवा प्रकरण में आगे किया जायगा।

इन त्रिविध भावना-साधनों से जिस कलात्मक विशुद्ध प्रेम रूप शुद्ध पुष्टि की प्राप्ति होती है, उसको श्री बल्लभाचार्य जी ने "स्वाधीना" अथवा "स्वतंत्र भक्ति" कहा है। आचार्य जी का मत है कि जब तक कृष्ण की अधीनता रहती है, तब तक 'मर्यादा' है और स्वाधीन अवस्था को 'पुष्टि' कहते हैं†।

जिस प्रकार एक सिद्ध योगी योग बल से अपने में से अनेक प्रकार के ऐश्वर्य-वैभवों को प्रकट कर उनके आनंद का स्व-इच्छानुसार उपभोग करता है और पुनः उस ऐश्वर्य को हृदय में स्थापित कर आंतर सुख का भी अनुभव करता है, उसी प्रकार स्वाधीना स्वतंत्र भाव सम्पन्न भक्त भी भाव बल से अपने में से अनेक प्रकार के लीलात्मक कृष्ण रूपों को प्रकट कर उनके विविध आनंद का अनेक रूप होकर उपभोग करता है और पुनः उनको अपने में स्थित कर आंतर प्रकार से भी उनके साथ विलास करता है। बाह्य स्थिति के समय वह भक्त पूर्ण-धर्मी-संयोग सुख का आनंद लेता है और आंतर स्थिति के समय वह पूर्ण-धर्मी-विप्रयोगात्मक सुख का आनंद भोगता है। इस प्रकार के प्रेम भक्ति-योग से उस भक्त का भौतिक देह अप्राकृत हो जाता है। उसके नेत्र में, वाणी में, हृदय में, मन में, तन में और सभी स्थानों में परमानंद स्वरूप लीलामय कृष्ण की स्थिति रहती है, इसलिए वह भाव रूप हो जाता है और भाव में ही निरंतर विलास करता है। "सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इस श्रुत्योक्त फल का भोग 'स्वाधीना' भक्त ही पूर्ण रूप से कर सकता है। इसी को आचार्य जी ने शुद्ध पुष्टि अथवा विशुद्ध प्रेम की तन्मय अवस्था माना है।

यद्यपि पूर्वोक्त प्रेम की तीन भावना अवस्थाओं से इस सिद्ध भाव अवस्था को उत्तम माना गया है और इसी को परम फल भी कहा गया है, फिर भी उक्त तीन अवस्थाएँ भी अपने-अपने समय में फल रूप ही मानी गयी हैं। क्यों कि ये तीनों अवस्थाएँ भी पुष्टि के अवांतर निरोध-मोक्ष रूप ही हैं। इनमें भी जो सुख मिलता है, वह चतुर्विध मुक्ति आदि में भी नहीं है। पुष्टि भक्ति की यही विलक्षणता और पूर्णता है।

---

† कृष्णाधीना तु मार्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।

सूरदास के पदों में उक्त चारों प्रकार की भावनाएँ और उनके निरोध सुख का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

पुष्टि प्रवाह की स्नेह रूप बाल भावना और उसका निरोध सुख—

बनी सहज यह लूट हरि केलि गोपिन के सपुने यह कृपा कमला न पावै ।
निगम निर्धार त्रिपुरारि हू बिचारि रह्यौ पच रह्यौ सेष नहिं पार पावै ॥
किन्नरी बहुर अरु बहुर गंधर्वनी पनगनी चितवन नहीं मांझ पावै ।
देति करतार वे 'लाल गोपाल सों' पकरि ब्रजबाल कपि ज्यों नचावै ॥
कोऊ कहै 'ललन' पकराव मोहि पाँवरी कोऊ कहै 'लाल' बलि लाओ पीढ़ी ।
कोऊ कहै 'ललन' गहाव मोहि सोहनी कोऊ कहै 'लाल' चढ़ि जाऊँ सीढ़ी ॥
कोऊ कहै 'ललन' देखो मोर कैसे नँचै कोऊ कहै भ्रमर कैसे गुंजारै ।
कोऊ कहै पौरि लगि दौरि आवहु 'लाल' रीझि मोतिन के हार वारै ॥
जो कछु कहै ब्रजबधू सोई सोई करत, तोतरे बन बोलन सुहावै ।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठे तब चूम मुख 'जननी' उरसों लगावै ॥
बैन कहि लौनी मुख चाही रहत बदन हँसि स्वभुज बीच लै लै कलोलै ।
'धाम के काम ब्रजबाम सब भूलि रही, कान्ह बलराम के संग डोलै ॥
'सूर' गिरिधरन मधु चरित्र मधुपान कै और अमृत कछू आन लागै ।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै 'मुक्ति हू लौन सी खारी लागै' ॥

इस पद में बाल-भावना और उसके निरोध सुख का वर्णन किया गया है। यह मातृ भाव वाली ब्रजांगनाओं की पुष्टि प्रवाह अवस्था है। इसके निरोध सुख के आगे मुक्ति भी नमक जैसी खारी लगती है। यही पुष्टि भक्ति का उत्कर्ष है।

पुष्टि मर्यादा की आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति और उसका निरोध सुख—

भजि सखी भाव-भाविक देव ।
कोटि साधन करो कोऊ, तौऊ न मानै सेव ॥
धूम्रकेतु कुमार माँग्यौ, कौन मारग प्रीति ।
'पुरुष तें त्रिय भाव उपज्यौ' सबै उलटी रीति ॥
बसन-भूषन पलटि पहरैं भाव सों संजोय ।
उलटि मुद्रा दई अंकन बरन सूधे होय ॥
वेद विधि कौ नैम नहीं जहाँ प्रेम की पहचान ।
ब्रजबधू बस किये मोहन 'सूर' चतुर सुजान ॥

प्रारंभ में अग्निकुमारों ने माहात्म्य ज्ञान से श्री रामचंद्र जी का भजन किया था। इससे उनको श्री रामचंद्र जी के कंदर्प रूप के दर्शन हुए थे, जिसके फल स्वरूप उनमें पुरुष होते हुए भी स्त्री भाव उत्पन्न हुआ था। इसी लिए श्री रामचंद्र जी के वर के अनुसार वे सब कृष्णावतार में गोप-कुमारिकाएँ रूप से अवतरित हुए और व्रत-चर्या आदि से "श्री कृष्ण हमारे पति हों" यह वर प्राप्त किया। इस प्रकार की स्वकीय स्त्री भावना का सुख उनको रास-लीला द्वारा प्राप्त हुआ था और उस रसेश श्रीकृष्ण को अपने वश में कर वे निरुद्ध हुई थीं। यह पुष्टिमर्यादा अवस्था का निरोध-सुख है।

पुष्टिपुष्टि के व्यसनरूप परकीय भावना और उसका निरोध सुख—

(१) द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ।
'बिनु देख कल परत नहीं छिन ऐसे पर कीने यह टेऊ'॥
'बारंबार छबि देख्यौ चाहत' साथी निमिष मिले हैं येऊ॥

(२) पलक ओट नहीं होत कन्हाई।
'घर गुरुजन बहुतें विधि त्रासत' लाज करावत लाज न आई॥
नैंन जहाँ दरसन हरि अटके स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और कछू नहीं भाषत स्याम-स्याम रट यहै लगाई॥
चित चंचल संगहिं संग डोलत 'लोक-लाज मरजाद मिटाई'।
मन हरि लियौ 'सूर' प्रभु तब ही, तन बपुरे की कहा बसाई॥

(३) नंद के द्वार नंद गेह पूछति।
इतहिं तें जाति उतहिं तें फिरति निकट ह्वै जाति नहीं नैक सूझति॥
भई 'बेहाल' ब्रजबाल नंदलाल हित अरपित तन-मन सबै तिन्हें दीनों।
'लोक लज्जातजि' लाज देखति भजि स्याम कों भजि कछू डर न कीनों॥
भूलि गयौ नाम दधि कों कहति स्याम योनांहि सूधि धाम कछू है कि नाहीं॥
'सूर' प्रभु कों मिली मेटि भली अनभली चुन हरदी रली देह छाहीं॥

(४) कहति नंद-घर मोहि बतावहु।
द्वारे मांझ बात यह पूछति बार-बार कहि कहा दिखावहु॥
यही गाँव कैधौं और कहूँ जहाँ महरि कौ गेह।
बहुत दूरि तें मैं आई हौं कहि जस काहे न लेहु॥
अति ही संभ्रम भई ग्वारिनी द्वारे ही पर ठाढ़ी।
'सूरदास' स्वामी सों अटकी 'प्रीति प्रगटत अति बाढ़ी'॥

परकीय भावना का निरोध सुख-"मान"—

रूप-रसपुंज बरनों कहा चातुरी† ।
मान मेरौ कह्यौ चतुर चंद्रावली निरखि मुख कमल उडुराज संकातरी ।।
तिलक मृगमद भाल, द्विरद की सी चाल, देखि मोहे लाल मंद मुसकातरी ।
'सूर' नगधर केलि अंस भुज मेलि मुग्ध पद टेलि दै मदन-सिर लात री ।।

इसमें रसेश श्रीकृष्ण की स्वाधीनता के परम सुख का संक्षिप्त में वर्णन हुआ है। यह परकीय भावना वाली "पुष्टि-पुष्टि" अवस्था रूप है।

सूरदास और माधुर्य-भक्ति—सूरदास के इस प्रकार के माधुर्य भक्ति के पद को देख कर कुछ विद्वान उन पर गौड़ीय, हरिदासी एवं हरिवंशी संप्रदायों की भक्ति का भी प्रभाव होना मानते हैं, किंतु वास्तव में पुष्टि संप्रदाय की पूर्वोक्त भक्ति-भावना का अध्ययन करने से उक्त मान्यता भ्रमात्मक सिद्ध होती है। स्वय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के वचनों के आधार पर हम गत पृष्ठों में देख चुके हैं कि पुष्टि भक्ति मे बाल, दाम्पत्य और परकीय कांता भाव की तीनों भावनाओं का भजन ग्राह्य है। श्री बल्लभाचार्य जी ने मधुराष्टक, परिवृढाष्टक और सुबोधिनी मे माधुर्य-भक्ति का जो प्रवाह बहाया है, उससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है। आचार्य जी अपने "परिवृढाष्टक" ग्रंथ में कहते हैं—

कलिंदोद्भूतायास्तटमनुचरंतीं पशुपजां ।
रहस्येकां दृष्ट्वा नव सुभगवक्षोजयुगलाम् ।।
दृढं नीवी ग्रंथिंश्लथयति मृगाक्ष्या हठतरं ।
रतिं प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।

इसमें श्रीराधा के साथ रहस्य लीला करने वाले परब्रह्म में मेरी सतत रति प्रादुर्भूत हो, इस प्रकार की आचार्य जी कामना करते हैं। इसी

† इसी की छाया मे अष्टछाप के कृष्णदास का भी एक पद मिलता है—
चतुर चारु चंद्रावलि मुख चकोरै ।
अस्तु में चरनरति ब्रज-जुवति भूपनौ कमल लोचन नंद नृप किसोरै ।।
मान मेरौ कह्यौ अति सील रसरीति क्यों करावति सखी बहु निहोरै ।
मिलै किन धाय अब कुँवर चूडारत्न रसिकवर भूपाल चित्त चोरै ।।
नवरंग कुंज महँ तब नाम हित नाथ कुणित कल मुरलिका ठाट मोरै ।
सुनि "कृष्णदास" सुभलग्न वह घरी, लाल गिरिधरन सौ हाथ जोरै ।।

प्रकार अपने इष्ट देव के स्वरूप का वर्णन करते हुए आपने "मधुराष्टक" में कहा है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥

इसमें आचार्य जी अपने इष्ट को "मधुराधिपति" कह कर उनके समग्र अंग, चेष्टा आदि को भी मधुर बतलाते हैं । इससे भी उनकी मधुर भक्ति का ज्ञान हो सकता है।

श्री बल्लभाचार्य जी भक्तिमार्गीय सन्यास का पर्यवसान रासलीला में ही मानते हैं, इसलिए आप पुष्टि-पुष्टि स्वरूप श्रुतिरूपा गोपांगनाओं को ही इसकी अधिकारी कहते हैं । "गायत्री भाष्य" में आचार्यजी ने लिखा है—

भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टिपुष्टिश्रुतिरूपाणां रासमंडल मंडनानाम् । स्वयमेवोक्तं "संत्यज्य सर्व विषयांस्तव पादमूलं प्राप्ता इत्यादि चतुर्थाध्याये ताः प्रति भगवता ॥

सुबोधिनी में तो आचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति के स्वरूप ज्ञान के लिए समग्र रतिशास्त्र को ही प्रकट कर दिया है । जैसा कि—

(१) "अनेन विपरीत रस उच्यते, बंध विशेषो वा तिर्यग्भेदः ।" (१०-३१-७)

(२) "अनेन सर्व एव सुरतबन्धा आक्षिप्ताः ।" (१०-३१-१३)

(३) "अग्रे मर्यादा भंगो रसपोषाय । तदुक्तं "शास्त्राणां विषय-स्तावद् यावदमन्द रसानराः । रतिचक्रे प्रवृत्तेतु नैव शास्त्रं न च क्रम" । (१०-३३-२६)

उपर्युक्त वचनों के अध्ययन से ज्ञात हो सकता है कि श्री वल्लभाचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख होने पर भी हिंदी साहित्य के प्रायः सभी विद्वानों को यह भ्रम हो गया है कि श्री बल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य भक्ति का ही उपदेश किया था और पुष्टि संप्रदाय में माधुर्य-भक्ति का प्रवेश श्री बल्लभाचार्य जी के अनंतर उनके पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी द्वारा चैतन्य संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुकरण पर हुआ । हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानों ने बल्लभ संप्रदाय

के सिद्धांतों का गंभीर अध्ययन नहीं किया है, इसलिए उनके उक्त मत पर हमको आश्चर्य नहीं होता है। हमको आश्चर्य तो तब होता है, जब हम पुष्टि संप्रदाय का गंभीर अध्ययन करने वाले डा० दीनदयाल जी गुप्त को भी इसी प्रकार का भ्रमात्मक मत प्रकट करते हुए देखते हैं ! उन्होंने आधुनिक विद्वानों के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखा है—

"मधुर भाव की भक्ति का समावेश लेखक के विचार से आचार्य जी ने भागवत के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया† ।"

पुष्टि संप्रदाय के इतिहास और श्री आचार्य जी रचित ग्रंथों के अध्ययन से उपर्युक्त मत नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होता है। पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि अष्टछाप के कुंभनदास के अतिरिक्त पद्मनाभदास और श्रीभट्ट* आदि आचार्य जी के सेवकों ने संप्रदाय के आरंभिक काल में ही केवल मधुर भाव युक्त निकुंज लीला के पदों का गायन किया था, यहाँ तक कि वात्सल्य भाव का तो शायद उन्होंने एक भी पद नहीं गाया। कुंभनदास आदि का काव्य-काल श्री चैतन्य महाप्रभु के गृह-त्याग (सं० १५६६) से पूर्व का निश्चित है। इसी प्रकार श्री बल्लभाचार्य जी कृत माधुर्य-भक्ति पूर्ण "मधुराष्टक" और "परिवृढाष्टक" की रचना भी श्री चैतन्य के गृह-त्याग से पूर्व सं० १५५० के लगभग हो चुकी थी। चैतन्य संप्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि उक्त संप्रदाय का साहित्य महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के तिरोधान (१५८७) के अनंतर लिखा गया है। ऐसी दशा में चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति का प्रभाव पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-भावना पर बतलाना असंगत कल्पना है।

इसके अतिरिक्त चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति से बल्लभ संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति का मौलिक मतभेद है। माधुर्य-भक्ति की मुख्य पात्र श्रीराधा हैं, जिनको बल्लभ संप्रदाय में स्वकीया माना गया है, किंतु चैतन्य संप्रदाय इनको परकीया मानता है। पुष्टि संप्रदाय के मतानुसार परकीय भाव की पात्र श्रुतिरूपा गोपांगना—श्री चंद्रावली हैं।

---

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ ५२७

* यह निंबार्क संप्रदायी श्रीभट्ट से पृथक् कवि हैं।

श्री राधा-सहचरी का उल्लेख श्री बल्लभाचार्य जी ने अपने ग्रंथ त्रिविध नामावली में भी किया है—"राधां सहचराय नमः।" इसी राधा में कृष्णावतार के रास के समय ब्रह्म की मुख्य 'राधस्' शक्ति (लक्ष्मी) का प्रवेश हुआ था, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे विशेष रूप से रमण किया था। इस बात का ज्ञान सुबोधिनी (१०-३०-१७) तथा "राधाविशेष संभोग प्राप्त दोष निवारकः" इस प्रकार "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के अनुसंधान करने पर होता है।

इन सब कथनों से यह स्पष्ट है कि माधुर्य-भक्ति और राधा शब्द के प्रयोग आदि का प्रचार पुष्टि मार्ग में श्रीमद्वल्लभाचार्य जी द्वारा ही श्री चैतन्य के गृह-त्याग से भी पूर्व हुआ है। इसकी वहिः पुष्टि आचार्य जी के सेवक "श्रीभट" के निम्न पद से भी होती है—

श्रीबल्लभ प्रगटत सब प्रगटी लीला स्यामघन की।
रसिकन उर अति उल्लास उद्भव भयौ,
रास विलास प्रकास प्रेम पंज कुंज संपति वृंदावन की॥
आनंद द्रुम उरझि रह्यौ सुरझाई लई कहि,
फेरि उरझाइ दई बातें ब्रज जन की॥
और दिखाई ठौर ठौर दान मान नित प्रसंग,
त्रिभंग तीनों लोक माँझ प्रेम पन की॥
कटि तें लै ग्रीव-स्याम गोपीजन भाव भूषन,
सीस मुकुट जटित आभा नील पीतन की॥
विरह बसन लसत देह यही भेष नेह गेह,
आसा सब भाँति पूरी "श्रीभट" के मन की॥

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्री राधा परब्रह्म की आत्म शक्ति होने से उससे सर्वदा अभिन्न मानी गयी है। इसीलिये पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथ जी के साथ भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप नहीं रखा गया है। जहाँ कहीं भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप पाया जाता है, वहाँ मूल आत्म शक्ति के धर्मरूप से केवल लीला अनुभवार्थ है। लीला परत्वे श्रीराधा के प्राधान्य को स्वीकार करते हुए भी शुद्धाद्वैत सिद्धांत में शक्तिवान् पुरुष का ही आधिपत्य माना गया है; क्यों कि इस मत में तत्वतः शक्ति शक्तिवान् के अधीन ही मानी गयी है। वस्तुतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार अभिन्न और एक ही रूप हैं।

गो० श्री हरिराय जी के इस विषय में निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

(१) मुख्य शक्ति स्वरूपं तु स्त्री भावो हरिरुच्यते ।

(भावस्वरूप नि०)

(२) तत्र स्त्र्यंशः 'पराशक्ति' र्भावांशः कृष्ण शब्दितः ।

(मूलरूप संशय निराकरणम्)

इस प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार साकार पुंभाव अंश और पराशक्ति रूप स्त्री अंश मिल कर ही परब्रह्म कृष्ण कहे गये हैं । इसके विपरीत "द्वैत" मत में तत्वतः दोनों भिन्न माने गये हैं ।

सूरदास के पदों में यही शुद्ध अद्वैत सिद्धांत इस प्रकार मिलता है—

(१) ब्रज ही में बसै आपुनहिं बिसरायौ ।
प्रकृति पुरुष एक करि जानहु' वा तन भेद करायौ ॥
जल-थल जहाँ रह्यौ तुम बिनु नहीं वेद-उपनिषद गायौ ।
'द्वत न जीव एक हम तुम दोउ' सुख कारन उपजायौ ॥
'ब्रह्म-रूप दुतिया नहीं कोई' तब मन त्रिया जनायौ ।
'सूरस्याम'मुख देखि आलय हँसि आगंद पुंज बढ़ायौ ॥

(२) राधिका-गेह हरि देह बासी । और त्रियन घर तन प्रकासी ।
ब्रह्म पूरन एक द्वितीय न कोऊ । राधिका सबै हरि सबै एऊ ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी । तैसे ही ब्रह्म घर-घर बिहारी ।
खंडिता वचन हित यह उपाई । कबहूँ कहूँ जात कहूँ नहीं कन्हाई ॥
नारी रस वचन श्रवन न सुनावै। जनमकौ फल हरी तबही पावै ।
'सूर'प्रभु अनत ही गवन कीनों। तहाँ नहीं गये जहाँ वचन दीनों ॥

(३) घर पठई प्यारी अंक भरी ।
कर अपने मुख परस त्रिया कों प्रेम सहित दोउ भुजहिं धरी ॥
'राधा हरि आधा आधा तनु एक ह्वै ब्रज में हो अवतरी ।
'सूरस्याम' रस भरी उमँगि अंग यह छवि देखि रह्यौ रतिपति डरी ॥

इन पदों से राधा और कृष्ण की शुद्ध अद्वैतता तथा राधा की स्वकीय भावना स्पष्ट होती है अतः सूरदास द्वारा किया गया राधा विषयक माधुर्य भाव का वर्णन पुष्टि संप्रदाय की भावना के ही अनुकूल है । सूरदास के पदों में प्राप्त चंद्रावली जी की परकीय भावना से इसकी और भी पुष्टि होती है।

पुष्टिमार्ग में श्री चंद्रावली जी परकीया रूप में श्री कृष्ण के दक्षिण ओर स्थित रहती हैं, जब कि श्री राधा उनके बांई ओर रहती हैं। सूरदास के निम्न लिखित पद में यह भाव स्पष्ट हुआ है—

श्रीचंद्रावली जी का वर्णन—

नंदनंदन हँसे नागरी मुख चितै हरषि 'चंद्रावलि' कंठ लाई।
बाम भुज रवनि*, दक्षिण भुजा सखी§, प्रबल कुंज बन धाम सुख कहि न जाई॥
मनो बब दामिनी बीच नव घन सुभग, देख काम रति सहित लाजै।
किधौं कंचन लता बीच तमाल तरु भामिनी बीच गिरिधर बिराजै॥
गये गृह-कुंज अलि-गुंज सुमननि-पुंज देखि आनंद भरि 'सूर' स्वामी।
'राधिकाप्रान' चंद्रावलि रमन प्रिय, निरखि छवि होत मन काम कामी॥

विशुद्ध प्रेम की शुद्धि पुष्टि—तन्मय अवस्था रूप "स्वाधीना" भाव का स्वरूप और उसका स्वतंत्र संयोग-विप्रयोगात्मक विलास—

(भाव-प्रेम स्वरूप वर्णन)

(१) भाव बिनु माल नफा नहीं पावै।
भाव बीज भक्तन कौ सर्वस भावहिं हिरदै ध्यावै॥
भाव भक्ति सेवा सुमिरन करि पुष्टि पंथ में धावै।
'सूर' भाव सब ही कौ कारन 'भाव ही में हरि आवै'॥

(२) प्रेम में निस-दिन बसत मुरारी।
प्रेम ही तन-धन, प्रेम ही जीवन, प्रेम पगे बनवारी॥
प्रेम-अहार बिहार निरंतर, प्रेम करत व्यवहारी।
'सूरस्याम' प्रभु प्रेम रँगे हैं, और नहीं अधिकारी॥

(तन्मयता का वर्णन)

(१) आँखिन में बसै, जियरे में बसै, हियरे में बसै निस-दिन प्यारौ।
मन में बसै, तन में बसै, अंग-अंग में बसत नंदबारौ॥
सुधि में बसै, बुधि ही में बसै, उरजन में बसत प्रिय प्रेम दुलारौ।
'सूरस्याम' बन हू में बसत, घरहू में बसत, संग ज्यों जलतरंग न होत न्यारौ॥

---

* श्री राधा

§ श्री चंद्रावली

(२) गोरस कों निज नाम भुलायौ ।
लेहु-लेहु-लेहु गोपालहिं गलिन-गलिन यह सोर मचायौ ॥

स्वतंत्र भावों का विलास—

(संयोग अवस्था)

(१) लाल तेरी बंसी नैक बजाऊँ ।
अपनौ भूषन पिय कों पहराऊँ पिय कौ पहरि बताऊँ ॥
तुम वृषभान लली बनि बैठो, मैं नंदलाल कहाऊँ ।
तुम तौ छिपो पिय कुंज गलिन में, पकरि फेंट गहि लाऊँ ॥
तुम तो मान मानिनि बनि बैठो, मैं गहि चरन मनाऊँ ।
'सूरदास' प्रभु अचरज भारी, तुम राधे मैं माधौ कहाऊँ ॥

(विप्रयोग अवस्था)

(२) हरि बिन व्यथा कौन सों कहिय ।
मनमथ मथत रहत छन-छन प्रति अंतरगति में दहियै ॥
कानन भवन रैन अरु बासर कहूँ नहिं सुख लहियै ।
मोकों भई यज्ञ-पसु ज्यों यह दुःख कहाँ लों सहियै ॥
कबहुँक जिय में ऐसी आवै जाय जमुन-जल बहियै ।
'सूरदास' प्रभु कमल-नैंन बिनु कहु कैसै ब्रज रहियै ॥

इस प्रकार के भावों का स्वतंत्र विलास ही पुष्टि की सर्वोच्च मोक्ष-संन्यास अथवा निरोध अवस्था है। यह सिद्ध हो जाने पर इसी देह से नित्य लीला का परम सुख निरंतर यहाँ बैठे ही बैठे प्राप्त होता है। इसमें लोक वेद के संबंधों की तो गंध भी नहीं रहती है, कृष्ण के बाह्य स्वरूप की भी अधीनता या अपेक्षा नहीं होती। इस अवस्था का भक्त अपने भावानुकूल अनेक प्रकार के लीला स्वरूपों को क्षण-क्षण में प्रकट कर विविध प्रकारों से उनके आनंद का यथेच्छ भोग करता रहता है। कभी वह अपने में ही कृष्ण रूपता का अनुभव कर स्वयं को कृष्ण मानता है, तो कभी अपने अंतस्तल में कृष्णानंद की खोज करता है। शुद्धाद्वैत ब्रह्म-भावना के सिद्धांत का प्रेम की इस अवस्था में ही पर्यवसान हो जाता है।

३—सूरदास और पुष्टिमार्गीय सेवा

श्री बल्लभाचार्य जी ने सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध कराने के लिए जीव को कृष्ण-सेवा का उपदेश किया है†। जबतक सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध नहीं होता, तब तक जीव को पूर्वोक्त दिव्य प्रेम की सिद्धि भी प्राप्त नहीं हो सकती। उस सिद्धि को प्राप्त किये बिना श्रुतियों की गति दुर्लभ है, अतः निरंतर कृष्ण-सेवा करना ही प्रेम-जिज्ञासु जीवों के लिए एक मात्र कर्त्तव्य कहा गया है।

आचार्य जी ने कृष्ण-सेवा के दो भेद बतलाये हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा भावनात्मक। क्रियात्मक सेवा पुनः दो प्रकार की कही गयी है-एक तनुजा और दूसरी वित्तजा। तनुजा अर्थात् इस शरीर उसकी एकादश इंद्रियाँ एवं स्त्री, पुत्र, कुटुंब आदि द्वारा की जाने वाली सेवा और वित्तजा अर्थात द्रव्य और उससे संबंधित पदार्थों द्वारा की जाने वाली सेवा। भावनात्मक सेवा को आचार्य जी ने मानसी कहा है। उसका स्वरूप चित्त का श्रीहरि में संपूर्ण रूपेण प्रवण होना है। इसकी सिद्धि तनुजा-वित्तजा प्रकार वाली सेवा से ही हो सकती है*, इसलिए क्रियात्मक सेवा करना ही जीव का सर्व प्रथम कर्त्तव्य है। इस सेवा में ब्रह्म-भावना पूर्वक पूर्वोक्त बाल-भावना, स्वकीय स्त्री-भावना और परकीय भावनाओं से स्नेहात्मक चिंतवन करना है। इस प्रकार से मानसी सेवा सिद्ध हो सकती है। इससे जीव परागति को प्राप्त होता है‡। क्रियात्मक सेवा में इस प्रकार के चिंतवन बिना न तो एकादश इंद्रियाँ-विशेषतः मन का ही विनियोग हो सकता है, न उससे चित्त की पूर्ण प्रवणता रूप मानसी सेवा ही सिद्ध हो सकती है।

तनुजा-वित्तजा रूप क्रियात्मक सेवा के स्वरूप को तादृश करने के लिए आचार्य जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा का इस प्रकार निर्माण किया है—

---

† (१) ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्। (सिद्धांत मुक्तावली)
(२) कृष्ण सेवा सदा कार्या ·····। (सिद्धांत मुक्तावली)
चेतस्तत्वप्रवणं सेवा तत्सिद्धये तनु वित्तजा। (सिद्धांत मुक्तावली)

‡ युवां मां पुत्र भावेन ब्रह्म भावेन चासकृत्।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौयास्येथे मद्गतिं पराम्। (भागवत १०, अ० ४)

गुरु का आश्रय—कृष्ण-सेवा के जिज्ञासु जीव को सर्व प्रथम कृष्ण का माहात्म्य और उनके स्वरूप का ज्ञान आवश्यक रूप से होना चाहिए। इसके बिना उससे कृष्ण की कृपा को प्राप्त करने वाली सेवा सांगोपांग रूप ने नहीं हो सकती है। अतएव इस प्रकार की ज्ञान-प्राप्ति के लिए कृष्ण-सेवा में परम-वीक्ष्य, दंभादि रहित और श्रीभागवत-तत्त्व को जानने वाले पुरुष को गुरु करना आवश्यक है और श्रद्धा एवं जिज्ञासा पूर्वक 'सर्वात्मभाव' से इस गुरु का भजन-आश्रय करना इस जीव के लिये नितांत आवश्यक होता है*। जब तक जिज्ञासु जीव में गुरु और ईश्वर के बीच इस प्रकार की अभेद बुद्धि नहीं स्थापित होती, तब तक उसको शास्त्रों के ज्ञान-निष्कर्ष स्वरूप कृष्ण-माहात्म्य का विशुद्ध बोध भी नहीं हो सकता है। उपनिषद् के निम्न श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यै ते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

सूरदास के पदों में सर्वात्म भाव से गुरु के भजन का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

(१) श्री बल्लभ अब की बेर उबारौ।
सब पतितन में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारौ॥
और पतित नहीं मेरे सम, अजामिल कौन विचारौ।
भाज्यौ नरक नाम सुन मेरो, जम ने दियौ हरतारौ॥
कृपासिंधु करुनानिधि केसव, अब न करोगे उधारौ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं, 'बिना एक सरन तुम्हारौ'॥

(२) श्री बल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे।
तुमहिं हमारी लाज बड़ाई, विनती सुन प्रभु मेरे॥
अन्य देव सब रंक-भिखारी, देखे बहुत घनेरे।
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भये सब 'चेरे'॥
सब त्यजि तुम सरनागति आये, दृढ़ करि चरन गहेरे।
'सूरदास' प्रभु तिहारे मिले तें, पाये सुख जु घनेरे॥

(३) भरोसौ दृढ़ इन चरननि केरौ।
श्री बल्लभ नख-चंद्र छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरौ॥

---

* कृष्णसेवा परंवीक्ष्यं दम्भादिरहितं नरम्।
श्रीभागवत तत्त्वज्ञं भजेज़्जिज्ञासुरादरात्॥ (निबंध)

साधन और नहीं या कलि में जासों होत निवेरौ।
"सूर" कहा कहै द्विविध आँधरौ बिना मोल कौ 'चेरौ'॥

(४) हरि-हरि-हरि सुमिरन करो। हरि-चरनारविंद उर धरो॥
श्रीमद्वल्लभ प्रभु के चरन। तिनके गहो सुदृढ़ करि सरन॥
विट्ठलनाथ कृष्ण† सुत जाके। सरन गहे दुख नासहिं ताके॥
तिनके पद-मकरंदहिं पाऊं। "सूर" कहै हरि के गुन गाऊं॥

पूर्वोक्त शास्त्रीय आधारों से इस सेवा-मार्ग में सर्व प्रथम गुरु का आश्रय कर्त्तव्य रूप कहा गया है। जब जीव गुरु का आश्रय करता है, तब गुरु भगवान् श्रीकृष्ण से उसका विस्मृत हुआ चिरकालीन अंशात्मक संबंध का ज्ञान कराते हुए उसका कृष्ण के चरणों में आत्म-निवेदन कराते हैं। इससे जीव कृष्ण का दास बनकर कृष्ण-सेवा का अधिकारी होता है। जिस मंत्र से आचार्य जी ने जीव का श्रीकृष्ण के चरणों में आत्म-समर्पण कराया है, उसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण मेरा आश्रय (शरण) है। सहस्र परिवत्सर जितना काल व्यतीत हुआ, श्रीकृष्ण से मेरा वियोग हुआ है। उस वियोग-जन्य तापक्लेशानंद का मेरे में से तिरोभाव हुआ है, अतः भगवान कृष्ण को देह, प्राण, इंद्रियाँ, अंतःकरण उसके धर्म, दारागार, पुत्र, आप्त-वित्त, इहलोक-परलोक और आत्मा सहित (मैं) समर्पित करता हूँ। मैं दास हूँ। कृष्ण मैं तुम्हारा हूँ।"

कृष्ण के स्वरूप (मूर्ति) के समक्ष बाह्याभ्यंतर शुद्ध प्रकार से आचार्य जी जीव को तुलसी की साक्षी से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करवाते हैं। इसी को आत्म-निवेदन कहा जाता है।

---

† अग्निरूपो द्विजाचारो भविष्यामिह भूतले।
बल्लभोद्यग्निरूपः स्याद्विट्ठलः पुरुषोत्तमः॥
(अग्नि पुराण का भविष्योत्तर खंड)

वल्लभोनाममेवत्स भुविसर्वे वदंतिहि।
यत्सूनु विट्ठलेशातु यशोदानंदनंदनः॥
(नारद पंचरात्र का तृतीय रात्र)

अग्निसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, गौरी-तन्त्र, ब्रह्मयामल इत्यादि में भी इसी प्रकार के उल्लेख मिलते हैं।

श्रीमद्भागवत एकादशस्कंध में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

ये दारागार पुत्राप्त प्राणान् वित्त मिमं परं ।
हित्वा मां शरणं यात• कथं तां त्यक्तुमुत्सहे ॥

अर्थात्—जो व्यक्ति दारागार पुत्राप्त प्राण और वित्त आदि सहित मेरी शरण में आता है, उसका मैं हे उद्धव ! किस प्रकार त्याग कर सकता हूँ ?

इस प्रकार के कृष्ण-वाक्यों को प्रमाण मान कर ही आचार्यजी ने इस आत्म-निवेदन प्रणाली को प्रकट किया है और इसी से जीव अपने अंशी कृष्ण से अंगीकृत होकर साक्षात् दासत्व का अधिकारी हो जाता है, इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्" इस भगवद्गीता का कृष्ण-वाक्य भी इस विश्वास की पुष्टि करता है, अतः अविश्वास न करने की आज्ञा करते हुए‡ आचार्यजी ने इस अधिकार को प्रत्यक्ष करने के लिए वाचिक रूप से जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्रिया और मन से अनुसरण करने को कहा है। इसी लिये सेवामार्ग प्रकट किया गया है। सेवामार्ग द्वारा जीव मनसा-वाचा-कर्मणा भगवद्दासत्व को सिद्ध कर कृष्णानुगृहीत होता है। इससे वह परमगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार के आत्म-निवेदन और उसके क्रियात्मक रूप का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पद में मिलता है—

यामैं कहा घटेगौ तेरौ ।
नंदनंदन करि घर कौ ठाकुर आपुन ह्वै रहै चेरौ ॥
भली भई जो संपत्ति बाढ़ी बहुत कियौ घर घेरौ ।
कहुँ हरि-सेवा, कहुँ हरि-कथा, कहुँ भक्तन कौ डेरौ ॥
जुवती-जूथ बहुत संकेले, वैभव बढ्यौ घनेरौ ।
सर्व समर्पन "सूर" स्याम कों' यहै साँचौ मत मेरौ ॥

जो लोग "तन मन धन गुसांईजी को अर्पन" इस कहावत के कारण पुष्टिमार्ग को बदनाम करने की धृष्टता करते हैं, उनको पूर्वोक्त आत्मनिवेदन के मंत्र के अक्षरार्थ तथा सूरदास के इस पद पर ध्यान देना चाहिए। इन दोनों में गुरु को समर्पण करने का कहीं उल्लेख नहीं है, श्रीकृष्ण को ही सब कुछ समर्पण करने को कहा गया है।

---

‡ अविश्वासो न कर्त्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः । (विवेक धैर्याश्रय)

नित्य की सेवाविधि— श्रीवल्लभाचार्य जी का उपदेश है कि शरणस्थ जीवों को गुरु की बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार सेवा की कृति करनी चाहिए†, इसीलिए आचार्य जी ने स्वमार्ग की सेवा विधि का निर्माण किया है, जिससे पुष्टिस्थ जीव इस विधि के अनुसार सेवा की कृति कर सके।

(आचार्य जी ने सेवा-विधि में दो क्रम रखे हैं—एक प्रातःकाल से शयन पर्यंत की नित्य विधि का और दूसरा वर्षोत्सव का।)

हम पहले लिख चुके हैं कि आचार्यजी ने पुष्टि के गुरु स्वरूप गोपीजनों के भावना-साधनों को ही इस पुष्टिमार्ग के मुख्य साधन माने हैं, इसलिए आचार्य जी ने पूर्वोक्त व्रजांगनाएँ, गोपी और गोपांगनाओं की विविध साधन रूप प्रेमात्मक भावनाओं के अनुसार ही इस सेवा-विधि का निर्माण किया है‡।

मातृभाव स्वरूप व्रजांगनाओं ने भगवान् कृष्ण के प्रति बाल-भाव की भावना से प्रेरित होकर उनकी प्रातःकाल से शयन पर्यंत वात्सल्यता पूर्वक सेवा की है; इसलिए आचार्य जी ने इस नित्य की सेवा-विधि में उन्हीं की भावना को फलित किया है। इस भावना के अनुसार आचार्य जी ने कृष्ण की सेवा के मुख्य आठ समय रखे हैं। इनका नाम और परिचय इस प्रकार है—

१. मंगला, २. शृंगार, ३. ग्वाल, ४. राजभोग, ५. उत्थापन, ६. भोग, ७. संध्याआरती, ८. शयन।

१. **मंगला**—श्री गुरु का स्मरण और उनकी वंदना कर भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को प्रातः जगाया जाता है। फिर उनको कलेऊ कराया जाता है, जिसको मंगल भोग कहते हैं। समयानुसार भोग कराकर मंगला-आरती होती है। ये सब प्रक्रियाएँ वात्सल्य बाल-भाव से मातृ-चरण श्री यशोदाजी की भाव-भावना से भावित होकर की जाती हैं। इसमें ऋतु अनुसार वस्त्र, सामग्री आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है।

२. **शृंगार**—मंगला-आरती के अनंतर श्रीकृष्ण के स्वरूप का उष्ण जल से स्नान कराया जाता है और तेल-फुलेल लगाकर वस्त्र, आभरण आदि धराये जाते हैं।

---

† सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा (नवरत्न)

‡ सेवा-रीति प्रीति व्रज जन की जन हित जग प्रगटाई। (बधाई)

भागवत के प्रथमस्कंध से द्वादशस्कंध पर्यंत कीर्तनों की 'सूरसागर' नाम से प्रसिद्धि है। यह प्रसिद्धि महाप्रभु के समय से ही है, क्योंकि वार्ता में लिखा है कि महाप्रभु सूरदास को देखते तब 'आओ सूरसागर !' इस प्रकार कहते थे।

महाप्रभु श्रीमद्भागवत को 'सागर' मानते हैं। जैसा कि—

हर्यावेशित चित्तेन श्रीमद्भागवत सागरात्।' (पु० सहस्रनाम)

भागवत की इन्हीं दशविध लीलाओं को सूरदास के हृदय में स्थापित कर सूरदास को भी महाप्रभु ने 'सागर' बना दिया था। इससे सूरदास 'भागवत' स्वरूप हो चुके थे, इसलिए ही महाप्रभु उनको सागर कहते थे। महाप्रभु द्वारा कहा हुआ 'सागर' नाम सूरदास के हृदय से उच्छलित लीला भावों के तरंग रूप पदों से सार्थक हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है 'आओ सूरसागर !' कथन की पुष्टि 'सागर सूर विकार जल भर्यौ' वाले अंतःसाक्ष्य से होती है। इससे मानना होगा कि महाप्रभु के समय में ही सूरदास भागवत की द्वादश स्कंधात्मक लीलाओं को विशेषतया गा चुके थे, तभी तो वे उस समय में भी 'सागर' नाम से प्रसिद्ध थे।

अब सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख पर विचार करेंगे। यहाँ 'एक लक्ष' वाला कथन संख्यावाची नहीं है, किंतु वह कृष्ण का सूचक है। अर्थात् श्रीमद्भागवत में नवलक्षण-सर्गादि नव लीलाओं से लक्ष्य-आश्रय-स्वरूप श्रीकृष्ण का ही निरूपण किया गया है। इसलिए इन दशविध लीलाओं को गाने के पूर्व उन लीलात्मक श्रीकृष्ण के पद की वंदना सूरदास ने की है। इस कथन का समर्थन 'सूरसागर' के भागवत-माहात्म्य वाले प्रारंभिक मंगलाचरण के इस पद से होता है—

'वंदों श्री गिरिधरनलाल के चरन कमल रज सदा सीस बस।
जिनकी कृपा कटाच्छ होत ही पायौ परम तत्व लीला रस† ॥'

नंददास ने भी अपने श्रीमद्भागवत भाषा के मंगलाचरण में नव लक्षण से लक्ष्य श्रीकृष्ण की वंदना की है।

नव लक्षण करि 'लक्ष' जो, दसयें आश्रय रूप।
नंद बंदि लै ताहि कों, श्रीकृष्णास्य अनूप॥

---

† कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रारंभिक मंगलाचरण का पद।

जो ठाकुर की आरति करै* । तीन लोक वाके पाँयन परै ॥
जो ठाकुर कों करै प्रनाम । विष्णु लोक तिनकौ निज धाम‡ ॥
जो हरि आगै वाद्य बजावै । तीन लोक रजधानी पावै ॥
जो जन हरि कों ध्यान करावै । गरभ बास में कबहु न आवै ॥
जो हरि कों नित करै सिंगार‡ । ताकौ पूरन है अंगीकार ॥
जो दरपन ठाकुरहिं दिखावै । चंद-सूर्य ताकों सिर नावै ॥
जो ठाकुरहिं सु तुलसी चढ़ावै† । ताकी महिमा कहत न आवै ॥
जो कीर्तन ठाकुरहिं सुनावै । ताकों ठाकुर निकट बुलावै ॥
हरि-मंदिर में दीपक धरै । अंध-कूप में कबहु न परै ॥
जो ठाकुर की सेज बिछावै । निज पद पाय, दास सो कहावै ॥
पलना जो ठाकुरहिं झुलावै । वैकुंठ-सुख अपने घर लावै ॥
जो ठाकुरहिं झूलावै डोल । नित-लीला में करै कलोल ॥
उत्सव करि मन आरती करै‖ । ता आधीन रहैं श्रीहर ॥
जो ठाकुर कों भोग धरावै । सदा परम नित आनंद पावै ॥
जो पद दीन्ह जसोदा मात¶ । ता सुख की कछु कही न जात ॥
ग्वालन सहित गोपाल जिमावै§ । सो ठाकुर कौ सखा कहावै ॥
जो ठाकुर कों स्वाद करावै । सो ताकौ फल तब ही पावै ॥
गोवर्धन की लीला गावै । चरन-कमल-रज तब ही पावै ॥
श्री जमुना जल करै जो पान । सो ठाकुर के रहै सन्निधान ॥
जहाँ समाज वैष्णवी होवै । ताकी संगति नित-प्रति जोवै ॥

---

* मंगला-आरती ।

‡ सेवायाः फल त्रयम् । अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्यं, सेवोपयिक देहो वा वैकुंठादिषु । (सेवाफल विवरणम्)

‡ शृंगार का समय ।

† शृंगार अनंतर ग्वाल के समय में तुलसी समर्पण करने की रीति है । इससे ग्वाल का संकेत है ।

‖ राजभोग आरती का संकेत है ।
उत्थापन भोग ।

¶ बाल-भावना का संकेत है ।

संध्या-आरती का संकेत है ।

§ शयन भोग ।

श्री भागवत सुनै आनंद करि। ताके हृदै बसें नित ही श्रीहरि॥
जो ठाकुर कों देह समर्पै। उत्तम श्रेष्ठ जानि कै अरपै॥
जिनिहरि की गागर भर आनी। तिन बैकुंठ अपनी स्थिति ठानी॥
जो ठाकुर कौ मंदिर लेपै। माया ताकौ कबहू न लेपै॥
जो ठाकुर कौ सीयौ बीनें। जितने तीरथ तितने कीनें॥
जो ठाकुर की माला पोवै। सोई परम भक्त नित होवै॥
जो ठाकुर कों चंदन लावै। त्रिविध ताप संताप मिटावै॥
जो ठाकुर के पात्रन धोवै। सदा-सर्वदा निरमल होवै॥
जो हरि-कीर्तन सुख सों करै। मुक्ति चारि हू पाँयन परै॥
सेवा में जो आलस करै। कूकर ह्वै कै फिरि-फिर मरै॥
"मनसा जो सेवा आचरै। तब ही सेवा पूरी परै॥"
जो सेवा कौ आश्रय करि रहै। दुख सुख बचन सबन के सहै॥
जो सेवा में आलस लावै। सो जड़ जनम प्रेत कौ पावै॥
वेद पुरातन में यों भाख्यौ। 'सेवारस ब्रज गोपिन† चाख्यौ'॥
सेवा की यह अद्भुत रीति। श्री विट्ठलेश सों राखो प्रीति॥
श्रीआचार्य महाप्रभु प्रगट बनाई। कृपा भई तब मन में आई॥
सेवा कौ फल कह्यौ न जाई। सुख सुमरे श्री बल्लभ राई॥
सेवा कौ फल सेवा पावै। "सूरदास" प्रभु हृदै समावै॥

सूरदास के निम्न पदों में आठों समय की बाल-भावनाओं का इस प्रकार वर्णन किया गया है।

मंगला

जगाने का—

लाल नाहिं जगाय सकत, सुन सो बात सजनी।
अपने जान अजहू कान्ह, मानत सुख रजनी॥
जब-जब हौं निकट जाऊँ, रहत लागि लोभा।
तन की सुधि बिसरि गई, देखत मुख-सोभा॥
बचनन कों जिय बहुत करत, सोचत मन ठाढ़ी।
नयनन नयन विचारि परें, निरखत रुचि बाढ़ी॥
यह विधि बदनारविंद, जसुमति जिय भावै।
"सूरदास" सुख की रासि, कहत न बनि आवै॥

† बीथिन

कलेऊ का—

(१) दोऊ भैया माँगत मैया पै, दैरी मैया दधि माखन रोटी ।
सुनि जसुमति यह बात सुतन की, झूठे ही धामके काम अंगोटी ॥
बलभद्र गह्यौ नासा कौ मोती, कान्ह कुंवर गही दृढ़ करि चोटी ।
मानो हंस मोर भख लीने, कहा बरनों उपमा मति छोटी ॥
यह देखतहिं नंद आनंदे, प्रेम-मगन भये लोटा-पोटी ।
"सूरदास" प्रभु मुदित जसोदा, भाग्य बड़े, करमन की मोटी ॥

(२) अबही जसोदा माखन लाई ।
मैं मथिकै अब ही जू निकास्यौ तुम कारन मेरे कुँवर कन्हाई ॥
माँगि लेहु ऐसे ही मोपै मेरे ही आगैं खाहु ।
और कहूँ जिन खैहौ मोहन, दीठ लगैगी काहु ॥
तनक-तनक ही खाउ लाल मेरे, ज्यों बढ़ि आवै देह ।
"सूर" स्याम कछु होउ बड़े से, बैरिन के मुख खेह ॥

आरती का—

ब्रज मंगल की मंगल आरती ।
रतन जटित कनक थार लै ता मधि चित्र कपूर लै बारती ॥
लेति बलाइ करति न्यौछावरि तन-मन-प्रान वारनै वारती ।
"सूरदास" भरी है जसोदा मगन भई तन-मन न सँवारती ॥

शृंगार

न्हवायवे का—

यसोपति जब ही कह्यौ न्हवावन, रोय गये हरि लोटत री ।
तेल उबटनौ लै आगैं धरि, लाल ही चोटी पोतत री ॥
मैं बलि जाऊं इन मोहन की, कित रोवत बिन काजै ।
पाछैं धरि राख्यौ चुराय कै, उबटनौ तेल समाजै ॥
महेरि बहुरि बिनती करि राखत, मानत नहीं कन्हाई ।
"सूर" स्याम अति ही बिरझाने, सुर-मुनि अंत न पाई ॥

शृंगार का—

करति शृंगार मैया मन भावत ।
सीतल जल उष्ण करि राख्यौ† लै लालन कों बैठि न्हवावत ॥

† केवल पुष्टि संप्रदाय में ही भगवत्स्वरूप उष्ण जल से बारहों मास न्हवाये जाते हैं । अन्य संप्रदायों में बारहों मास ठंडे जल से ही न्हवाये जाते हैं ।

देखो मेरे लाल और सब बालक घर-घर तें कैसे बनि आवत ॥
पहरौ लाल झगा अति सुंदर, आँख आँजिकै तिलक बनावति ।
"सूरदास" प्रभु खेलत आंगन, लेति बलैया मोद बढावति ॥

ग्वाल

धैया का—

दै मैयारी दोहिनी, दुहि लाऊं गैया ।
(माखन खाय बल भयौ तोहि नंद दुहैया ॥)
सेंदुर-काजर धूमर-धौरी मेरी ये गैया ।
दुहि लाऊं तुरतहिं तब मोहि करिदै धैया ॥
ग्वालन के संग दूहत हौं बूझहु बलभैया ।
"सूर" निरखि जननी हँसी तब लेत बलैया ॥

राजभोग

शीत काल भोजन का—

जेंवत कान्ह नंदजू की कनियाँ ।
कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छबि निरखति नंदरनियाँ ॥
बरी-बरी बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन विविध अँगनियाँ ।
आपन खात नंदमुख लावत, यह सुख कहत न बनियाँ ॥
आपुन खात खवावत ग्वालन, कर माखन दधि दुनियाँ ।
सद माखन मिश्री मिश्रित करि, मुख नावत छबि धनियाँ ॥
जो सुख महरि-यसोदा बिलसत, सो नहिं तीन भवनियाँ ।
भोजन करि अचवन जब कीनों, माँगत "सूर" जुठनियाँ ॥

उष्ण काल छाक का—

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई ।
टेरि-टेरि हौं भई बावरी, दोउ भैया तुम रहे लुकाई ॥
जे सब ग्वाल गये घर-घर कों, तिनसों कहि तुम छाक मँगाई ।
लोंनी दधि मिष्टान्न जोरिकै, जसुमति मेरे हाथ पठाई ॥
ऐसी भूख मांझ तू लाई, तेरी कहि विधि करों बड़ाई ।
"सूर" स्याम सब सखन पुकारत, आवत क्यों न छाक ही आई ॥

राजभोग सन्मुख का —

चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार,
नंद के कुमार मेरौ संकट निवारौ ।

यमला-अर्जुन तारयौ, गज ग्राह तें उबारयौ,
नाग कौ नाथन हार मेरौ प्रान प्यारौ ॥
गिरिवर कर धारयौ, इंद्र हू कौ गर्व गारयौ,
ब्रज के रक्षन हार बिरद बिचारौ ।
द्रुपद सुता की बेर, नैक हू ना कीनीं देर,
अब क्यों अबेर "सूर" सेवक तिहारौ ॥

उत्थापन

नट—

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ ।
जब तें आजु नंदनंदन छवि, बार-बार करि पेख्यौ ॥
नख,अंगुरी,पग, जानु,जंघ,कटि,रचि कीन्हों निरमान ।
हृदय,बाहु,कर,हस्त, अंग-अँग, मुख अति सुंदर बान ॥
अधर, दसन, रसना, रस बानी,स्रवन, नैन अरु भाल ।
"सूर" रोम प्रति लोचन देतौ देखत बनै गोपाल ॥

संध्या-आरती

गोरी—

(१) वह देखो नंद कौ नंदन आवत ।
वृंदाबन तें गाय चराय कै कर धर बैनु बजावत ॥
सुंदर स्याम कमल दल लोचन जसोदा के जिय भावत ।
कारी, धौरी, धुमरी, पियरी, लै-ल नाम बुलावत ॥
बाल-गोपाल सखा संग लीने, पतुवन दूध पिवावत ।
"सूरदास" प्रभु वेग धरत पग, जुबती प्रेम बढ़ावत ॥

(२) जसोदा मैया काहै न मंगल गावै ।
पूरन ब्रह्म सकल अविनासी, ताकौ गोद खिलावै ॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड कौ कर्त्ता, मुनि जन जाकों धावै ।
ना जानों यह कौन पुन्य तें, तेरी धनु चरावै ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, जप-तप ध्यान न आवै ।
सेष-सहसमुख रटत निरंतर, हरि कौ पार न पावै ॥
संदर बदन कमल-दल लोचन, गोधन के सँग धावै ।
करत आरती मात जसोदा, "सूरदास" बलि जावै ॥

शयन

ब्यारू का—

माखन रोटी लेउ कान्ह बारे ।
ताती रुचि उपजावत त्रिभुवन के उजियारे ॥
और लेउ पकवान मिठाई मेवा बहु विधि सारे ।
औंटयौ दूध सद्य घृत मधुर रुचि सों खाउ मेरे प्यारे ॥
तब हरि उठिकै[1] करी बयारू भक्तन प्रान पियारे ।
'सूरदास' प्रभु भोजन करिकै सुचि जल सों वदन पखारे ॥

शयन के दर्शन का—

कुंडल मंडित कपोल, अति लोल डोलनि, बडरे नैन चपल सरस सजल भरे। नासा सुकवर सुढार, अधर बिंब बिच प्रबाल, हसन दसन लसनि मानों फूल झरे ॥ कंबु कंठ मुक्त-माल, नगन जटित पदक लाल, कंठ बाँह भुज मृनाल, सखा अंस धरे । नाभि नलिन कीर छीर, पाइन ज्वलत चटक-मटक, चरन कमल चित्त दै 'सूर' बिनती करे ॥

पौढने का—

(१) गिरिधन सैन कीजै आय ।
चाँदनी यह घटत नाहीं कहत जसोदा माय ॥
खेल सोई खेलियै बलि जो हमहीं सुहाय ।
जो खेल में तेरैं चोट लागै सो खेल देहु बहाय ॥
खेलि मदन गोपाल आये जननी लेति बलाय ।
पियौ पय तुम धौरी धेनु कौ सुख कर हू माखन खाय ॥
स्वच्छ सेज सुगंध बहु बिधि लाल पौढे आय ।
मदनमोहन लाल के 'सूर' चरन चांपत माय ॥

(२) सोवत नींद आय गई स्यामहिं ।
महरि उठी पौढाय दुहन कों, आपन लगी गृह कामहिं ॥
बरजति है घर के लोगन कों, हरुवे लै-लै नामहिं ।
गाढ़े बोल न पावत कोऊ† डर मोहन बलरामहिं ॥
सिव-सनकादिक अंत नहिं पावत ध्यावत हैं दिन-यामहिं ।
'सूरदास' प्रभु ब्रह्म सनातन सो सोवत नंद-धामहिं ॥

---

† यह सांप्रदायिक परिपाटी आज भी श्रीनाथ जी प्रभृति के यहाँ प्रचलित है ।

वर्षोत्सव विधि—नित्य-सेवा विधि के अतिरिक्त आचार्य जी ने सेवा-मार्ग में वर्षोत्सव विधि का भी समावेश किया है। श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओं के वर्ष भर के उत्सव तथा षट् ऋतुओं के उत्सवों का इसमें प्राधान्य है। इन्हीं उत्सवों के साथ यह समग्र जगत् ईश्वर कृत होने से सत्य है। इस सिद्धांत के आधार पर लोक-त्यौहारों को भी स्थान दिया गया है। इसी प्रकार ब्रह्म-भावना के माहात्म्य-ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए वैदिक पर्व तथा भक्ति प्राधान्य कृष्ण के अन्य अवतारों की जयंती आदि को भी इस सेवा मार्ग में स्वीकार किया गया है। इन सबका परिचय इस प्रकार है—

नित्य एवं अवतार लीलाओं के उत्सव—संवत्सर, गनगौर, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, पवित्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दान, सांझी, नवरात्रि, रास, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।

षट् ऋतुओं के उत्सव—वसंत ऋतु का उत्सव डोल, ग्रीष्म ऋतु का उत्सव फूल-मंडली, वर्षा ऋतु का उत्सव हिंडोरा, शरद ऋतु का उत्सव रास (द्वितीय दिन का), हेमंत ऋतु का उत्सव देवप्रबोधिनी का जागरण, शिशिर ऋतु का उत्सव होली।

लोक त्यौहार—रक्षा बंधन (ब्राह्मणों का) दशहरा (क्षत्रियों का) दिवाली (वैश्यों की) होली (शूद्रों की) इत्यादि।

वैदिक पर्व—मकर संक्रांति, ज्येष्ठाभिषेक आदि।

अन्य अवतारों की जयंतियाँ—राम जयंती, नृसिंह जयंती, वामन जयंती।

इन उत्सवों में आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति तथा व्यसन रूप परकीय भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। त्यौहार और वैदिक पर्वों में लोक-भावना और वेद की ब्रह्म-भावना का आधार लिया गया है। लोक-भावना वाले त्यौहारों का समावेश बाल-भावना में तथा ब्रह्म-भावना वाले पर्वों का समावेश माहात्म्य ज्ञान से संबंधित स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति में हो जाता है।

इन उत्सवों की भावनाएँ सूरदास के निम्न लिखित पदों से जानी जा सकती हैं—

१. **संवत्सर**—(चैत्र शु० १) "चक्र के धरन हार गरुड के असवार" यह माहात्म्य ज्ञान वाला पूर्वोक्त पद उपलब्ध है। भक्ति का हेतु माहात्म्य ज्ञान

होने से इसका गान नये वर्ष के प्रारंभ में होता है। इससे भक्ति रूप 'संवत्सर की सरस लीला' में जीव का अधिकार प्राप्त होता है।

२. गनगौर--(चैत्र शु० ३) यह ब्रज की कन्याओं का त्यौहार है। श्रीराधिका प्रभृति ने जिस प्रकार 'नंद-सुत हमारे पति हों' इस मनोर्थ की सिद्धि के लिये मार्गशीर्ष और पौष में व्रतचर्या कात्यायनी और भद्रकाल का आराधन किया था, इसी प्रकार चैत्र में गनगौर के रूप में ब्रज की आध्यात्मिक शक्ति रूपा 'गौरों' को पूजा है। 'कौन गौर तें पूजी राधा' आदि अष्टछाप के परमानंददास के कई पद इस विषय के उपलब्ध हैं। सूरदास का पद इस विषय का उपलब्ध नहीं होता है। फिर भी निम्न लिखित पद से उक्त बात की पुष्टि होती है—

सिव सों बिनय करति कुमारि।
सीत भीतर जोरि कर मुख स्तुति करत त्रिपुरारि॥
व्रत संयम करति सुंदरि कृस भई सुकुमारि।
'छैहौ ऋतु तप करति नीके', गृह कौ नेह बिसारि॥
ध्यान धरि कर जोरि, लोचन मूंदिक यक-यक याम।
बिनय अंचल छोरि रवि सों करति हैं सब बाम॥
हमहिं होउ कृपालु दिनमनि, तुम विदित संसार।
काम अति तनु दहत, दीजै 'सूर' स्याम भरतार॥

इसमें 'छैहौ ऋतु तप करति नीके' वाले कथन में चैत-बसंत ऋतु की गनगौर-आराधना का भी समावेश हो जाता है।

३. अक्षय तृतीया—(वैशाख शु० ३) नित्य लीला उत्सव है—

(१) आजु बने नंदनंदन री नव चंदन अंग अरगजा लाये।
रुरकत हार सुढार जलज मनि, गुंजत अलि अलकन समुदाये॥
पीत बसन तन बन्यौ पिछौरा, टेढी पाग तोर लटकाये।
अक्षय तृतीया, अक्षय लीला, अक्षय 'सूरदास' सुख पाये॥

(२) कैसे कैसे आये हो पिय, ऐसी दुपहरी तपन में।
भवन बिराजो बिंजना डुराऊं, स्रम झलकन सगरी देह में॥
स्रम निवारिऐ, अरगजा धारिऐ, जिय तें टारिऐ और संदेह।
चतुर सिरोमनि याही तें कहियत 'सूर' सुफल करो नेह॥

४. रथयात्रा—(आषाढ़ शु० २) इस उत्सव का प्रचलन संप्रदाय में गो० श्री विट्ठलनाथजी ने किया था । इसका प्रधान संबंध श्री कृष्ण का द्वारका-लीला से है। फिर भी इसमें ब्रज की बाल तथा किशोर भावनाओं को भी इस प्रकार स्थापित किया गया है—

बाल-भावना से—

देखो माई रथ बैठे हरि आजु ।
आगें 'ब्रजजन सखा स्यामघन' सबै मनोहर साजु ॥
हाटक कलसा, धुजा-पताका, छत्र-चँवर सिरताज ।
चपल अस्व चालहिं अति चलिहैं, देखि पवन मन लाज ॥
आषाढ सुदी दुतिया 'नक्षत्र पुष्य' अचल नंदसुत राज ।
'सूरदास' हरषत ब्रजवासी, रह्यौ घोष सिरताज ॥

किशोर-भावना से—

देखो माई रथ बैठे गिरिधारी ।
छतरी अनुपम हाटक-जराय की, झूमक-लर मुक्तारी ॥
गादी सुरँग ताफता संदर, फेर बाज छवि न्यारी ।
डोरी दिव्य पाट पचरंग की, कर गहे 'कंज बिहारी' ॥

[redacted]

वा पट पीत की फहरानि ।
कर गहि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरत वह बानि ॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रज की लपटानि ।
मानों सिंधु सैल तें निकस्यौ, महा गत्त गज जानि ॥
'जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कानि' ।
'सोई अब 'सूर' सहाय हमारे निकट भए प्रभु आनि' ॥

† मर्यादा के उल्लंघन को ही पुष्टि कार्य कहा गया है, इसलिए यहाँ पुष्टि पुरुषोत्तम का वर्णन है ।

५. पवित्रा—(श्रा० शु० ११) यह नित्य लीला तथा वल्लभ-अवतार लीला का उत्सव है। श्रा० शु० ११ को अर्धरात्रि को साक्षात् पुरुषोत्तम ने प्रकट हो कर श्रीगोकुल के ठकुरानी–गोविंद घाट पर श्री वल्लभाचार्य जी को ब्रह्म संबंध का उपदेश दिया था†। तब आचार्य जी ने नित्य लीला के संबंध से उन पुरुषोत्तम को पवित्रा धराया था। तब से यह उत्सव प्रति वर्ष संप्रदाय में मनाया जाता है।

सूरदास के निम्न लिखित पद में उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

पवित्रा पहरन कौ दिन आयौ।
केसर कुमकुम रँग रस बागौ, फुँदना हार बनायौ॥
जै-जैकार होत बसुधा पर सुर-मुनि मंगल गायौ।
पहरि पवित्रा लिऐं नंदसुत "सूरदास" जस गायौ॥

६ जन्माष्टमी—(भाद्र० कृ० ८) यह कृष्णावतार लीला का उत्सव है। सूरदास ने अनेक पदों में अनेक प्रकार से इसका वर्णन किया है। इस विषय का एक पद यहाँ दिया जाता है—

आज गृह नंद-महिर कैं बधाई।
प्रात समै मोहन मुख निरखत, कोटि चंद छबि छाई॥
मिलि ब्रजनारी मंगल गावति, नंद-भवन में आई।
देति असीस जियौ जसुमति सुत, कोटि बरीस कन्हाई॥
नित आनंद बढ़त वृंदाबन, उपमा कही न जाई।
'सूरदास' धन्य धन्य नँदरानी, देखत नैंन सिराई॥

७. राधाष्टमी—(भा० शु० ८) यह राधिकावतार लीला का उत्सव है।

सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

आज वृषभान कैं आनंद।
बदन प्रभा ऐसी लागत मानों प्रगटयौ पूरन चंद॥
एक जूझ बधावत गावत एक सुनावत हेल।
सुनि सब नारि बधाई आई अपुने-अपुने मेल॥

---

†श्रावणास्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ (सि० र०)

जो आवत सो करत न्यौछावरि, तन तोरत बलि जान।
परम भाग दंपति कहियत हैं†, फूली अंग न समात
अपुने-अपुने मन कौ भायौ भयौ, कहत सब लोग
"सूरदास" प्रगटी भुव ऊपर, भक्तन के हित जोग॥

८. दान—(भाद्र० शु० ११) यह नित्य लीला और कृष्णावतार लीला का उत्सव है। इस लीला के सूरदास के असंख्य पद मिलते हैं। उनमें से एक पद यहाँ दिया जाता है—

गढ तें ग्वालिन ऊतरी हो सीस मही कौ माट।
आड़ौ कन्हैया ह्वै रह्यौ सोतौ रोकत ब्रजवधू बाट॥ मोहन जान दे॥टेक
कहाँ की हो तुम ग्वालिनी हो, कहा तिहारौ नाम।
बरसाने की ग्वालिनी सोतौ, चंद्रावलि मेरौ नाम॥ मोहन०
वृंदाबन की कुंज में हो, अचरा पकरयौ दौरि।
नाम दान कौ लेत हो, लाल चाहत हो कछु औरि॥ मोहन०
मेरे संग की दूरि गई हो, तुम रोकी बन माँझ।
घर तौ दारुन सास है सोतौ, होन लगी है साँझ॥ मोहन०
तुम एकेले हम अकेली, बात नहीं कछु जोग।
तुम तौ चतुर प्रवीन हो, लाल कहा कहेंगे लोग॥ मोहन०
तुम ओढ़ी है चूनरी हो, हम पहरयौ है चीर।
उमड़ घुमड़ आई बादरी अब कहा बरषावत नीर॥ मोहन०
लै मटुकी आगें धरी हो परी हे स्याम के पाँय।
मन भावै सो लीजिये, लाल बचै सो बेचन जाँय॥ मोहन०
प्रेम मगन भई ग्वालिनी हो, हरि कौ दरसन पाय।
मुख सों बचन न आवही, सो तौ रही ठगोरी लाय॥ मोहन०
सुख बाढयौ आनंद भयौ हो, रही स्याम-गुन गाय।
सुंदर सोभा देखिके "सूरदास" बलि जाय॥ मोहन जान दै॥

९. साँझी—(भाद्र शु० १५ से) यह नित्य और अवतार लीला का उत्सव है।

सूरदास के एक पद में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

† स्वकीय भावना

सखियन संग राधिका बीनत, सुमनन बन मांह ।
साँझी पूजन कों आतुर ही, ठाड़े कदंब की छांह ॥
सखी भेष दै मोहन कों, लै चली आपुने गेह ।
पूछी कीरति, यह को सुंदरि ? तब कह्यौ मेरी सनेह ॥
सांझी खेल बिदा करि सब कों, दोउ पौढ़े सेज मँझार ।
सगरी राति "सूर" के स्वामी, बसि सुख कियौ अपार ॥

१०-नवरात्रि देवी पूजन--(आश्विन शु० १ से ९ तक) यह अवतार लीला का उत्सव है। सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

व्रत धरि देवी पूजी । जाके मन अभिलाष न दूजी ॥
कीजै नंद-पुत्र पति मेरे । पैहों जो अनुग्रह तेरे ॥

छंद—कर अनुग्रह बर दियौ जब बरस भर लों तप कियौ ।
त्रैलोक सुंदर पुरुष भूषन रूप नाहिंन बियौ ॥
इत उबटि सोलह सिंगार सखियनि कुंवरि चौरी जहाँ बनी ।
जा हित के व्रत नैम संयम सो घरी विधिना ठनी ॥

मुकुट रचि मोर बनायौ । माथें धरि हरि बर आयौ ।
तन सांवल पीत दुकूले । देखत ही घन दामिनि भूले ॥

छंद—दामिनी घन कोटि वारों जब निहारों मुख छवि ।
कुंडल बिराजत गंड मंडन नहीं सोभा ससि रवि ॥
और कौन समान त्रिभुवन सकल गुन जा मांहि है ।
मानों मोर नाँचत, संग डोलत मुकुट की परछांहि है ॥

गोपी सब न्यौते आईं । मुरली धुनि पठै बुलाईं ।
जहाँ सब मिलि मंगल गाये । नव फूलन के मंडप छाये ॥

छंद—छाये जु फूलन कुंज-मंडप पुलिन में वेदी रची ।
बैठे जु स्यामा-स्याम बर त्रैलोक की सोभा सची ॥
उत कोकिला गन करें कुलाहल इत सबें व्रज-नारियाँ ।
आईं जु न्यौतें दुहू दिस तें देत आनँद गारियाँ ॥

रास मंडल भुज जोरी । स्याम सांवरे श्री राधा गोरी ।
पानिग्रहन-विधि कीनीं । तब मंडप भ्रम भाँवर दीनीं ॥

छंद—दीनीं जु भाँवर कुंज मंडप प्रीति गांठ हृदय परी ।
सरद निस पून्यौ बिमल ससि निकट वृंदा सुभ घरी ॥

गाये जु गीत पुनीत सखियन वेद-रुचि मंगल ध्वनी ।
नंद सुत वृषभान-तनया रास में जोरी बनी ॥
जहाँ मन्मथ सेन बराती । तहाँ द्रुम फूले नाना भाँती ।
सुर बंदीजन यस गाये । तहाँ मघवा वाजित्र बजाये ॥
छंद—वाजित्र बाजे सब्द नभ सुर पुष्प अंजलि बरष ही ।
देव व्यौम विमान बैठे जय शब्द करकें हरष ही ॥
"सूरदास" हि भयौ आनंद पूजी मन की साधिका ।
मदनमोहन लाल दूल्हे, दुलहनी श्री राधिका ॥

११. रास—(आश्विन शु० १५) यह नित्य और अवतार लीला का उत्सव है । सूरदास के पदों में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

हा हा हो हरि नृत्य करो ।
जैसे कैं मैं तुमहिं रिझाऊं त्यों मेरौ मन तुम हू हरो ॥
तुम जैसे स्रम बाहु करत हो तैसे मैं हू डुलाऊंगी ।
मैं स्रम देखि निहारे उर कों भुज भरि कंठ लगाऊंगी ॥
मैं हारी त्योंही तुम हारे चरन चाँपि स्रम मेटोंगी ।
'सूर'स्याम ज्यों उछंग लेहु मोहि,त्योंही हँसि मैं भेटोंगी ॥

घोष-नागरी मंडल मध्य नाँचत गिरिधारी लाल,
लेत गति अनेक भाँति चरन पटकनी ।
गिडगिडता गिडगिडता ताता तत तततत थेई थेई,
बीच बीच अधर मधुर मुरलिका मटकनी ॥
भुज सों भुज जोरि जोरि लेत तान नवल किसोर,
गावत श्रीराग मिलि ग्रीव लटकनी ।
"सूरदास" प्रभु सुजान नंदनंदन कुंवर कान्ह,
मदनमोहन छवि निरखि काम सटकनी ॥

१२. अन्नकूट—(का० शु० १) यह उत्सव श्रीकृष्ण की अवतार लीला का है । सूरदास ने इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है—

अपने अपने टोल कहत ब्रजबासियाँ ॥ टेक ॥
सरद कुहू निस जानि दीपमालिका जो आई ।
गोपन मन आनंद फिरत उनमद अधिकाई ॥

एपन थापे दीजिये घर-घर मंगल-चार ।
सात बरस कौ सांवरौ हौ खेलत नंद दुवार ।। कहत०

बैठ नंद-उपनंद बोलि वृषभान पठाये ।
सुरपति पूजा जानि तहाँ चलि गोविंद आये ।।
बार-बार हा हा करें कहो बाबा यह बात ।
घर घर गोरस संचिऐ कौन देव की जात ।। कहत०

कान्ह तुम्हारी कुसल जानि यह मंत्र उपेहैं ।
खटरस व्यंजन साज भोग सुरपति कों देहैं ।।
नंद कह्यौ चुमकार कैं जा दामोदर सोय ।
बरस द्यौस कौ द्यौस है महा महोत्सव होय ।। कहत०

तब हँसि बोले लाल मंत्र बहोर्यौ फिर कीनों ।
आदि पुरुष निज जानि रैंन सुपनौ मोहि दीनों ।।
सब देवन कौ देवता गिरि गोवर्धन राज ।
ताहि भोग किनि दीजिऐ सुरपति कौ कहा काज ।। कहत०

बाढ़ै गोधन वृंद दूध दधि कौ कहा लेखो ।
यह परचौ विद्यमान नयन अपने किन देखो ।।
तुम देखत बलि खायगौ मोहों माँग्यौ फल देय ।
गोप कुसल जो चाहिऐ तो गिरि गोबर्धन सेय ।। कहत०

गोपन कियौ बिचारि सबन मिलि सकट जो साजे ।
बहु बिधि कर पकवान चले जहाँ बाजत बाजे ।।
एक बनही बन कों चले एक नंदी सुर भीर ।
एकन पेंड़ौ पावही फूले फिरत अहीर ।। कहत०

एक उबट ह्वै चले एक बनहिं बन छाये ।
एक गावें गुन गोविंद प्रेम उमँगे न समाये ।।
गोपन कौ सागर भयौ गिरि भयौ मंदरा चार ।
रत्न भईं सब गोपिका कान्ह बिलोवन हार ।। कहत०

ब्रज चौरासी कोस परे गोपन के डेरा ।
लंब चौवन कोस जहाँ ब्रज-बास बसेरा ।।
सबहिन के मन सांवरौ देखियत सबन मंझार ।
कौतुक भूले देवता आये लोक बिसार ।। कहत०

लीने विप्र बुलाय यज्ञ आरंभन कीनों ।
सुरपति पूजा मेटि राज गोवर्धन दीनो ॥
देव दिवारी स्यामही सब मिलि पूजन जाय ।
नंद प्रतीत जो चाहिऐ तौ तुम देखत बलि-खाय ॥ कहत०

प्रथमहिं दूध न्हवाय, बहुरि गंगाजल डारयौ ।
बड़ौ देवता जानि, कान्ह कौ मतौ विचारयौ ॥
जैसे हैं गिरिराज जू, तैसे अन्न कौ कोट ।
मगन भए पूजा करें, नर-नारी बड़-छोट ॥ कहत०

सहस्र भुजा उर धरें, करें भोजन अधिकाई ।
नख-सिख लों अनुहार, मानों दूसरौ कन्हाई ॥
ललिता राधा सों कहै, तेरे हृदै समाय ।
गहै अंगुरिया नंद को, सो ढोटा पूजा खाय ॥ कहत०

पीत 'दुमालौ' बन्यौ, कंठ मोतिन की माला ।
सुंदर सुभग सरीर, झलमले नयन विसाला ॥
स्याम की सोभा गिरि भयौ, गिरि की सोभा स्याम ।
जैसौ परवत भात कौ, ढिंग भैया बलराम ॥ कहत०

व्यंजन बहुत बनाय, कहां लों नाम बखानों ।
भयौ भात कौ 'कोट, ओट गिरिराज छिपानो ॥
बरा बिराजै भात पै, चंदा पटतर सोय ।
यज्ञ-पुरुष भोजन करें, सो सब देवन सुख होय ॥ कहत०

जैसी कंचनपुरी दिव्य रतनन सों छाई ।
बलि दीनी है प्रात, छांह चलि पूरब आई ॥
बदरौला वृषभान की, रही बिलोवन हार ।
ताकी बलि उन देवता, लीनी भुजा पसार ॥ कहत०

सब सामग्री अरपि, गोपि-गोपिन कर जोरे ।
अगनित कीने स्वाद, दास बरने कहा थोरे ॥
यह बिधि पूजा कीजिऐ, कह्यौ सबन समझाय ।
स्याम कह्यौ "सूरदास" सों मेरी लीला सरस बनाय ॥ कहत०

१३-गोपाष्टमी--(का० शु० ८) यह उत्सव कृष्ण की अवतार-लीला का है--

आज हौं गाय चरावन जैहों ।
वृंदावन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहों ॥
ऐसी अबहि कहो जिनि बारे ! देखो अपनी भाँति ।
तनक तनक पां चलि हौ कैसे, आवत ह्वै है राति ॥
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत है सांझ ।
तुम्हरौ बदन कमल कुम्हलैहैं रेंगत घामहिं मांझ ॥
तेरी सों मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक ।
"सूरदास" प्रभु कह्यौ न मानत, परे आपनी टेक ॥

१४-व्रतचर्या--(मार्गशीर्ष कृ० ११ से) यह उत्सव कृष्ण की अवतार-लीला का है--

ब्रज-बनिता रवि कों कर जोरें ।
सीत भीत नहिं करति छहौं ऋतु, त्रिविध काल यमुना जल खोरें ॥
गौरी-पति पूजति, तप साधति, करति रहति नित नेम ।
भोग रहित निसि जागि चतुर्दसि यसुमति सुत के प्रेम ॥
हम कों देहु कृष्ण पति ईश्वर, और नहीं मन आन ।
मनसा-वाचा-कर्मणा हमरे, "सूर" स्याम कौ ध्यान ॥

षट ऋतुओं के उत्सव--भिन्न-भिन्न ऋतुओं के उत्सवों का गायन सूरदास ने अपने पदों में इस प्रकार किया है--

१-डोल--(फा० शु० १) यह बसंत ऋतु का उत्सव है--

गोकुलनाथ बिराजत डोल ।
संग लिएं वृषभान नंदिनी पहरें नील निचोल ॥
कंचन खचित लाल-मनि-मोती, हीरा जटित अमोल ।
झुलवत यूथ मिलि ब्रज सुंदरी, हरषत करत कपोल ॥
खेलत हँसत परस्पर गावत, हो-हो बोलत बोल ।
"सूरदास" स्वामी पिय प्यारी, झूलत झुलवत झोल ॥

२-फूल मंडली--यह ग्रीष्म ऋतु का उत्सव है--

फूलन कौ महल, फूलन की सिज्या, फूले कुंज बिहारी, फूली राधा प्यारी ।
फूले वे दंपति नवल मगन फूले, करैं केलि न्यारी-न्यारी ।

फूली लता-बेलि, विविध सुमन गन फूले, आनन दोऊ हैं सुखकारी ।
"सूरदास" प्रभु प्यारी पै वारत, फूले फूल चपक-बेलि निवारी ॥

३-हिंडोरा—(श्रा० कृ० १ से) यह वर्षा ऋतु का उत्सव है-

झूलै माई गिरिधर सुरंग हिंडोरे ।
रतन जटित पटुली पर बैठे, नागर नंद किसोरे ॥
पीत बसन घनस्याम मनोहर, सारी सुरंग ही बोरें ।
अंसन बाहु परस्पर जोरे, मंद हसन पिय ओरें ॥
घोष-नारि मिलि गावें चहुँ दिस, झुलवति थोरे-थोरें ।
'सूर' प्रभु गिरिधरन लाल छवि ब्रज जुवतिन चित्त चोरें ॥

४-रास—(आश्विन शु० १५) यह शरद् ऋतु का उत्सव है-

(१) रिझवति पिय ही बारंबार ।
निरखि नयन लजात पिय के, नहीं सोभा पार ॥
चाल स्वल्प, गज-हंस मोहत, कोक-कला प्रवीन ।
हँसि परस्पर तान गावत, करत पिय आधीन ॥
सुनत बन-मृग होत व्याकुल, रहत चित्रित आय ।
'सूर' प्रभुवस किए नागर महा, जानि सिरोमन राय ॥

(२) रीझे परसपर नर-नारि ।
कंठ भुज भुज धरे दोऊ, सकत नहिं निरवारि ॥
गौर-स्याम कपोल सोभा, अधर अमृत धार ।
परसपर दोउ पीय-प्यारी, रीझि लेत उगार ॥
'प्रान एक द्वै देह कीनी,' भक्ति-प्रीति प्रकास ।
'सूर' स्वामी स्वामिनी मिलि करत रंग बिलास ॥

जागरण व्याह—(कार्तिक शु० ११) यह हेमंत ऋतु का उत्सव है—

अहो मेरी प्रान पियारी । भोर ही खेलन कहाँ सिधारी ॥
कुमकुम भाल तिलक किन कीनों । किन मृगमद कौं बेंदा दीनों ॥
बेंदा जू मृगमद दियौ मस्तक, निरखि ससि संसय परयौ ।
सरद निसा कौ कला पूरन, मैन नृप कौ मद हरयौ ॥
बिहँसि कै मुख कहति जननी, अलप बैनी किन गुही ।
"सूर" के प्रभु मोहिवे कों, रची मनमथ की तुही ॥

नंदमहरि की तरुनीय सोहै। मेरौ बदन फिर-फिर कर जोहै
खेलत डोलत ढिंग बैठारी। कछु मन में आनंद कियौ भारी ॥

आनंद मन में कियौ भारी, निरख सुत विह्वल भई ।
बाबाजू कौ नाम लै-लै, तोहि हँसि गारी दई ॥
पाटी जु पार, सँवार भूषन, गोद में मेवा भरी ।
"सूर" के प्रभु निरखि मनमें, बिधना सों बिनती करी ॥

सुनि यह बात कीरति मुसिकानी। मैं ब्रजरानी के जिय की जानी ॥
मेरी सुता है रूप की रासी। वे तौ कान्ह बनबासी उपासी ॥

कान्ह बनबासी उपासी, रंग-ढंग ये क्यों बनें ।
मेरे ढिंग तौ रत्न अमोलक, काँच कंचन क्यों सनें ॥
ललिता-विसाखा सों कह्यौ, तुम लली त्यजि कित हू गईं ।
"सूर" के प्रभु भवन बाहिर जान दीजो मत कहीं ॥

दिन दस-पाँच अटक जब कीनी। सुंदर स्याम दिखाई दीनी ॥
मुरझि परी तब सुधि न सँवारे। प्यारी डसी भुजंगम कारे ॥

कारे भुजंगम डसी प्यारी, गारुड़ी हारे सबै ।
नंदनंदन मंत्र बिन सखि, यह विष क्यों हू ना दबै ॥
मनुहार करि मोहन को लाई, सकल विष देखत हने ।
'सूर' के प्रभु जोरि अविचल, जीवो जुग-जुग दोउ जने ॥

उठि बैठी तब बदन सँभारे। कछु मोहन तन हँसत निहारे ॥
सुर बैठी मन भयौ हुलासा। कीर्ति गई पति अपने जू पासा ॥

अपने जु पति पै गई कीर्ति, प्रीत की रीति विचार ही ।
मंत्र कीयौ ब्याह कौ सब सखी मंगल गावही ॥
वृंदा जु बन में रच्यौ स्वयंवर, पुष्प मंडप छाइयो ।
"सूर" के प्रभु स्याम दूल्हे, श्री राधिका बर पाइयो ॥

बिधिना विधि सब कीनी। मंडप करिकैं भाँवर दीनीं ॥
विविध कुसुम बरसाये। तहाँ मानिनी मंगल गाये ॥

गावें जु भामिनी मिलि कैं मंगल कहत कंकन छौरियो ।
नहीं होय यह गिरि उचक लेवो लाल हँसि मुख मोरियो ॥
छोरयौ न छूटै डोरना यह, प्रीति-रीति ग्रंथी कही ।
"सूर" के प्रभु युवति-जन मिलि, गारी मन भामति दई ॥

६ होली—(फाल्गुन शु० १५) यह शिशिर ऋतु का उत्सव है।

म्यामजू होरी खेलन आई।

ललिता चंद्रभागा चंद्रावलि, सखी अनेक सुहाई॥
जब यह बात सुनी जसोदा जू, अरघ पाँमड़े दीने।
लाल भाँमती जोरी लखि, मन मांझ बधाई कीने॥
फूली-फूली फिरत सखी सब, पकरन मदन गोपालें।
फिर-फिरि कहति रोहिनी अब जिन, भरो नंद के लालें॥
यह सुनि ललिता और चंद्रावलि, बलदाऊ गहि लीने।
मृगमद-आड़ सँवार मांड मुख, भू पर बिंदा दीने॥
भीजी नाना विधि के रंगन, बोलत हो-हो होरी।
अब गहि लेहु चलो मोहन कों, यों दुर कहति किसोरी॥
चली दौरि चहुँ दिस तें सुंदरि, चढ़ि गईं अटा अटारी।
बैठे हुते जहाँ मनमोहन, घेर लिए चित्रसारी॥
पकरयौ प्यारौ प्यारी छल करि, भेष सखी कौ कीनों।
आंख आंजि केसर मुख मांड्यो, मृगमद बेंदा दीनों॥
एक सखी कुसुमन सों कबरी, नाना विधि जु सँवारी।
सिंदुर मांग भरी ता ऊपर, मोतिन की लर न्यारी॥
नीलांबर पहरायौ रीझि, पहराई मनि-माला।
स्यामा याकौ नाम धरयौ है, यों कहति मुदित ब्रजबाला॥
सब सहचरि मिलि लाई ताकों, नंदरानी के पास।
यह सुंदरि हम लाई हैं जू, घनस्याम मिलन की आस॥
देखि रूप ललचाय जसोदा, करति बहुत मनुहारी।
बार-बार न्यौछावरि करिकै, पीवत है जलवारी॥
जब यह भाव लख्यौ सबही मिलि, सखी भेष यह कीनों।
नाना विधि पट बारि और मन मान्यौ फगुवा दीनों॥
भए दुहुन के भाये मन के, पिय-प्यारी रस भीने।
जे-जे हुती कामना मन में, जैसी विधि सुख दीने॥
छाय रह्यो अनुराग परस्पर, कहा बरनें, कवि कौन।
देव विमानन फूलन बरषत, सोभित है नंद-भौन॥
चतुर सखा श्रीदामा तब एक, भेष सखी कौ लायौ।
सखी-यूथ में आय मिल्यौ, यह भेद न काहू पायौ॥

मिली दौरि चंद्रावलि तासों भटू-भटू कहि टेरी ।
आलिंगन दै ढिग बैठारी, मुदित बदन तन हेरी ॥
जानि गई यक भेष कपट कौ, सकुछ रही मन ही में ।
विहँसि मिली प्यारी प्रीतम सों, ज्यों दामिनि घन ही में ॥
स्यामा-स्याम दोऊ सुख बिलसत, प्रेम बुद्धि अरुझाने ।
'सूरदास' ब्रजबासिन के बस और कछू नहीं जाने ॥

लोक-त्यौहार—सूरदास ने लोक-त्यौहारों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. रक्षाबंधन—(श्रावण शु० १५) यह मुख्य रूप से ब्राह्मणों का त्यौहार माना जाता है—

राखी बँधावत मगन भए ।
दछिना बहुत द्विजन कों दीनीं, गोप हँकार लए ॥
कुंज-निकुंज श्रीवृंदाबन के, बिहरत अनंत ठए ।
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, उपजत मोद नए ॥
यह कौतुक देखत सुर-नर-मुनि, बरषत कुसुम छए ।
"सूरदास" राधा-ललितादिक, देखत ओट दए ॥

२. दशहरा—(आश्विन शु० १०) यह मुख्य रूप से क्षत्रियों का त्यौहार माना जाता है—

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पार ।
सिव के सीस लागे, कमठ पीठ पर धसे गिरिवर सबै तासु मार ।
सोच लाग्यौ करन कहाँधौं जानकी कोउ या ठौर नहिं मोहि चिन्हार ॥
लंक गढ मँहि आकास मारग गयौ, चहुँ दिस बज्र लागे किवार ।
पौरि सब देखि, असोक बन में गयौ, निरखि सीता छिप्यौ वृक्ष-डार ॥
'सूर' तहाँ आकास बानी भई, तहाँ है इहाँ जानकी करि जुहार ।

३. दीपावली—(कार्तिक कृ० १५] यह मुख्य रूप से वैश्यों का त्यौहार माना जाता है—

आज दिव्य दीप-मालिका ।
मानों कोटि रवि, कोटि चंद छवि बिमल भई निसि कालिका ॥
गज-मोतिन के चौक पुराये, बिच-बिच बज्र प्रवालिका ।
गोकुल सकल चित्र-मनि मंडित, सोभित झाल झमालिका ॥
पहरि सिंगार बनी राधा जू, संग लिऐं ब्रज बालिका ।

झलमल दीप समीप, सोंज भर कर लिऐं कंचन-थालिका ॥
पाये निकट मदन मोहन पिय, मानों कमल अलि-मालिका ।
आपुन हंसत, हँसावत ग्वालन, पटक-पटक दै. तालिका ॥
नंद भवन आनंद बढ्यौ अति, देखत परम रसालिका ।
'सूरदास' कुसुमन सुर बरसत, कर अंजुलि पुटि भालिका ॥

४. हटरी—

सुरभी कान्ह जगाय खरिक, बल-मोहन बैठे राजत हठरी ।
पिस्ता, दाख, बदाम, छुहारे, खुरमा, खाजा, गुंजा, मठरी ॥
घर-घर तें नर-नारि मुदित मन, गोपी ग्वाल जुरे बहु ठठरी ।
टेर-टेर लै देत सबन कों, लै-लै नाम बुलाय निकट री ॥
देति असीस सकल गोपीजन, यसोमति देति हरषि बहु पट री ।
'सूर' रसिक गिरिधर चिरजीवो, नंदमहरि कौ नागर नट री ॥

होली—(फाल्गुन शु० १५) यह मुख्य रूप से शूद्रों का त्यौहार माना जाता है ।

सब दिन तुम ब्रज में रहो हरि, होरी है, कबहुँ न मथुरा जाउ ।
पर्व करो घर आपने हरि, होरी है, कुसल केलि निवाहउ ॥ हरि०
परवा पिय चलिऐ नहीं हरि० । सब सुख कौ फल फाग । अहो०
प्रगट करो अब आपुनौ हरि० । अंतर कौ अनुराग ॥ अहो०
मानों द्विज दिन सोधि कै हरि० । भूपति कीयौ काम । अहो०
ससि रेखा सिर तिलक दै हरि० । सब कोउ करै प्रनाम ॥ अहो०
कनक सिंहासन बैठिकै हरि० । युवतिन के उर आन । अहो०
अलक चमर अंचल ध्वजा हरि० । घूँघट आन पतान ॥ अहो०
फागुन मदन महीपति हरि० । इहि विधि करि हैरान । अहो०
'पंद्रह तिथि भर' बरन हों हरि० । सादर क्रिया समाज ॥ अहो०
तीज तिहूँ पुर प्रगट्यौ हरि० । अपनी आन नरेस । अहो०
सुन मग-मग डफ दुंदुंभी हरि० । सोई करिऐ सब देस ॥ अहो०
चौथ चहूँ दिस चालिऐ हरि० । यह अपनी इक रीति । अहो०
मेरे गुन कहे निर्लज्ज ह्वै हरि० । छाँड़ि सकुच कुल नीति ॥ अहो०
पाँचै परमित परिहरो हरि० । चलहु सकल इक चाल । अहो०
नारि-पुरुष एकत्र करो हरि० । वचन प्रीति प्रतिपाल ॥ अहो०

छट्ठ छै राग छै रागिनी हरि० । ताल तान बंधान । अहो०
चतुर चरित रतिनाथ के हरि० । सिखवो अति अभिधान ॥ अहो०
सातैं सुन सब सज चले हरि० । राजा की रुचि जान । अहो०
करत क्रिया तैसी सबैं हरि० । आयुध माथे मान ॥ अहो०
आठैं डर उन मान कैं हरि० । सबन मतौ मत्यौ एक । अहो०
नृप जु कहै सोई कीजिऐ हरि० । क्यों राखिऐ विवेक ॥ अहो०
नवमी नवसत साजि कैं हरि० । कर सुगध उपहार । अहो०
मानों चले मिलि मेरकैं हरि० । मनसिज भवन जुहार ॥ अहो०
दसैं दसों दिसि सौधि कैं हरि० । बोले राजा राय । अहो०
जग जीत्यौ बल आपुने हरि० । ज्ञान वैराग्य छुड़ाय ॥ अहो०
सुन आई एकादसी हरि० । बोले सब सिर नाय । अहो०
ढोल भेरि डफ बांसुरी हरि० । पटह निसान बजाय ॥ अहो०
देख भले भट्ट आपुने हरि० । द्वादशी द्यौस बिचारि । अहो०
काज करौ रुचि आपने हरि० । ह्वै निसंक नर-नारि ॥ अहो०
रथ रावक पावक सजे हरि० । खरन भये असवार । अहो०
धूर धातु घट रंग भरे हरि० । करम यंत्र हथियार ॥ अहो०
जहाँ तहाँ सेना चली हरि० । मुक्त कच्छ सिर केस । अहो०
आप आप सूझे नहीं हरि० । राजा रंक आवेस ॥ अहो०
जहाँ सुनत तपी संयमी हरि० । धर्म धीर आचार । अहो०
छिरकें जाय निसंक ह्वै हरि० । तोरे पकरि किंवार ॥ अहो०
जे कबहू देखी नहीं हरि० । कबहू सुनी नहिं कान । अहो०
तिन कुल-बधू नारीन के हरि० । लागे पुरुष परान ॥ अहो०
धाय धरे बल कुल-बधू हरि० । पर-पुरुष नहीं पहचान । अहो०
मात पिता पति बंधु की हरि० । छूटि गई सब कान ॥ अहो०
भस्म भरें अंजन करें हरि० । छिरकत चंदन बार । अहो०
मर्यादा राखें नहीं हरि० । कटि पट लेहिं उतार ॥ अहो०
तेरस चौदस मास में हरि० । जग जीत्यौ डर डार । अहो०
सठ पंडित वेस्या बधू हरि० । सबै भए इकसार ॥ अहो०
पून्यौ प्रगट प्रताप तें हरि० । दुरे मिले पाँ लाग । अहो०
जहाँ तहाँ होरी लगी हरि० । मानों मवासिन आग ॥ अहो०
सब नाँचें, गावें सबै हरि० । सबहिं उड़ावें छार । अहो०
साधु-असाधुन पेख ही हरि० । बोले वचन विकार ॥ अहो०

अति अनीति मति देखिकें हरि० । परिवा प्रगटी आन । अहो०
विमल बसन ज्यों स्याम कों हरि० । मर्यादा की कान ॥ अहो०
आवत ही विनती करी हरि० । उठि जोरे हँसि हाथ । अहो०
वर्न बर्म सब राखिऐ हरि० । कृपा करहु रतिनाथ ॥ अहो०
आज्ञा दई रतिनाथ ने हरि० । नृप समझो मन माह । अहो०
जाय धर्म अपुने चलो हरि० । बसो हमारी बांह ॥ अहो०
"सूर" कहाँ लगि बरनिऐ हरि० । मनसिज के गुन ग्राम । अहो०
सुनो स्याम यह मास में हरि० । किो जु कारन काम ॥ अहो०
कान्ह कृपा करि घर रहे हरि० । बरजे मथुरा जात । अहो०
सरस रसिक मनि राधिका हरि० । कही कृष्ण सों बात ॥ अहो०

वैदिक पर्व—सूरदास ने वैदिक पर्वों का वर्णन अपने काव्य में इस प्रकार किया है—

१. मकर संक्रांति –(गेंद के भाव का)

रुत लिन तैं मेरी गेंद चुराई ।
खेलत आन परी पलका बिच, अँगिया मांझ दुराई ॥
भुज पकरत मेरी अँगिया टटोवत, ऊबत छतियाँ पराई ।
"सूरदास" मोहि यही अचंभौ, एक गई द्वै पाई ॥

२. ज्येष्ठाभिषेक--स्नान यात्रा—(जल विहार के भाव का)

यमुना जल गिरिधर करत विहार ।
आसपास युवती मिलि छिरकति हँसति, कमल मुख चारु ॥
काहू की कंचुकी बंद टूटे, काहू के टूटे हार ॥
काहू के बसन पलट मनमोहन, काहू अंग न संवार ॥
काहू की खूभी, काहू की नकबेसरि, काहू के बिथुरे बार ॥
"सूरदास" प्रभु कहाँ लौं बरनौं, लीला अगम अपार ॥

अन्य अवतारों की जयंतियां—भगवान् श्री कृष्ण के मुख्य २४ अवतार माने गये हैं । इनमें भक्तिमार्ग से संबंधित केवल चार अवतार प्रधान हैं—राम, नृसिंह वामन और कृष्ण । इन चारों ने भक्तों के उद्धार के कई पुष्टि-कार्य किये हैं; इसलिए इन चारों की जयंतियाँ पुष्टि-मार्ग में भी मानी जाती हैं ।

सूरदास ने इन जयंतियों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. राम जयंती—(चैत्र० शु० ९)

आज दसरथ कैं आनंद भीर।
आए भुव-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम सरीर॥
फूले फिरत अयोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परस्पर, आनंद नैननि नीर॥
त्रिदश नृपति ऋषि व्योम विमाननि देखत रहे न धीर।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै हरी सबन की पीर॥
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल "सूर" सब याचक, जे याचे रघुवीर॥

२. नृसिंह जयंती—(चैत्र शु० १४)

तौलौं हौं बैकुंठ न जैहों।
सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जौलौं तो सिर छत्र न दैहों॥
मन कर्म बचन मान जिय अपने, जहीं जहीं जानें तहीं तहीं लैहों।
निर्गुन सगुन हेरि सब देखे, तो सौ भक्त मैं कबहू न पैहों॥
मो देखत मेरौ दास दुखित भयौ, यह कलंक अब ही जु चुकैहों।
हृदय कठिन पाषान है मेरौ, अब ही दीन-दयाल कहैहों॥
गहि तन हिरनकस्यपु कों चीरों, उदर फारि नख रुधिर बहैहों।
यह सुनि बात तात अब "सूरज" यह कृत कौ फल तुरत चखैहों॥

३. वामन जयंती—

द्वारें ठाढ़े हैं द्विज बामन।
सुनत बचन हिरदै सुख उपज्यौ, भयो कहाँतें आवन॥
चरन धोइ चरनोदक लीनों, कह्यौ विप्र मन भावन।
तीन पैंड़ धरती हौं माँगों, परम कुटी एक छावन॥
अहो विप्र! कहा तुम माँग्यौ, बहुत रत्न देहुँ गाँवन।
"सूर" सुबल हरि सर्वस्व लीनों, दियौ पीठ पग पावन॥

४. कृष्ण जयंती—(भाद्रपद कृ० ८)

देखो अद्भुत अविगत की गति कैसौ रूप धरयौ है।
तीन लोक जाके उदर बसत हैं, सो सूप के कौन परयौ है॥

नारदादि-ब्रह्मादिक सब जाकों सकल विश्व सर सांधे ॥
ताकों नार छेदत ब्रज-जुवती, बांटि तगा सों बांधे ॥
जा मुख कों सनकादिक लोचन, सकल चातुरी ठानें ।
सोई मुख निरखति महरि-जसोदा, दूध लार लपटानें ॥
जिन स्रवनन सुनि गज की आपदा, गरुड़ासन बिसराए ।
तिन स्रवनन के निकट जसोदा, गाए अरु हुलराए ॥
जिन भुजन प्रहलाद उबारयो, हिरनाकुस उर फारे ।
तेई भुज पकरि कहति ब्रज गोपी, नाँचो नैक पियारे ॥
अखिल लोक जाकी आस करत हैं, सो माखन देखि अरे हैं ।
सोई अद्भुत गिरिवरहु तें भारे, पलना मांझ परे हैं ॥
सुर-नर-मुनि जाको ध्यान धरत है, संभु समाधि न टारी ।
सोई प्रभु "सूरदास" कौ ठाकुर, गोकुल-गोप विहारी ॥

सेवा के विविध अंग—पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रधान अंग तीन हैं—भोग, राग और शृंगार। प्रत्येक मनुष्य का जीवन इन तीन विषयों से सदा सर्वदा येन केन प्रकारेण संबंधित रहता ही है, इसलिए श्रीबल्लभाचार्य जी ने इन तीनों विषयों को भगवान की सेवा में लगा कर इनको भी भगवद्रूप कर दिया है। श्रीकृष्ण से संबंधित इन विषयों के कारण प्रत्येक व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए भी जीवन मुक्त हो सकता है। श्रीमद्भागवत में कहा है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौविदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ (१०-२९-१५)

अर्थात्—काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृदभाव इनमें से कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय, तो वह लौकिक रूप छोड़ कर ईश्वर मय होता है। इसी आधार पर आचार्य जी ने काम स्वरूप उक्त भोग, राग और शृंगार को श्री कृष्ण की सेवा में लगा कर उन्हें इस प्रकार से भगवद्रूप कर दिया है। यहाँ पर इन तीनों का कुछ परिचय दिया जाता है—

१. **भोग**—खान-पानादि के उत्तमोत्तम पदार्थों को सुंदर प्रकार और शुद्ध रूप से तैयार कर बाल-किशोर भावनानुसार इन्हें विधि पूर्वक श्रीकृष्ण को समर्पित करना 'भोग' कहलाता है। समर्पित होजाने के अनंतर इसे 'प्रसाद'

कहते हैं। इससे भक्त अपना जीवन निर्वाह कर सकता है। इस प्रकार के निर्वाह मात्र से वह सहज में दुर्जय माया को भी पार कर जाता है। उद्धव जी श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कंध में श्रीकृष्ण के प्रति कहते हैं कि—

"उच्छिष्ट भोजिनोदासास्तव मायां जयेमहि।"

इस आधार पर आचार्यजी ने सेवा में भोग को प्राधान्य दिया है।

सूरदास के पद में भोग की विविध सामग्रियों के नाम तथा उनकी विधि इस प्रकार उपलब्ध होती है—

भोजन भयौ भाँवते मोहन। तातौ ही जेंय जाहुगे मोहन॥
खीर खाँड़ खीचरी सँवारी। मधुर महेरि गोपन कों प्यारी॥
'रायभोग' लीनों भात पसाय। मूँग दरहरी हींगु लगाय॥
सद माखन तुलसी दै छायौ। घृत सुवास कचौरिन नायौ॥
पापर बरी अचार परम सुचि। अद्रक अरु निंबु अनि ह्वै है रुचि॥
सूरन करि तरि सरिस तोरई। सेंम साँगरी झमकि झोरई॥
भरता भटा खटाई दीनीं। भाजी भली भाँति दस दीनीं॥
साग चना मरसा चौराई। सोवा अरु सरसों सरसाई॥
बथुवा भली भाँति रचि राँध्यौ। हींग लगाय ल्याय दधि माँध्यो॥
पोई परवर साग फरी चनि। टेंटी ढ़डस छौंकि लए पुनि॥
कंदुरी और कँकोरा कोरे। कचरी चारि चँचेंड़ा सोरे॥
बने बनाय करेला कीने। लोंन लगाय तुरत तरि लीने॥
फूले फूल सहेंजना छौंके। मन रुचि होय नाज के औंके॥
फूल करील कली पाकरि त्रम। फरी अगस्त करी अमृत सम॥
अरु यह आमली दई खटाई। जेंबत कटुरस जात लटाई॥
पैंठा बहुत प्रकारन कीनों। तिनतौ सर्व स्वाद हरि लीने॥
खीरा राम तुरया तामें। अरु बिन रुचि अंकुर जिय जामें॥
सुंदर रूप रतालू रातौ। तरि है लीनौ अबही तातौ॥
ककरी, ककरा अरु कचनारयौ। सरस निमोमनि स्वाद सँवारयौ॥
कैइक भाँति केरा करि लीनों। दै करि डभ हरदी रंगभीनों॥
बर घरिल अरु बरा बहुतबिधि। खारे खाटे मीठे पय निधि॥
पानी नारायतौ पकौरी। डभकौरी मुगछी सुठि सौरी॥
अमृत इंदर रहे रस सागर। बेसन सालम अधिकौ नागर॥

खाटी कढ़ी विचित्र बनाई। बहुत बार जेंवत रुचि आई ॥
गोटी रुचिर कनिक बेसन करी। अजवाइन सौंधों मिलं यों धरी ॥
अथ ही अँगाकरी तुरत बनाइ। जे भजि भजि ग्वालन संग खाई ॥
मोंडो मोंड़ दुतेरे चुपरौ। बहु घृत पाइ आपहीं उपरौ
पुरी सपूरि कचौरी कोरी। सदलस उज्ज्वल सुंदर सोरी ॥
लुचई ललित लापसी मोहैं। स्वाद सुवास सहज मन मोहै ॥
मालपुवा माखन मथि कीने। ग्राह ग्रसित रवि सासर लीने॥
लावन लाडू लागत नीके। सेव सुहारी घेवर घी के ॥
गूँझा गूँदे गाल मसूरी। मेवा मिले कपूरन पूरी ॥
ससि सम सुंदर सजल इंदरसौ। ऊपर कनी अजनु जनु बरसौ
बहुत जलेब-जलेबी बोरी। नाँहिन घटत सुधा सों थोरी ॥
देखत हरषत होत हैं सभी। मनहुँ बुद बुदा उपजे अमी ॥
फैनी मिली धूरि पय संगा। मिश्री मिश्रित भई एक रगा ॥
साज्यौ दह्यौ अधिक सुखदाई। ता ऊपर पुनि मधुर मलाई ॥
खोबा खोई अबटि ह्वै राख्यौ। सोई मधुर मीठौ रस चाख्यौ ॥
छाछि छबीली छबि धुंगारी। झर है उठत झार की न्यारी ॥
इतने यतन यसोदा कीने। तब मोहन बालक संग लीने ॥
बैठे आय हँसत दोऊ भैया। प्रेम मुदित परसति हे मैया ॥
थार कटोरा जटित रतन के। भरि सब सालन विविध यतन के ॥
पहिलै पनवारौ परुसायौ। तब आपुन कर कौर उठायौ ॥
जेंवत रुचि अधिकौ अधिकैया। भोजन बहुर बिसरत नहीं गैया ॥
सीतल जल कपूर रस रच्यौ। सो मोहन निज कर रुचि अचयौ ॥
महिर मुदित मन लाड़ लड़ावै। ये सुख कहाँ देवकी पावै ॥
धरि तष्टि गडुवा जल लाई। भरयो चुतूखरिका ल आई ॥
पीरे पान पुराने बीरा। स्वाद भई दुति दाँतन हीरा ॥
मृग मदकन कपूर कर लीनों। बाँटि-बाँटि ग्वालन कों दीनों॥
चंदन और अरगजा आन्यौ। अपुने कर बल के अंग बान्यौ ॥
ता पाछै आपुन हू लायौ। उबरयौ बहुत सखन पुनि पायौ।
'सूरदास' देख्यौ गिरिधारी। बालि दई इसि जूठन थारी ॥

२. राग—यह कीर्तन भक्ति का मुख्य अंग है। भगवान् का कीर्तन राग में करने से मन को शीघ्र एकाग्रता होती है, इसलिए यह निरोध का साधक

है। इससे जो सुख मिलता है, वह जप, तप, तीर्थ आदि से भी प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य जी ने निरोध के उद्देश्य वाली पुष्टिमार्गीय सेवा की कीर्तन-प्रणाली में राग का प्राधान्य रखा है। नाना प्रकार के वाद्य-यंत्रों द्वारा विविध रागों में श्री कृष्ण का गुणानुवाद गाना ही कीर्तन कहलाता है। सूरदास ने कीर्तन की महिमा को इस पद में इस प्रकार गाया है—

जो सुख होत गोपालहिं गाये।
सो नहिं होत जप-तप-व्रत-संयम, कोटिक तीरथ न्हाये॥
दिये लेत नहीं चार पदारथ, चरन कमल चित लाये।
तीन लोक तृन सम करि लेखत, नंदनंदन उर आये॥
बंसीवट वृंदावन यमुना, तजि बैकुंठ को जाये।
"सूरदास" हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव चलि आये॥

सूरदास ने प्रायः प्रत्येक राग में हरि-यश वर्णन किया है। उन्होंने कीर्तन में विविध शैलियों और छंदों का भी उपयोग किया है। 'सूरसारावली' में निम्नलिखित रागों के नाम मिलते हैं—

ललिता ललित[1] बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने।
जानि प्रभात राग पंचम[2], षट[3], मालकोस[4] रसभीने॥
सुर हिंडोल[5], मेघमालव[6] पुनि, सारंग[7], सुर नट[8] जान।
सुर सांवत[9], भूपाली[10], ईमन[11], करत कान्हरौ[12] गान॥
ऊंछ अडाने[13] के सुर सुनियत, निपट नायकी[14] लीन।
करत बिहार[15]*, मधुर केदारौ[16], सकल सुरन सुख दीन॥
सोरठ[17], गौड मल्हार[18] सोहावन, भैरव[19] ललित[20] बजायौ।
मधुर बिभास[21], सुनत बेलावल[22]‡ दंपति अति सुख पायौ॥
देवगिरी[23], देशांक[24], देव[25]†, पुनि गौरी[26], श्री[27] सुखबास।
जैतश्री[28] अरु पुर्वी[29], टोड़ी[30], आसावरी[31] सुखरास॥
रामकली[32], गुनकली[33], केतकी[34] सुर सुघराई[35] गाये।
जैजैवंती[36], जगत मोहनी, सुर सों बीन बजाये॥
सूआ[37] सरस, मिलत प्रीतम, सुखसिंधु वीर-रैस मान्यौ।
जान प्रभात प्रभाती[38] गायौ, भोर भयो दोउ जान्यौ॥

---

* बिहाग ‡ बिलावल † देवगंधार।

३. शृंगार श्री वल्लभाचार्यजी ने सेवा में शृंगार को भी स्थान दिया है। विविध अलंकारों से भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को सुंदर प्रकार से अलंकृत करने से चित्त का आकर्षण होता है। इससे उस स्वरूप में चित्त निरुद्ध होजाता है। आचार्यजी कहते हैं--

श्रीकृष्णं पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोपचारकैः ।
यथा सुंदरतां याति वस्त्रैराभरणैरपि ।
अलङ्कुर्वीत सप्रेम तथा स्थान पुरःसरम् ॥ निबंध)

अर्थात्--यथालब्ध द्रव्य से उपचारों द्वारा श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए। वस्त्रों और आभरणों से भी जिस प्रकार श्रीकृष्ण के स्वरूप का सुंदर दर्शन हो, उस प्रकार अंगों के स्थान पुरःसर अलंकारादि शृंगार सप्रेम करना चाहिए।

बाल भाव और किशोर भाव को प्रकट करने के लिए संप्रदाय में विविध शृंगार की व्यवस्था की गयी है। इनमें मुख्य आठ हैं, जिनके नाम ये हैं--

१ मुकुट, २ सेहरा, ३ टिपारा, ४ कुल्हे, ५ पाग, ६ दुमाला, ७ फेंटा और ८ पगा (ग्वालापगा)। ये आठ शृंगार भगवान् के श्रीमस्तक के हैं।

इन आठ शृंगारों के अंतर्गत क्रीट, खूंप, चंद्रिका, तुर्रा, कतरा आदि और भी शृंगार श्रीमस्तक पर धराये जाते हैं। इसी प्रकार भगवान् के कंठ, हस्त, कटि, चरण मुख आदि के भी शृंगार हैं, जिनके नाम ये हैं--

कंठ के--कंठश्री, दुलरी, तिलरी, हमेल, हाँस, बघनखा, पचलरा हार, सतलरा हार, नौसर हार, चौकी, पदक आदि।

हस्त के—बाजू, पहोंची, कंकन, मुद्रिका, हस्त फूल आदि।

कटि के—क्षुद्र घंटिका, कटिपेच आदि।

चरण के--पायल, नूपुर, जेहर, बिछिया, पग पान, अनवट आदि।

मुख के--नकबेसर (नासिका में) चिबुक (ठोड़ी पर) मकराकृत आदि कुंडल, ताटंक, सीसफूल आदि।

वस्त्रों के नाम—आड़बंद, परदनी, मलकाछ, काछनी, पीतांबर, तनिया, पिछोरा, चाकदार, घेरदार, खुलेबंद, चोली आदि।

सूरदास ने शृंगार संबंधी अनेक पदों की रचना की है। इनमें से कुछ पद यहाँ पर दिये जाते हैं—

१. मुकुट का—

(१) मोर-मुकुट कटि काछनी, जननी पहरावै।
स्याम अंग भूषन सजे, बिन्दुका जु बनावै॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर बैनु गहावै।
मुसकनि में मन हरि लियौ, सिसुताई जनावै॥
ब्रज-बनिता आई तहाँ, दर्पन दरसावै।
भोग अर्प बीरा दिए, सुख "सूर" बढ़ावै॥

(२) मोर-मुकुट मकराकृत कुंडल, नैन विसाल कमल तें आछे।
मुरली अधर धरें सीखत हैं, बनमाला पीतांबर काछे॥

(क्रीट)

(३) सुंदर बदन देख्यौ आज।
क्रीट-मुकुट सुहावनौ, मन भावनौ ब्रजराज॥
लियौ मन आकर्ष, मुरली रहि अधर पर गाज।
पलक ओट न चाह चित, लखि महा मनोहर साज।
गोपीजन तन-प्रान वारति, रह्यौ मनमथ लाज।
"सूर" सुत यह नंदकौ, श्रीबल्लभ-कुल† सिरताज॥

२. सेहरा का—

(१) ललित लाल कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ मेरी माई।
हरषि-हरषि गोपी गावहीं, यह सुख देखोरी माई॥
अलकें ललकें बदन पर, मरवट मुख ही बनाई।
सोभा सीमा हुलसि कै, उमगी सुंदरताई॥
कुमकुम बेंदी भाल पर, ससी उद्योत सुहाई।
मुक्ता आछे तन जलद में, उडुगन देत दिखाई॥
भ्रकुटी कुटिल मन मोहिनी, मोहन है सुखदाई।
बागे बीरे अति बने, छबि सों चतुराई ठाई॥
जननी नौछावरि करै, बाजे बजत बधाई।
सुर-बनिता बिथकित भईं, रस-मूरति है पाई॥

† श्री बल्लभ-कुल से यहाँ पर गोप-कुल का अभिप्राय है।

धनि जसोमति-सुत सांवरौ, दूलह कुँवर कन्हाई।
राजकुमारी प्यारी राधिका, नव दूलह हो वर पाई॥
यह जस गावै सारदा, जिनके भाग बड़ाई।
यह आनंद जिनके हिऐं "सूरदास" बलि जाई॥

[सेहरा का भाव]

(२) आज बने गिरिधारी दूल्है, चंदन कौ तन लेप किऐं।
सकल सिंगार बने मोतिन के विविध कुसुम की माल हिऐं॥
खासा कौ कटि बन्यौ है पिछौरा, मोतिन सेहरौ सीस धरें।
राते नैन बंक अनियारे, चंचल खंजन मान हरें॥
ठाड़े कमल फिरावत गावत, कुंडल स्रम-कन बिंदु परें।
"सूरदास" मदन मोहन मिलि, राधा सों रति-केलि करें॥

३. कुल्हे का—

बलि-बलि मदन गोपाल।
रंग महल में आज बिराजत, सीस कुल्हे सोहै लाल॥
प्यारी सँग बतियाँ रतियाँ की, करत हँसावत बाल।
"सूरदास" प्रभु आतुर बिलसन, पहिरत अंक उरमाल॥

४. फेंटा का—

(१) लाल कौ फेंटा ऐंटा अमेंटा बन्यौ,
भ्रकुटी भाल पर नवल नंदलाल के।
आवत बन तें बने सांझ सुरभीन मांझ,
अटक लटकन रही डगन ब्रजबाल के॥
चलत गजगति चाल, मन हरत,
बाहु अंस धरें सखा प्रिय ग्वाल के।
"सूर" गोपीजन-जूथ, जुरि द्वार-द्वार खरीं,
निरखि नंदलाल जुबती-जन जाल के॥

(२) धरयौ सिर फेंटा आज पचरंगी।
एक छोर दच्छिन सिर सोभित, ता पर कतरा कलंगी॥
बागे गाढ़े प्रेम रंग बाढ़े, आवत गोधन संगी।
"सूरदास" प्रभु गोकुल जीवन, मोहन लाल त्रिभंगी॥

(३) मोहन निरखि सिराई अँखियाँ।
फेंटा सीस सुरंग लाल के, छबि न जात तन लखियाँ॥
कुंजन द्रुम-द्रुम मुरवा नाँचें, करि करि ऊँची पँखियाँ।
"सूरदास" प्रभु सघन घटा में, तन-मन वारत सखियाँ॥

४. पगा का—

सुंदर स्याम सलौनौ ढोटा, डारि गयौ मोपै मदन ठगोरी।
निर्तत आवत, बैन बजावत, संग सखा हलधर की जोरी॥
कबहुँक गेंदन मार मवावत, ग्वाल भजावत हैं चहुँ ओरी।
चंचल नैन नचावत आवत, कबहुँक आय होत एक रोरी॥
कुंडल लोल,लोल लोचन छबि,सीस पगा ओढ़ै पीत पिछोरी।
'सूरदास' प्रभु मोहन नागर, कहा री कीनीं चित्त की चोरी॥

६. सामूहिक शृंगार का—

एक हार मोहि कहा दिखावति।
नख-सिख तें अँग संग निहारौ, ए सब कतहिं दुरावति॥
मोतिन माल जराय कोटि कौ, करनफूल, नकबेसरि।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी, तर और हार एक नौसरि॥
सुभग हमेल जराय की अँगिया, नगनि जरित की चौकी।
बहु ठोंकर कंकन, बाजूबंद, एते पर हैं तौकी॥
क्षुद्रघंटिका, नूपुर, जेहरि, बिछुवा पग सब लेखो।
सहज अंग सोभा सब न्यारी, कहत "सूर" लै देखो॥

सेवा मार्ग का शरणत्व—श्रीबल्लभाचार्य जी ने मानसी सेवा की सिद्धि के लिए जिस प्रकार श्रीमद्भागवत से गोपीजनों की पूर्वोक्त भक्ति-भावनाओं को सेवा मार्ग में स्वीकार किया है, उसी प्रकार तनुजा वित्तजा सेवा की सिद्धि के लिए उन्होंने गीता के शरण-तत्त्व को भी अपनाया है।

"सर्व कर्माण्यपि सदा" से "सर्वधर्मान् परित्यज्य" पर्यंत गीता में द्वैविध्य शरण का निरूपण हुआ है। प्रारंभ में कर्म-ज्ञान के अंगवाला साधन रूप शरण है। उसमें निष्काम भक्ति-भाव से सब कर्मों को भगवान् श्री कृष्ण के अर्पण करने को कहा गया है। अंत में सब धर्मों के त्याग पूर्वक अन्य भाव से एक मात्र श्रीकृष्ण के शरण में जाने का स्पष्ट निर्देश किया है। प्रथम का निष्काम कर्मयोग वाला शरण धर्मात्मक होने से साधन रूप

है। द्वितीय सर्व धर्मों के त्याग वाला शरण केवल धर्मी-भाव को ही प्रकट करने से फलात्मक है। आचार्यजी ने इस फलात्मक शरण की अनन्य भावना का प्राधान्य दे कर निष्काम कर्मयोग की प्रक्रियाओं से तनुजा-वित्तजा सेवा की सिद्धि की है।

भगवान् कृष्ण में अनन्य भक्ति स्थापित करने से ही भक्त पर उनकी कृपा होती है। आचार्यजी का दृढ़ मंतव्य है कि शरणस्थों पर ही भगवान् श्री कृष्ण कृपा करते हैं‡। और श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होने पर ही मानसी प्रक्रिया रूप पूर्वोक्त प्रकार की प्रेम-भावनाओं की सिद्धि होती है। इसी लिए आचार्यजी ने इस प्रकार के शरण-तत्व को सेवा-मार्ग में स्वीकार किया और उससे पराभक्ति रूप मानसी सेवा को सुलभ बनाया।

इस शरण-तत्व के मुख्य दो अंग माने गये हैं। एक सर्व समर्पण, दूसरा अनन्य भाव। आचार्य जी कहते हैं—

"सर्वं सपर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव"। (अं० प्र०)

अर्थात्—भगवान् कृष्ण को सर्व समर्पण करने से ही भक्त कृतार्थ और सुखी होता है।

अनन्य भाव के संबंध में आचार्यजी का मत है—

"अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्य मात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्॥" (वि०धै०आ०)

इसका तात्पर्य यह है कि अन्य देवादि का भजन, वहाँ का गमन तथा प्रार्थना कार्य आदि भी श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए विवर्जित है। आचार्यजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के सिवाय सभी देव प्रकृति धर्म वाले हैं, अक्षरब्रह्म भी गणितानंद है, एक श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद हरि स्वरूप हैं, इसलिए श्रीकृष्ण ही एकमात्र आश्रय हैं †।

इस प्रकार के सर्व समर्पण और अनन्यभाव पतिव्रत धर्म रूप हैं, अतः इस देह आदि का यदि उसके स्वामी श्रीकृष्ण में इस प्रकार से विनियोग नहीं

---

‡ शरणागतश्चेत्विलष्टः, तदा तत्र कृपा भवति। .....भगवान्स्वकृपां शरणागतेष्वेवार्पितवान् बृहत्। (२-२१-३८ सु० बो०)

† प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत्।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एवं गतिर्मम। (श्रीकृष्णाश्रय)

कराया जाय, तो जिस प्रकार वयस्क नव वधू को अपने पति के पास स्नेह वश न भेजने से उसका पति उस पर असंतुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस भक्त पर भी श्रीकृष्ण असंतुष्ट होते हैं*। इसलिए पतिव्रत धर्म के सदृश सर्व समर्पण वाली अनन्य भक्ति से भक्त को श्रीकृष्ण की तनुजा-वित्तजा सेवा करनी चाहिए, तभी श्रीकृष्ण की उस भक्त पर कृपा होती है। आचार्यजी का मत है कि इस प्रकार की सेवा में कृष्ण से विमुख करने वालों का त्याग इस मार्ग में दूषण रूप नहीं है‡, अतः पिता, पुत्र, पति आदि जो भी कोई इसमें अंतराय रूप होता हो, उसका त्याग कर देना चाहिए। सदा-सर्वदा और सर्व-भाव से जीव का एकमात्र कर्तव्य श्रीकृष्ण-सेवा ही होना चाहिए। इससे आत्म निवेदन के समय वाचिक रूप से किया हुआ समर्पण स्पष्ट और पुष्ट होता है और श्रीकृष्ण की दुर्लभ कृपा को प्राप्त करने वाले शरण की सिद्धि होती है। श्रीकृष्ण की इच्छा के आधीन रहते हुए श्रीकृष्ण के चरण को ही दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करना इस शरण का परम लक्ष्य है।

सूरदास के पदों में शरण के अंग रूप सर्वसमर्पण और अनन्य भाव का इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है—

१. सर्वसमर्पण—

यामैं कहा घटगौ तेरौ।
सबै समर्पन "सूर" स्याम कों, यह साँचौ मत मेरौ॥

२. अनन्य भाव—

(१) श्रीबल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे।
अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहोत घनेरे॥
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे।
सब त्यजि तुम सरनागत आए, दृढ करि चरन गहेरे॥

(२) बिनती जन कासों करें गुसांई।
तुम बिनु दीन दयाल देव-मुनि, सब फीकी ठकुराई॥
अपने से कर, चरन, नैन, मुख, अपनी सी बुधि पाई।
काल-करम बस फिरत सकल प्रभु, ते हमरी सी नांई॥

---

* प्रौढापि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे।
तथा देहे न कर्त्तव्यं वर स्तुष्यति नान्यथा। (अंतःकरण प्रबोध)

‡ "तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः। (पंचश्लोकी)

पराधीन, पर-बदन निहारत, मानत मोह बड़ाई ।
हँसे हँसे बिलखे दुख बिनु दुख, ज्यों जल दर्पन झांई ॥
लिए दियौ चाहें तें कोऊ प्रभु, सुन समर्थ जदुराई ।
'देव सकल व्यापार परस्पर' ज्यों पसु दूध चराई ॥
तुम बिनु और कोऊ न कृपानिधि, पावै पीर पराई ।
"सूरदास" के त्रास हरन को, कृष्ण 'नाथ' प्रभु आई ॥

(३) हरि के जन सब तें अधिकारी ।
ब्रह्मा महादेव तें को बड़, ताकी सेवा कछु न सुधारी ॥
जाचक पै जाचक कहा जाचै, जो जाचै तो रसना हारी ।
गनिका-पूत सोभा नहीं पावत, जिनके कुल में कोउ न पिता री ॥

(४) अब क्यों दूजे हाथ बिकाऊँ ।
"सूरदास" प्रभु सिंधु चरन तजि नदी सरन कत जाऊँ ॥

(५) गोविंद से पति पाय, कहा मन अनत ही लावै ।
पति कौ व्रत जो धरें, त्रिय तौ सोभा पावै ॥

(६) यह विधि स्याम लग्यौ मन मोर ।
ज्यों पतिव्रता नारि अपने मन, पिय को सर्वस्व देहैं ॥

(७) जाकौ मन लाग्यौ नंदलाल सों, ताहि और नहीं भावै हो ।
लै करि मीन दूध में राखो, जल बिन नहीं सचुपावै हो ॥

कृष्ण-विमुखों के त्याग करने का उल्लेख—

(१) त्यजो मन हरि-विमुखन कौ संग ।
जाके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग ॥

(२) जाके हृदै हरि-धर्म नाँहीं‡ ।
ताके तजे कौ दोष नाँहीं, बसिऐ नहीं उन माँहीं ॥
मात, पिता, गुरू, बंधुन, तजि संग न पानी पीजै ।
जाके हृदै हरि-धर्म नाँहीं, ताकौ कह्यौ न कीजै ॥
जन प्रहलाद पिता-पन मेट्यौ, बलि गुरु कह्यौ न कीनों ।
भरत वचन परिहरत मात के, राज त्याग तप कीनों ॥

---

‡ 'तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः । (श्रीवल्लभाचार्य)

अति ही दुष्ट देखि हरि-द्रोही, तज्यौ विभीषन भाई ।
छत्र-चँमर ढुराय सीस पर, कियौ लंक कौ राई ॥
वेद मर्याद मेटि ब्रज-बनिता, पति तजि हरि पै आई ।
"सूर" पुनीत भई वे गोपी, वासुदेव विमल जस गाई ॥

कृष्णाधीनता और चरणाश्रय का वर्णन—

(१) राखौं तैसें रहौं जैसे, तुम राखौं तैसे रहौं ।
जानत हो सब जन के सुख-दुख मुख करि कहा कहौं† ॥
कबहुँक भोजन देहु कृपा करि, कबहुँक भूख सहौं ।
कबहुँक तुरंग-हय-गज अस्वारी, कबहुँक भार बहौं ॥
कमलनयन घनश्याम मनोहर, अनुचर भयौ रहौं ।
"सूरदास" प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ॥

सेवा मार्ग का आचार-तत्व—सेवा मार्ग में आचार्यजी ने आचार तत्व को भी स्थान दिया है। इसमें सदाचार और भक्त्याचार का समावेश हुआ है। सदाचार से मन पवित्र होता है और भक्ति के आचार भक्ति-प्रेम-को बढ़ाते हैं।

(१)**सदाचार**—सदाचार में बहिरंग और अंतरंग दो भेद रखे गये हैं। सदाचार के बहिरंग भेद में वर्णाश्रमानुसार शौचादि कर्मों द्वारा स्नानादिक से पवित्र होकर जीव को परम पवित्र, निर्दोष और शुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने की व्यवस्था है। इसको संप्रदाय की भाषा में "अस्पर्शता" (अपरस) कहते हैं। इसमें बाह्य पवित्रता की सीमा परिस्थिति अनुसार मानसिक पवित्र और निष्काम वृत्ति से अंकित की जाती है। इसमें अति-आचार भी निषिद्ध है। जिस आचार से भगवान् श्रीकृष्ण की तत्सुखात्मक सेवा में किसी प्रकार से विक्षेप होता हो, उसका त्याग पुष्टिमार्ग में अभीष्ट है। इसलिए सूरदासादि भक्तों ने अति-आचार की निंदा भी की है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें स्वेच्छाचार स्थापित किया जाय। कूवा का शुद्ध जल, शुद्ध पात्र और शुद्ध वस्त्र आदि सदाचार के मुख्य आधार हैं। "आचारः प्रथमो धर्म"—यह स्मृति-वाक्य इस सदाचार का मुख्य सूत्र है। सदाचार

† विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ।
प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्त्वाम्यत्रिप्राय संशयात् । (वि० धै० आ०)

और शुद्ध आचार से ही मन पवित्र होता है, इसलिए साधन अवस्था में इस पर विशेष बल दिया जाता है। इसी प्रकार अंतरंग आचारों की भी नितांत आवश्यकता मानी गयी है। अंतरंग आचारों में सत्य, दया, अहिंसा आदि स्मृत्योक्त धर्मों का समावेश होता है। इन अंतरंग आचारों से ही बहिरंग सदाचार शोभास्पद और सफल होते हैं। अंतरंग आचारों के बिना केवल बहिरंग आचार पाखंड की वृद्धि करने वाला होने से निंदनीय हो जाता है।

सूरदास ने अंतरंग आचार रहित बहिरंग आचार करने वाले पाखंडियों की इस प्रकार निंदा की है—

(१) कथा सुनि तजी मसूर की दाल।
काम न बिसरयौ, क्रोध न बिसरयौ, न बिसरयौ मोह जंजाल॥
अभ्यागत कोऊ द्वारे आवत, ताकूं बतावत काल।
घर में जाय बड़ाई करत हैं, कैसै दियौ निकाल॥
'लकड़ी धोय चौका में धरत हैं, चलत देत मानों फाल।'
"सूरदास" ऐसे कपटी कों, कैसै मिलेंगे गोपाल॥

(२) हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं। × ×
जानत को 'पुष्टि-पथ मोसों', कहि-कहि जस प्रगटाऊं।
मद-अभिमान भरयौ तन मेरे, साधु-संग छिटकाऊं॥
'मारग रीति' उदर के कारें, सीख सकल भरमाऊं।
'अति आचार' 'चारु सेवा रचि' नीके करि-करि पंच रिझाऊं॥

(२) भक्त्याचार--जिस प्रकार मर्यादा-भक्ति के आचार यज्ञादि हैं, उसी प्रकार पुष्टि-भक्ति के आचार वैराग्य, संतोष, सत्संग, दीनता, आश्रय, गुरु-भक्ति और निरंतर कृष्ण का स्मरण आदि हैं। इनसे प्रेमात्मक पुष्टि-भक्ति की वृद्धि एवं दृढ़ता होती है।

१. वैराग्य संतोष--आचार्य जी वैराग्य-संतोष के लिए इस प्रकार कथन करते हैं—

(१) "अत्र (भागवते) हि यथा-यथा विरक्तस्तथातथाऽधिकारी।"
(सु० १-२-२)

अर्थात्—इस भागवत स्वरूप भगवत्मार्ग में जैसे-जैसे वैराग्यशील होता है, वैसे-वैसे ही इसका अधिकारी होता है।

(२) वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत्। (सर्व निर्णय)

अर्थात्—वैराग्य और परितोष का सर्वथा परित्याग न करना चाहिए। सूरदास ने इन दोनों का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) कहा चाकरी अटकी जन की।
वैश्यन के द्वारे पर भटकत, जात जन्म आसा करि धन की॥
जाय धरम, धन आवै न आवै, छाया है रवि-पीठ करन की।
दिनकर पुनः फिरत सर सांधै, बांधि कमर नित्य चाह लरन की॥
'आयुष नेम नहीं या कलि मे, छन भंगुर जानों या तन की'।
तजौ बड़ाई तिरलोकी की, सोज करो भवसिधु तरन की॥
'कहा परतीति सक्ति संपति की, करो पालना गर्भ वचन की'।
ऐसौ समय बहुरि नहीं पैए, यह बिरियाँ नहीं नाद करन की॥

(२) मन रे तू वृक्षन कौ मत लै।
काटै ता पर क्रोध न कीजै, 'सींचे करै न सनेह। × ×

(३) जब संतोष हाकिम आवै, तब काया नगर सुख पावै॥
ज्ञान-वैराग्य की चढ़ि गई फौजा, अज्ञान कूं मार भजावै॥
क्षमा कोतवाल बठो चौतरा, कुबुद्धि कहाँ तें आवै।
साँच ढिंढोरा फिरत नगर म, झूंठ चोर भजि जावै॥
धर्म कौ झंडा गडयौ खेत मे, निभय राज कमावे।
"सूरदास" अज्ञानी हाकिम, बांधै जमपुर जावै॥

(४) जो दस-बीस पचास मिल, सत होय हजार, तौ लाख मँगैगी।
कोटि अरब औ खरब मिलै तो, धरापति होन की चाह चहैगी॥
स्वर्ग-पताल कौ राज मिलै, तृष्णा अधिक-अति आग लगैगी।
"सूरदास" 'संतोष बिना' सठ, तेरी तौ भूख कबहू न भगैगी॥

२. सत्संग—श्री बल्लभाचार्य जी का सत्संग के विषय में यह मत है—

"निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।" (नवरत्न)

अर्थात्—निवेदन का स्मरण तादृशीजनों से सर्वदा करना चाहिए। सूरदास ने भी सत्संग के लिए इस प्रकार कहा है—

(१) मन तू समझ सोच बिचार।
भक्ति बिना भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकार॥
साधु-संगत डारि पासा, फेर रसना सार। × ×

(२) 'करो मन हरि-भक्तन कौ संग ।'
जाके संग तें सुबुद्धि उपजत, बढ़त भजन में रंग ॥ × ×

(३) 'हरिजन संग छिनक जो होई । × ×

३. दीनता—निःसाधन पुष्टि-भक्ति में दीनता की परम आवश्यकता है। आचार्यजी ने कहा है—

"दैन्यं तत्तोप साधनम् ।" (निबंध)

अर्थात्—दीनता ही हरि को सनुष्ट करने का एक मात्र साधन है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में दीनता का कथन किया है । निम्न लिखित पद में उन्होंने दीनता का विस्तृत वर्णन कर पाखंड के विरुद्ध मत प्रगट किया है।

हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं ।
तुम जानत अंतर की बातें, जो-जो उर उपजाऊं ॥
द्वादस तिलक लगाइ अंग में, फिर-फिर सबै दिखाऊं ।
करि उपदेस सबन के आगें, अपुनौ पेट भराऊं ॥
हरि-सेवा मांडी प्रभुता कों, कीरति बहुत बढ़ाऊं ।
निंदा करों और की मुख सों, आपुन भलौ कहाऊं ॥
जो कोऊ करत आय अपुनौ जस, फूल्यौ अंग न समाऊं ।
दुष्ट भाव भरपूर रह्यौ उर, औरहिं कथा सुनाऊं ॥
भाँति-भाँति के पाक जुगति सों, रुचि-रुचि हाथ बनाऊं ।
जो कोउ संग आय मिल बैठें, तासों दूर लुकाऊं ॥
भाव-भक्ति करि सब के आगें, नैननि नीर बहाऊं ।
आसा सबै एक लेवे की, काहू नांहि लखाऊं ॥
विषै रह्यौ लपटाय अंग सों, करि पाखंड छिपाऊं ।
बातें करूं बनाय प्रेम सों, सगरौ अंग नचाऊं ॥
भूख-प्यास, दुख-सुख सब व्यापत, त्यागी बहुत कहाऊं ।
माया-धारी देखि हरषि मन, भजन भाव उपजाऊं ॥
सब के बीच बैठि लोगन में, हरि-जस स्वाँग धराऊं ।
लै-लै कहत सुनाइ सबन कों, पर हथ धर्म बिकाऊं ॥
विषय-वासना परयौ पेट बस, तन-मन सबै लड़ाऊं ।
धन के हेत सदा जग डोलत, छिनु-छिनु पाप बढ़ाऊ ॥
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ कों, पलक नाँहिं बिसराऊं ।
उत्कर्ष दृग देखि औरन कौ, अंतर बहुत जराऊं ॥

अति छल भरयौ, कुटिलता तन में, दंभ अधिक बिसराऊं ।
सेवा नाम भाव-भक्तिन कों, कबहू न मन परसाऊं ॥
हरष, सोक, इतरता तन में, नैंक न तिन बिछुराऊं ।
रसना-स्वाद सरस रस भोगी, पलक नाँहिं बिसराऊं ॥
अति अभिमान जानि जीय अपुने, औरन मन नहिं लाऊं ।
करूं दीनता मधुर बोलिकै, अंतर सीस नवाऊं ॥
सुनि पुरान बातन कों छीलूँ, लोगन सकल हराऊं ।
इन बातन तें दूर रहत हरि, सदा ..... कराऊं ॥
धारि स्वाँग साधुन कौ लोक में, गूढ़ बात मुख गाऊं ।
आपुन वाट चलों अधरम की, औरन धर्म सिखाऊं ॥
करि मुख मौन बैठि औरन में, बन-केलि हू बचवाऊं ।
दंभ देखि मत्सरता झीनी, कबहू नांहिं टराऊं ॥
बसन डार, कर लई तूमरी, बन-बन मांझ फिराऊं ।
नाँहिंन मिटी बासना उर की, प्रभुता प्रगट जनाऊं ॥
तजूं खान, पय पान करूं मुख, लै सिर बार रखाऊं ।
जा-जा भाँति होय जस जग में, सोइ करि कृत्य दिखाऊं ॥
छाँड़ि भवन सुख-संपति सगरौ, चित बन बास बसाऊं ।
निश्चै एक बासना उर में, सब तें अधिक कहाऊं ॥
सब संग छांड़ि फिरों तीरथ में, अंग भभूत लगाऊं ।
नांहिं गई मत्सरता मन की, दिन-दिन अधिक पगाऊं ॥
काम, लोभ, मद, मोह जरायौ, सो काहू तें न जनाऊं ।
देखूं जबै आपु तें ऊँचौ, सहज सकल दुख छाऊं ॥
अनपरकास सबन के आगें, करि-करि जुगत बनाऊं ।
को जानत भीतर की बातें, तुम बिनु जगत खिलाऊं ॥
सदा रहों निर्लेप जगत सों, सब ही दूर फिराऊं ।
अंतर रह्यौ बिगरि सब बिधि सों, परम कुटी नहिं छाऊं ॥
बैठत नहीं कहूँ लोगन में, काहू न मन अटकाऊं ।
ऊँचे पद के हेत भक्ति करि, सब जग में भटकाऊं ॥
पूछत भेद सकल प्रभुजन कौ, परमुख सुनत हँसाऊं ।
साँची बात कहत कोऊ अपनी, जातें नाँहिं सिखाऊं ॥
खोटी बात बसत मुख मेरे, कहि-कहि सबन दुखाऊं ।
देखत फिरों छिद्र हरिजन के, सुनत सदा सुख पाऊं ॥

सुनि-सुनि सीख बताई उनकी, बहु बिधि तरक उठाऊं ।
करि-करि अधिक कल्पना मन की, पंडित जनहिं झुंठाऊं ॥
आपुन कृत्य करूँ सो साँचौ, अंनर अति हरषाऊं ।
मो सम जानत कौन सकल बिधि, औरन दोष लगाऊं ॥
मानों आप अपनकों ऊँचौ, तातें जग समझाऊं ।
यहै सब सोंज भरी है उर में, मुख तें कहत लजाऊं ॥
पास बैठि करि करत बड़ाई, तासों मन परचाऊं ।
सुनि कीरति कानन सुख उपजत, फूल्यौ रंग रचाऊं ॥
पढ़ि पुरान बांचों सब आगें, कोटिक तरक मिलाऊं ।
जोरि मंडली बैठि बीच में, अपुनौ पंथ चलाऊं ॥
अस्तुति करत आप अपनी जब, अति मन हरष बढ़ाऊं ।
सगरी बात एक प्रभुता हित, मन चित्त सकल नसाऊं ॥
जानत को पुष्टि-पथ मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊं ।
मद अभिमान भर्यौ तन मेरे, साधु संग छिटकाऊं ॥
'मारग-रीति' उदर के काजें, सीख सकल भरमाऊं ।
'अतिआचार' चारु सेवा करि,नीके करि-करि पंच रिझाऊं ॥
कथा, वारता, कीरतन करि, करि सुर ताल बजाऊं ।
बंदों नहीं काहू उर अपुने, उमँगि-उमँगि कै गाऊं ॥
इत-उत की बातें करि वासर-रजनी वृथा गमाऊं ।
मन चित करि हरि उर नहिं आने, दुरमत कथूं, कथाऊं ॥
सब सिद्धांत एक धन जानों, करि पाखंड मँगाऊं ।
नाना भाव, चाव चित कौ करि, गानहिं खरज सुनाऊं ॥
दौरत फिरों लोभ के काजें, भजन करत अलसाऊं ।
प्रगट प्रमाद असुरता उर सें, देखत कुल हुलसाऊं ॥
पर-नारी, पर-धन, पर-निंदा, करत न हरत दुराऊं ।
अपने दोष सब गुन मानों, पर-गुन दोष मिलाऊं ॥
सेवा के हित जाय भूप सों, कहि बंधान बँधाऊं ।
इंद्री-भोग भगत कौ बानों, आपुन साध सधाऊं ॥
जो कछु कृपा करों सब ऊपर, भीतर मन न छुवाऊं ।
कोऊ लखत नाँहिं चतुराई, निपट कपट बरताऊं ॥
ताल, मृदंग, झाँझ लै कर में, ऊधम बहुत मचाऊं ।
राग रंग ऊपर की बातें, करि-करि रंग रचाऊं ॥

बहु धन जोरि कियौ एक ठौरै, घरनी सुतहिं लड़ाऊं ।
विषय रह्यौ मन लपट रैन-दिन, दिन-दिन अधिक बढ़ाऊं ॥
ना हरि-हेत लगाऊं पैसा, ना जन-हित खरचाऊं ।
बात बनाइ कहूँ कछु मीठी, वृथा बेल परचाऊं ॥
तब घर काज होइ उनमत ज्यों, खरचत नाँहिं लजाऊं ।
हरि-मंदिर में रंच भोग धरि, बहुरि न संत खवाऊं ॥
जब कोऊ माँगत आवै हरिजन, गृह-दुख ताहि जताऊं ।
साक-पात करि दिवस बितायौ, बातें बहुत बनाऊं ॥
इतनी सब संपति है मेरे, तिनकों नित बिलछाऊं ।
ऐसौ नहीं और त्रिभुवन में, मो सम काछ कछाऊं ॥
जिभ्या झूंठ असत मुख भाखों, अगनित कहा गिनाऊं ।
दोष-रासि साधन बल नांही, कहाँ लौं तुम्हें सुनाऊं ॥
बाहर कहूँ आज उच्छब है, करि पकवान अघाऊं ।
रसना स्वाद मूंदि घर अपुनौ, बैठि अकेलौ खाऊं ॥
करों बीनती 'नाथ' सुनो अब, कब लगि बकों बकाऊं ।
यह मांगों दीजै करुनानिधि, नितप्रति तुम पद धाऊं ॥
चरन सरन राखों करि अपनी, चिंता कलह बहाऊं ।
श्री बल्लभ की कानि मानि कै, लै भैया बलदाऊ ॥
उभै लोक के साधन मेरे, तुम तजि कापै जाऊं ।
कृपा-दृष्टि कस हरी दयानिधि, अब जिय अति अकुलाऊं ॥
पतित-सिरोमनि, सब कौ नायक, निर्भै फिरों फिराऊं ।
अधम भूप सैना सब मेरी, दोष न करत अघाऊं ॥
जो इच्छा सो करहु कृपानिधि, कहाँ लौं जान बचाऊं ।
मेरौ बल बस नाँहि नैक हू, मैं तुम हाथ बिकाऊं ॥
यह अभिलाष आस पूरन करि, 'दासन-दास' कहाऊं ।
स्वर्ग-नरक की नाँहिं अपेक्षा, तुम पद सरन रहाऊं ॥
सदा सरन दृढ़ एक आसरौ, रसना नाम रटाऊं ।
अपुनौ बिरद बिचारि दीजिऐ, यातें कहा घटाऊं ॥
परयौ हौं दरबार देखि तुव, तन-मन-धन बारनै जाऊं ।
जाचों जाय कौन पै तुम बिनु, कापै 'नाम कढ़ाऊं ॥
दीजो मोहि कृपा करि माधौ, चरन कमल चित लाऊं ।
"सूरदास" कों भक्ति-दान दै, श्री बल्लभ गुन गाऊं ॥

इस पद के अतिरिक्त और भी अनेक पदों में दीनता प्रकट की गयी है। ऐसे कुछ पदों की प्रारंभिक टेक इस प्रकार है—

(१) हरि ! मैं सब पतितन कौ नायक।
(२) मैं तौ महा पतित उरगानौ।
(३) हरि जू ! मो सौं पतित न आन।
(४) माधौ ! हौं पतित सिरोमनि।
(५) हरि ! हौं सब पतितन कौ राजा।
(६) हौं पतितन में परधान।
(७) मो सों पतित न और गुसांई।
(८) प्रभु मेरे ! मो सौ पतित उधारो।

भक्ति-मार्ग में भक्ति से विमुख होना ही पतित कहलाना है। जब जीव तनिक भी ईश्वर को भूलता है, तब वह पतित होता है। श्री कृष्ण के संबंध बिना किसी अन्य की मन से भी कामना करने वाला कामी कहलाता है। इसी प्रकार कृष्ण से संबंधित किये बिना सब कार्य क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर रूप हो जाते हैं। सूरदास ने इसी दृष्टि से अपने को कामी, कुटिल आदि कहा है।

भक्त जन दीनता की सिद्धि के लिए जगत के सभी दृश्यमान दोषों की भी अपने में सत्य भाव से कल्पना करता है, जिसके कारण दूसरे में हीनत्व बुद्धि नहीं होती है और अपने में अभिमान नहीं होता है। सूरदास के पदों में प्राप्त अतिशय दीनता का यही रहस्य है। निम्न पद से भी उक्त बात की पुष्टि होती है—

सो कहाजू मैं न कियौ, जोपै तुम सोई सोई चित्त धरि हौं।
पतित पावन बिरद, कौन भांति करि हौं॥
जब तें जग जनम पाए, जीव नाम कहायौ।
तब तें सब औगुन करि, गुन ना कहिं आयौ॥
सुकृति सुचि सेवक जन, काहै न जिय भावै।
प्रभु कौ प्रभुताई यहै, दीन सरन पावै॥
स्वाद-लंपट, संत-निंकद, कपटी, गुरु-द्रोही।
"जेते कछु अपराध कहियत, लागे सब मोही"॥
स्यामसुंदर, कमल-नयन, सकल अंतर्यामी।
बिनती कहा करै "सूर", क्रूर कुटिल कामी॥

४. आश्रय--भक्ति का अनन्य भाव ही आश्रय कहलाता है। इसका वर्णन गत पृष्ठों में हो चुका है। सूरदास ने श्री कृष्ण के अतिरिक्त इतर देव और मनुष्य आदि की अनन्य भक्ति के प्रति सर्वथा उपेक्षा की है। श्रीकृष्ण के समक्ष वे सभी देव आदि को गौण समझते थे। उनके निम्न प्रकार के उल्लेख इस बात की पुष्टि करते हैं—

(१) अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहोत घनेरे।
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे॥

(२) बिनती जन कासों करें गुसांई।
तुम बिनु दीन दयाल देव मुनि, सब फीकी ठकुराई॥
लिए दियौ चाहे तें कोऊ प्रभु, सुन समर्थ जदुराई।
देव सकल व्यौपार परस्पर, ज्यों पसु-दूध चराई॥

आश्रय की सिद्धि और प्रकार—

(४) हरि के जन की अति ठकुराई।
देवराज ऋषिराज महामुनि देखत रहे लजाई॥
दृढ विश्वास कियौ सिंघासन ता पर बैठे भूप।
हरि गुन विमल छत्र सिर राजत, सोभा परम अनूप॥
निग्रह देस कौ राज करै, ताकौ लोक बड़ौ उत्साह।
काम क्रोध मद लोभ मोह, 'तहाँ भये चोर तें साह'॥
बने विवेक विचित्र पौरिया, औसर कोऊ न पावै।
अर्थ काम तहाँ रहें दूरि दुरि, मोक्ष धर्म सिर नावै॥
अठ-सिधि नव-निधि द्वारें ठाड़ीं, कर जोरैं उर लीनीं।
छड़ीदार वैराग्य विनोदी, झटकी बाहर कीनीं॥
हरिपद पंकज प्रेम परम रुचि, ताही सों रंग राते।
मंत्री ज्ञान औसर नहीं पावै, करत बात सकुचाते॥
माया काल व्यापै नहीं कबहूँ, जो या रीतै जानै।
"सूरदास" यह नर तन पायौ, गुरु-प्रसाद पहिचानै॥

५. गुरु-भक्ति—सूरदास ने गुरु-भक्ति पर बड़ा जोर दिया है। वे गुरु और ईश्वर में अभेद बुद्धि रखते थे। जैसी श्रीकृष्ण देव में परा-भक्ति हो, वैसी ही गुरु में रखने वाले व्यक्ति के हृदय में वेदादि का वास्तविक रहस्य स्फुरायमान होता है। इस उपनिषद वाक्य के आधार पर सूरदास अपने ज्ञान को गुरु-प्रसाद रूप समझते थे।

सूरदास के निम्न लिखित पदांशों में गुरु-भक्ति की महिमा इस प्रकार बतलायी गयी है—

(१) हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करो। हरि चरनारबिंद उर धरो॥
हरि-गुरु एक रूप नृप जान। तामें कछु संदेह न आन॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई। गुरु के दुखित-दुखित हरि होई॥

(२) धनि सुक मुनि भागवत् बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना करि गान्यौ।

(३) अपुनपौ आपुन जरि मरि हैं।
काम, क्रोध, तृष्णा, मद ममता बिनु बिबेक क्यों तरि हैं॥
ज्यों दीपक सहज ज्योति में लौलत हरि, तरंग भ्रम परि हैं॥
" सूरदास " संतन की संगति, ' गुरु-प्रसाद ' निस्तरि है॥

(४) गुरु बिनु ऐसी कौन करें।
भवसागर तें बूढ़त राखे दीपक हाथ धरें॥

(५) भजो गोपाल भूल जिनि जावो। मानुष देह कौ यही है ल्यावो॥
गुरु-सेवा करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मन में आई॥

६. श्रीकृष्ण नाम स्मरण—श्री बल्लभाचार्य का मत है कि यदि जीव से सेवा आदि कुछ भी न हो, तो उसे सर्वात्म-भाव से निरंतर "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस अष्टाक्षर मंत्र का स्मरण करना चाहिए†।

सूरदास के निम्न पद में उक्त मत का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

श्री कृष्ण नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि में।
जाके पद पंकज की, रेणु की बलि मैं॥
सोई सुकृत सोई पुनीत, सोई कुलवंता।
जाके निस-दिना रहै, श्री कृष्ण नाम चिंता॥
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत श्री कृष्ण नाम माँहीं।
बिना एक कृष्ण-नाम, कलि उद्धार और नाँहीं॥
सब सुखन कौ सार, 'श्रीकृष्ण कबहू न बिसरिऐ।'
कृष्ण नाम लै-लै, भवसागर सों तरिऐ।
श्रीगोवर्धन धर प्रभु परम मंगल कारी।
उद्धरे जन " सूरदास ", ताकी बलिहारी॥

† तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥ (नवरत्न)

४—सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्व

गत पृष्ठों के विवेचन से यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास की प्रायः समस्त रचनाएँ पुष्टि मार्गीय सिद्धांत के अनुकूल हैं। ऐसा होने पर भी कुछ विद्वानों ने आश्चर्य पूर्वक लिखा है कि सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं किया है। हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानों ने सूरदास की रचनाओं का भली भाँति अध्ययन नहीं किया है, इसीलिए उनका सूरदास विषयक मत कभी-कभी भ्रमात्मक हो जाता है। हम यहाँ पर कुछ ऐसे पद देते हैं, जिनमें सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का स्पष्ट उल्लेख किया है—

पुष्टि-मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

(१) हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ।
जानत को 'पुष्टि-पथ' मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ॥
मारग-रीति उदर के काजैं, सीख सकल भरमाऊँ।
अति-आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ॥

(२) नाम महिमा ऐसी जो जानो।
मर्यादादिक कहै, लौकिक सुख लहै,
पुष्टि कों 'पुष्टि-पथ' निश्चय जो मानो॥

(३) 'भावभक्ति सेवा सुमिरन करि 'पुष्टि-पंथ' में धावै"।

स्वमार्ग के प्रति आत्म विश्वास—

हौं पतित-सिरोमनि सरन परयौ।
कह्यौ कछु और, करयौ कछु औरैं, तातें तिहारे मन तें उतरयौ॥
यह 'ऊँचौ संतन कौ मारग, ता मारग में पैंड धरयौ'।
नन स्रवन नासिका इंद्रिय, बस ह्वै खिसल परयौ॥
और पतित ह्वै हैं बहुतेरे, तिनकी छोलन हौं जु धरौ।
"सूरदास" प्रभु पतित पावन हो, विरद की लाज करौ तौ करौ॥

पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप—पुष्टि-मार्ग में परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही परम दैवत और आराध्य माना गया है। ये द्वादशांग पुरुष और साकार रूप हैं†। पुष्टिमार्ग की मान्यता के अनुसार ये ब्रह्म इस अनवतार दशा में श्रीनाथ

† "द्वादशाङ्गोह वै पुरुषः।" (श्रुति)

जी के रूप में सं १५३५ की वैशाख कृ० ११ को ब्रज के अंतर्गत गोवर्धन पर्वत से प्रादुर्भूत हुए हैं। इसीलिए उनको श्रीगोवर्धननाथजी अथवा श्री गोवर्धनधर कहा जाता है। श्री बल्लभाचार्यजी ने प्रत्यक्ष भजन के लिए इन श्रीनाथ जी को ही साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण माना है, † इसीलिए पुष्टि संप्रदाय के सेव्य स्वरूपों में श्रीनाथ जी का प्राधान्य है। श्रीनाथ जी को गायें अत्यंत प्रिय हैं, इसलिए उनको 'गोपाल' भी कहा जाता है। श्री बल्लभाचार्य जी के समय में श्रीनाथ जी के प्राकट्य-स्थान का निकटवर्ती गाँव इसीलिए 'गोपालपुर' के नाम से प्रसिद्ध था। यह 'गोपालपुर' आजकल 'जतीपुरा' के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरदास ने पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथ जी का स्मरण निम्न लिखित पदांशों में इस प्रकार किया है—

श्रीनाथजी का उल्लेख—

(१) मोसों पतित न और गुसांई। × ×
सेवि 'नाथ' चरन 'गिरिधर' के बहुत करी अपनाई। × ×
(२) बरु मेरी प्रतिज्ञा जाउ। × ×
निकट आय 'श्रीनाथ' प्रचारयौ, परी तिलक तन दीठ। × ×
(३) यह लज्जा नृप कहा करो। × ×
..... तब 'श्रीनाथ' सहाय हमारे। × ×
(४) तात बचन रघुनाथ जबै बन गवन कियौ।
'सूरदास' 'श्रीनाथ' विरह सब पतिव्रत सब ही कियौ॥
(५) 'श्रीनाथ' सकौ तौ मोहि उधारो।
(६) 'श्रीनाथ' मुरलीधर कृपाकरि दीन पर.....।
(७) ब्रज कौ 'नाथ गोवर्धनधारी' सुभग भुजन नख रेख जुनौ॥
(८) अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी। × ×
'श्रीनाथ' सारंगधर कृपा करि मोहि .....॥

---

† इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः। पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थौ बाहू शिरोऽन्तरम्। हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ ततः। सक्थौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशश्जापरः स्मृतः। 'उत्क्षिप्त' हस्तः पुरुषो भक्तमाकारयत्युत। स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशाङ्ग तनुर्हरिः। (निबंध)

इसमें वर्णित उत्क्षिप्त-ऊंचा हस्त केवल श्रीनाथजी का ही है। इससे श्रीनाथजी को ही आचार्य ने द्वादशांग हरि रूप कहा है। यह निश्चित होता है।

(६) 'नाथ मोहि अब की बेर उबारो ।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारो ॥'

सूरदास ने 'गोपाल' नाम का उल्लेख अपने अनेक पदों मे किया है।

पुष्टिमार्ग के द्वितीय प्रधान स्वरूप श्री नवनीत-प्रिय जी हैं । सूरदास ने इनका उल्लेख भी अपने कई पदों में किया है।

नवनीत प्रियजी का उल्लेख—

(१) सोभित कर नवनीत लिएं ।
घुटुरूवन चलत, रेनु तन, मंडित, मुख, दधि लेप किएं ॥
चारु कपोल, लोल लोचन छबि, गोरोचन कौ तिलक दिएं ।
लर लटकन मानों मत्त मधुप गन, मादक मधुहिं पिएं ॥
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, राजत है सखि रुचिर हिएं ।
धन्य "सूर" एकौ पल यह सुख, कहा भयौ सत कल्प जिएं ॥

(२) देखेरी ! हरि नंगम नंगा ।
जलसुत भूषन अंग बिराजति, बसन हीन छबि उठत तरंगा ॥
कहा कहूँ अँग-अंग की सोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा ।
कछु दधि हाथ कछू मुख माखन, सूर हँसत ब्रज युवतिन संगा ॥

पुष्टि-मार्ग के तृतीय प्रधान स्वरूप श्री मथुरेश जी हैं, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाले चतुर्भुज स्वरूप हैं । ये यज्ञोपवीत से भी अंकित हैं । सूरदास के निम्न लिखित पद में मथुरेश जी का वर्णन मिलता है—

श्री मथुरेशजी का उल्लेख —

बनी मोतिन की माल मनोहर ।
सोभित सुभग स्याम-उर ऊपर, मनों गिरि तें सुरसरी धसी धर ॥
अति भुज दंड भ्रमर भृगु रेखा, चंदन चित तरंगनि सुंदर ।
रवि की किरनि मीन कुंडल छबि, मकर मिलन आये मनों त्यागिसर ॥
"जज्ञपवीत" सुदेश "सूर" प्रभु, मध्य बारि धारा जु बनी धर† ।
'संख, चक्र, गदा, पद्म' बिराजति, कमल बीच कल हंस किएं घर ॥

† श्री चतुर्भुजदास कथित 'खट ऋतु की वार्ता" से ज्ञात होता है कि स्वरूप के साथ श्रीनाथ जी के प्रथम अन्नकूट के अवसर पर गोसांई विट्ठलनाथ जी ने सूरदास को मथुरेश जी की कीर्तन-सेवा दी थी, उस समय उन्होंने उक्त पद का गायन किया था ।

पुष्टि संप्रदाय में पुष्टि शक्ति रूपा श्री यमुना जी की बड़ी महिमा है। श्रीवल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्री यमुना जी पुष्टि-भक्ति की साधन रूप† और मुकुंद में रति बढ़ाने वाली हैं। सूरदास के निम्न लिखित पदों में यमुना जी का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

श्री यमुना जी का उल्लेख—

(१) श्रीयमुनाजी अपुनौ दरस मोहि दीजै।
आस करों गिरिधरन लाल की, इतनी कृपा मोहि कीजै॥
हौं चेरी महारानी तेरी, चरन-कमल रखि लीजै।
बिलंब करो जिन बोलि लेहु मोहि, दरस परस वारि पीजै॥
करो निवास उर अंतर मेरे स्रवन सुजस सुनि लीजै।
प्रान पिया की खरी ये प्यारी, पानि पकरि मेरौ लीजै॥
हौ अबूझ मूढ़मति मेरी, अनत नहीं चित्त भींजै।
"सूरदास" मोहि यह आस, है निरखि-निरखि मुख जीजै॥

(२) नाम महिमा ऐसी जू जानों।
मर्यादादिक कहै, लौकिक-सुख लहै,
पुष्टि कौ पुष्टिपथ निश्चै जो मानों।
स्वांतिजल बूंद जब परत है जाहिं में,
ताहि में होत तैसो जू बानों।
यमुने कृपा सिंधु जानि, जल महिमा आनि,
"सूर" गुनपूर कहाँ लौं बखानों॥

(३) श्री यमुने पतित पावन करेउ।
प्रथमहिं जब दियौ दरसन, सकल पातक हरेउ।
जल-तरंगन परस कर, पय-पान सों मुख भरेउ।
नाम लेतहिं गई दुरमति, कृष्ण-रस विस्तरेउ॥
गोप कन्या कियौ मज्जन, लाल गिरिधर वरेउ।
"सूर" श्रीगोपाल निरखत, सकल काज सरेउ॥

---

† "भक्ति हेतुस्तु यमुना"। (सु० बो० ३-१-२१)

‡ "मुकुन्दरति वर्द्धिनी"। (श्रीयमुनाष्टक)

अन्य अवतार और देवी-देवता—शुद्धाद्वैत पुष्टि-मार्ग के अनुसार समस्त अवतार और देवी-देवता श्रीकृष्ण के ही अंश हैं। इस मान्यता के कारण राम, नृसिंह, वामन आदि भक्तोद्धारक अवतारों में श्रीकृष्ण की ही स्थिति मानी गयी है, अतः पुष्टि-मार्गीय सेवा-प्रणाली में उक्त अवतारों की जंयतियों के अवसर पर श्री कृष्ण के स्वरूप तथा अक्षर ब्रह्मात्मक शालिग्राम जी का पंचामृत स्नान होता है।

इसी भावना को लेकर सूरदास ने अन्य अवतारों के पदों में अपने इष्ट श्री गोवर्धन नाथ का इस प्रकार स्मरण किया है—

(१) 'सूरदास' प्रभु गोवर्धन धर, नर हरि-वपु धारयौ।
(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पानौ।
'रघुकुल-राधव' कृष्ण सदा ही, गोकुल कीन्यों थान्यौ॥

इसी प्रकार अन्य देवी-देवताओं को भी श्री कृष्ण के अंश मान कर पुष्टि-प्रवाह और पुष्टि-मर्यादा वाली सेवा में 'श्रीकृष्ण के हितार्थ' उनकी भी पूजा की जाती है। यह पूजा, नंद-यशोदा की भावना से श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर उनकी छटी के अवसर पर होती है।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की छटी के वर्णन में उक्त देवी-देवताओं का इस प्रकार स्मरण किया है—

गौरी गनेस, सुर बिनै हौं, देवी सारदा तोही।
गाऊँ हरि जू कौ सोहेलौ, मन और न आवै मोही॥

सूरदास के राम विषयक-पद—सूरदास के राम विषयक अनेक पद मिलते हैं। ये सब शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार रचे हुए हैं। श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी में लिखा है कि 'कृष्ण एवं रघुनाथ' (१-५२-२२) तथा 'भगवान्पूर्ण एवं रघुनाथोऽवतीर्णः।' (२-७-२३) इन सूत्रों के अनुसार सूरदास ने राम कृष्ण की अभेदता सूचक निम्न प्रकार के अनेक पद रचे हैं—

(१) जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि॥
कृपानिपाल केसव कमलापति। कृष्ण कमल लोचन अविगत गति॥
रामचंद्र राजीव नयन वर। सरन साधु श्रीपति सारंग धर॥
बनमाली बामन विट्ठल वर। वासुदेव बासी ब्रज भूतल॥
खरदूषन त्रिसिरा सिर खंडन। चरनारविंद दंडक भुव मंडन॥
बकी दमन, बक-बकिन बिदारन। वरुन विषाद नंद निस्तारन॥

ऋषि मख त्रान, ताड़का-तारक । बन बसि तात बचन प्रतिपालक ॥
गोकुलपति, गिरिधर गुन सागर । गोपी रमन, रास-रति-नागर ॥
रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन । जग-हित जनकसुता-मनरंजन ॥
काली दमन, केसि कर पातन । अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन ॥
करुनामय कपि-कुल-हितकारी । बालि बिरोध कपट मृगहारी ॥
गुप्त गोप-कन्या व्रत पूरन । द्विज नारीदरसन दुख चूरन ॥
रावन कुंभकरन सिर छेदन । तरुवर सात एक सर भेदन ॥
संख चक्र चाणूर सँहारन । सक्र कहै मेरौ रच्छन कारन ॥
उत्तर कृपा गीध कृत हारी । दरसन दै सबरी उद्धारी ॥
जे पद सदा संभु हितकारी । जे पद परम सुरसरी गारी ॥
जे पद रमा हृदय नहीं टारी । जिन पद तें तिहुं भवन तयारी ॥
जे पद वृंदावन ही बिहारी । जे पद पांडव गृह पग धारी ॥
जिन पद सकटासुर संहारी । जे पद अहिफन-फन प्रति धारी ॥
जे पद भक्तन के सुखकारी । जिन पद-रज गौतम-त्रिय तारी ॥
'सूरदास' सुर याचत वे पद । करहु कृपा अपने जन पर सद्य† ॥

(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पान्यौ ।
'रघुकुल-राघव कृष्ण सदाही', गोकुल कीनों थान्यौ ॥ × ×

पुष्टि-भक्ति का स्वरूप—हम पहले लिख चुके हैं कि पुष्टि-भक्ति प्रेम-भक्ति है। प्रेम की सिद्धि विरह से होती है, इसलिए इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि सभी साधन विरहात्मक हैं। भगवान् के विरह में पतिव्रता की तरह अनन्य होकर पुष्टिस्थ भक्त उनका यश-श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि करते हैं। तब भक्त को क्लेश युक्त देख कर हृदयस्थ प्रभु बाह्य रूप में आविर्भूत होते हैं। श्री बल्लभाचार्य जी ने लिखा है—

---

† एक किंवदंती के अनुसार जब तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे, तब चंद्रसरोवर पर सूरदास से भी मिले थे। तुलसीदास को श्रीरामचंद्र जी का इष्ट था, अतः उनको श्रीनाथ जी के प्रति भक्ति-भाव प्रकट करने में संकोच होता था। कहते हैं सूरदास ने उक्त पद का गायन करते हुए उस समय श्रीनाथ जी से प्रार्थना की थी वे तुलसीदास को रामचंद्र के रूप में दर्शन दें। उक्त पद की अंतिम टेक 'करहु कृपा अपने जन पर सद्य' सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य भक्त के लिए ही प्रयुक्त हुई ज्ञात होती है।

क्लिश्यमानाञ्जनान दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ (नि० ल०)

इस प्रकार विरह से ही प्रेम की सिद्धि होती है और प्रेम सिद्ध होने पर लोक और वेद दोनों से भक्त विरक्त हो जाता है। सूरदास ने निम्नलिखित पदों में इस बात को इस प्रकार कहा है—

विरह का स्वरूप—

विरह बिनु नाहिंन प्रीति की खोज ।
लगे बिनु कहो कैसे प्रगटै, इन अँखियन में रोज ॥
जब तें दूरि भए नँदनंदन, बैरी भयौ मनोज ।
'सूरदास' प्रभु निसंक जे जन, ते हैं राजा भोज ॥

शुद्ध प्रेम का स्वरूप—

मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ ।
'जोतिष, निगम, पुरान बड़े ठग, जानों फांसी जी कौ' ॥
जो बूझै तौ उत्तर दैहौं, बिन बूझे मत फीकौ ॥
कमल मीन दादुर यों तरसत, सब घन बरप अमी को ॥
भद्रा भली भरनी भय हरनी, चलत मेघ अरु छींकौ ।
अपने ठौर सबै गृह नीके, हरन भयौ क्यों सीय कौ ॥
सूनि मूढ मधुकर ब्रज आयौ, लै अपयस कौ टीकौ ।
"सूर" जहाँ लों नैम, धरम, व्रत, सो प्रेमो कौड़ी कौ' ॥

पुष्टि-भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—स्वरूपासक्ति, लीलासक्ति और भावासक्ति। सूरदास के पदों में इन तीनों का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

१. स्वरूपासक्ति—

(१) कहूँ देख्यौ माई, श्री गोकुल कौ बासी ।
तनिकमी बांसुरी बजाइ बाँस की, लै गयौ प्रान निकासी ॥
देख्यौ होय तौ दिखाय सखीरी, अँखियाँ रूप की प्यासी ।
"सूरदास" प्रभु तुम्हारे मिलन बिनु, मेरौ मरन, जग हाँसी ॥

(२) मिलिबौ नैनन ही कौ नीकौ ।
नंद कौ लाल हमारौ जीवन, और जगत सब फीकौ ॥
वेद, पुरान, भागवत अरु गीता, गूढ़ ज्ञान पोथी कौ ।
खाटी छाछ कहा रुचि उपजै, "सूर" स्वैया घी कौ ॥

(३) गोकुल के गोंडे एक साँवरौ ढूटौना माई,
अँखियन के पैंडे पैंठि, जी के पैंड परयौ है ।
कल न परत छिनु, गृह भयौ बन सम,
तन, मन, धन, प्रान सरबस हरयौ है ॥
भवन न भावै माई, आंगन रह्यौ न जाई,
करै फिरै हाय-हाय देखो कैसौ हाल करयौ है ।
"सूरदास" प्रभु नीके गावत मधुर सुर,
मानों मुरली में लै पीयूष भरयौ है ॥

(४) उठो इन नैनन अंजन देहु ।
आनों क्यों न स्याम रंग काजर, जासों जुरयौ सनेह ।
तपत रहत निस-बासर मधुकर, नहिं सुहात बन-गेह ।
पहलें तौ नैनन अपराधी, बरजत कियौ सनेह ॥
सब बिधि बाँधि ठानि कर राख्यौ, ज्यों कपूर की खेह ।
बार इक स्याम मिलाय "सूर" प्रभु, क्यों न सुजस-जस लेह ॥

(५) नाहिंन रह्यौ मन में ठौर ।
नंदनंदन बिना कैसै आनिऐ उर और ॥
चलत, चितवत, द्यौस जागत, स्वप्न सोवत रात ।
हृदय तें वह मदन मूरति, छिनु न इत-उत जात ॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लाख लोभ दिखाय ।
कहा करों 'चित्त प्रेम पूरन', घट न सिंधु समाय ॥
स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास ।
"सूर" ऐसे दरस कों, ये मरत लोचन प्यास ॥

२. लीलासक्ति—

चकई री चलि चरन सरोवर, जहाँ नहीं प्रेम-वियोग ।
जहाँ भ्रम निसा होत नहिं कबहू, सो सायर सुख योग ॥
सनक से हंस, मीन सिव मुनिजन, नख रवि-प्रभा प्रकास ।
प्रफुलित कमल निमिष नहीं ससि डर, गुंजत निगम सुवास ॥
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, बिमल सुकृत जल पीजै ।
सो सर छाँड़ि क्यों कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ रहै कहा कीजै ॥
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीडत, सोभित "सूरदास" ।
अब न सुहाय विषय रस छिल्लर, वा समुद्र की आस ॥

भावासक्ति—

(१) भजि सखी भाव-भाविक देव ।
(२) भाव बिनु माल नफा नहिं पावै ।

बाल-भाव में किशोर-भाव—सूरदासादि पुष्टि-संप्रदायी कवियों की रचनाओं में किशोर-भाव को देख कर कुछ व्यक्तियों को आश्चर्य होता है । उनके विचारानुसार उक्त कवियों की रचनाएँ केवल बाल-भाव की होनी चाहिए थीं। हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि श्री बल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य-भक्ति का ही उपदेश नहीं दिया है, बल्कि उनके मत में कांता-भाव की माधुर्य-भक्ति भी ग्राह्य है । बाल-भाव में किशोर-भाव का समावेश पुष्टि संप्रदाय की विशिष्टता है । श्रीबल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत दशमस्कंध पूर्वार्ध अध्याय १२ में वर्णित उक्त विषय का विवेचन "सुबोधिनी" में किया है ।

सूरदास ने निम्न लिखित पदों में बाल-भाव के अंतर्गत किशोर-भाव का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) निपट छोटे कान्ह सुनि, जननी कहूँ बात ।
होत जब समुदाय, करत तब सिसु-भाय,
एकांत पाइ कै नैन भरि मुसिकात ॥
देखि रस-रीति की प्रीति विपरीत गति,
मतिमान छाँड़ि, संग लग्यौ रह्यौ निसि-प्रात ।
जात नहीं बिसरि देखि, बहुत जतन धरि समुझि,
कहूँ चंद देखै कमल हू बिकसात ॥
दुरत घूंघट जवै लाल जसुमति हृदै,
उझकि धँसि धरनि, पाँउ धरि मुख किलकात ।
मनहुँ आषाढ़ घन बादरी "सूर" तजि,
होत आनंद, सब फूले अति जलजात ॥
(२) ग्वालिन आपु तन देखि, मेरे लाल तन देखिऐ ।
भीत जो होय तौ, चित्र अवरेखिऐ ॥

मेरौ तौ साँवरौ पाँच ही बरस कौ, अजहू यह रोय पय-पान माँगै ।
तुम हो मस्त अति ढीठ री ग्वालिनी, फिरत अठजाति गोपाल आगै ॥
मेरे तौ स्याम की तनिक सी अंगुरियाँ, ए बड़े नखन के दाग तेरें ।
मट्ट करि, सुनगौ लोग अगवार को, कहाँ पाई भुजा स्याम मेरें ॥
ठगठगे नन बैनन हँसी ग्वालिनी, मुख देखैं सोभा अति ही बाढ़ी ।
सुन सखी "सूर" सरबस हरै साँवरे, अन-उत्तर महरि के द्वार ठाढ़ी ॥

श्री बल्लभाचार्य जी के वचनों का अनुसरण—गत पृष्ठों के विवेचन द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि सूरदास ने श्री बल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग की भक्ति-भावना को स्पष्ट करने के लिए ही अपने अधिकांश पदों की रचना की है। उन्होंने आचार्य जी रचित ग्रंथों के नामोल्लेख और उनके वचनों का अनुसरण करते हुए अपना मत प्रकट किया है। सूरदास ने अपने निम्न पद में आचार्यजी कृत "सुबोधिनी" ग्रंथ का नामोल्लेख करते हुए उसके मर्म को श्रवण करने का उपदेश दिया है—

कहा चाकरी अटकी जनकी। × ×
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नहीं पाँव धरन की।
श्री सुकदेव के बचन आश्रय, 'सुनो सुबोधिनी' टीका जिन की।
नित्य संग करो वैष्णव कौ, सेवा करो नंद-सुवन की।
"सूर" कहै मन सेवा त्यजि कै, चिंता कहा करै उदर भरन की॥

इससे यह समझा जा सकता है कि सूरदास ने आचार्यजी कृत 'सुबोधिनी' आदि ग्रंथों का अध्ययन अवश्य किया होगा। इसकी पुष्टि आचार्यजी के कथनों के अनुसरण रूप कुछ उद्धरणों से भी होती है।

आचार्यजी ने वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत की समाधि-भाषा को 'प्रस्थान चतुष्टय' के रूप में स्वीकार किया है। इन चारों में भी शरण और भक्ति के लिए उन्होंने गीता और भागवत पर विशेष बल दिया है।

सूरदास के कई पदों में गीता और भागवत का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

गीता—

हमारैं सब रस गोबिंद गीता।
गाय-गाय रसना जो लड़ाऊं, हरि-रस अमृत पीता॥
श्रीमुख बचन कहत कुंतीसुत, सुनि-सुनि होत प्रतीता।
या गीता के तेज प्रताप तें, दुरयोधन-दल जीता॥
जे नर गीता-पाठ करत हैं, युग-युग रहत निहचीता।
तिनकों कौन बात कौ संसय, तरे कुटुंब सहीता॥
सार कौ सार, सबन कों सुख है, चारों वेद मथि लीता†।
"सूरदास" प्रभु अघ-मोचन कों, सद्गुरु दियौ पलीता॥

† सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः।
पार्थोवत्स सुधीर भोक्ता दुग्धं गीतामृत महत्॥

भागवत—

(१) निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख तें जु दयौ† ।
(२) श्रीभागवत सकल गुन-खानि* ।
(३) निगम कल्पतरु सीतल छाया ।

द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुन तत्त्व व्यापै नहीं माया ॥
फल अति मधुर, सरस पुष्प युत, अध्याय तीनि सत पैंतीस साखा ।
सुंदर श्लोक सहस्र अष्टादस, श्रीमद्भागवत उत्तम भाषा ॥
पाँच लाख पुनः सहस्र छहत्तर, अक्षर प्रांत है जु पत्रा ।
अघ अरु अज्ञान दूर करन कों, एक-एक अक्षर है निज मंत्रा ॥
नवधा भक्ति, चारु मुक्ति फल, ज्ञान-बीज अरु ब्रह्म रस मीता ।
"सूरदास" श्रीमद्भागवत-भक्ति, गदगद कंठ कोउ प्रेमीजन पीता ॥

अब हम श्रीबल्लभाचार्य जी कृत ग्रंथों के कतिपय उद्धरण और सूरदास के पद उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने आचार्य जी के वचनों का किस प्रकार अनुसरण किया है ।

आचार्य जी कृत "कृष्णाश्रय" का अनुसरण—

अब तौ साँचौ कलियुग आयौ‡ ।
पुत्र-पिता कौ कह्यौ न मानत, करत आपु मन भायौ ॥
पुत्री बेचि पिता धन खायौ, दिन-दिन मोल सवायौ ।
यातें बरषा अल्प भई री, कालै सब जग खायौ ॥
छिपत गोवर्धन, घटत वृंदाबन, कालिंदी रूप छिपायौ ।
"सूरदास" प्रभु या कलियुग में, मोहै काहेकों जिवायौ॥

आचार्य जी कृत "यमुनाष्टक" का अनुसरण—

हंस-सुता°, जल स्वरूप‡, पुष्टि रूप*, अति अनूप,
करत स्नान अंग पाप कटत हैं ।
सिव-विरंचि-सुक-सेस रटत*, वेद विदित स्रवन गनेस,
नारद, ध्रुव, व्यास आदि गुन गनत हैं ॥

---

† पृ० १२२ की पाद टिप्पणी में दिया गया है ।
* पृ० १२३ पर दिया गया है ।
‡ 'कलौ च खल धर्मिणी"
° 'जयति पद्मबंधो सुता' ‡ 'सघोषगतिदन्तुरा' आदि
* 'तुर्यप्रियाम्' * शिव विरञ्चि देव स्तुते'

भक्त रीति-प्रीति, श्यामसुंदर पास रहत नित,
काम-धर्म-अर्थ-मोक्ष‡ देत, जमदूत निरखि दूर ही तें हटत हैं§।
यह जिय दृढ़ प्रेम ज्ञान, परम पद लहत नर†,
श्री जमुना जी की महिमा भनत 'सूर' जस नाँहि घटत† है ॥

आचार्य जी कृत "विवेक धैर्याश्रय" का अनुसरण—

हरि भक्तन कों गर्व न करनौ* ।
यह अपराध, परम पद हू तें उतर नरक में परनौ ॥
हौं कुलीन धनवान, ये भिक्षुक, ये मन में नहिं धरनौ ।
राज-सिंहासन, अश्व पालकी, तासों भवसागर नहीं तरनौ ॥
खान-पान बनाए भले जू, बदन पसार फेर हू मरनौ ।
"सूरदास" यह सत्य कहत हौं, हरि भक्तन के संग उबरनौ ॥

आचार्य जी कृत "पंचश्लोकी" का अनुसरण—

जाके हृदय हरि-धर्म नाहीं ।
ताके तजे कौ दोष नाँहीं, बसिऐ नहीं उन माहीं‡ ॥ × ×

आचार्य जी कृत 'सुबोधिनी" का अनुसरण—

(१) चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहिं प्रेम-वियोग¶ । × ×
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त, सोभित सूरजदास ।
अब न सुहाय विषय रस छिल्लर, वा समुद्र की आस ॥

(२) एक निस रामकृष्ण बन जाँय§ ।
सुंदर सोभा देखि रमन की, अति ही आनँद पाँय ॥

---

‡ 'सकल सिद्धि हेतुं'
§ 'न जातु यमयातना भवति ते पथः पानतः'
† 'मुकुन्द रति वर्द्धिनी' तथा 'भवति वै मुकुन्दे रतिः'
† 'स्तुति तव करोति कः' आदि
* 'अभिमानश्च संत्याज्यः'
‡ तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्ण बहिर्मुखाः'
¶ 'नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम् ।
लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥'
§ शंखचूण बध वर्णन

बेनु बजाय कृष्ण तब गोपी, सबकों वहीं बुलाय ।
'मर्यादा श्रुति सों बलदेवहिं, पुष्टि कृष्ण ढिंग आय' ॥
तहाँ प्रेम सों दोउ जन बिहरत, मन हरि लीनों सोई ।
गान तान मानहिं सुर साँचे, तन सुधि रही न कोई ॥
भूषन वसन सिंगार सकल अँग चंदन लेप किये ।
× × ×
'सूरदास' हरि के गुन गावत, भव-दुख सबहिं भाजे ॥

(खंडिता*)

(१) मेरे आये भोर प्यारे, वाकैं सब निसि जागे ।
साँची कहो तुम वाही त्रिया की सोंह, पाये प्रेम रस चोर ॥
कहुँ अंजन, कहुँ पीक लागि रही, काहे कों दुरावत नंदकिसोर ।
सूरदास" प्रभु तुम सब नायक, रंग रँगे चहुँ ओर ॥

(२) जरी कों जरायवे कों, तती तन तायवे कों,
कटी लौन ल्यायवे कों, द्वार आय खरे हो ।
रैन बसे और ठौर, अब आये मेरी ओर,
वाही पै पधारो कान्ह, जाके बस परे हो ॥
बिन गुन माल सोहै अधर अंजन रेख,
मेरी सोंह कान, अब जाओ तुम भरे हो ।
चार जाम बीते, मोय घड़ी भर कल्प नाँही,
'सूरस्याम' हिऐं हू तें नैक हू न टरे हो ॥

(३) पाये हो जू जान, लाल तुम पाये हो जू जान ।
तुम सों कौन बलैया बोले, निपट कपट की खान ॥
औरन सों तुम हँसत खेलत हो, हमसे रहे मुख तान ।
"सूरदास" प्रभु अपनी गरज कों, कहियत परम सुजान ॥

---

* स्वभावत एवं खिन्ना तां रयक्त्वा अन्यया सह स्थित रति ।
ततश्चेत् समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरां क्षोभं प्राप्नोति ॥ (१०-३१-१०)

पंचम परिच्छेद

काव्य-निर्णय

१—सूर-काव्य की भाषा

काव्य का कलेवर—

प्रत्येक महाकवि के काव्य की एक विशिष्ट शैली होती है। उस शैली को हृदयंगम किये बिना उस महाकवि के काव्य को समुचित रूप से नहीं समझा सकता। सूरदास की भी एक निजी शैली है, जिसके कारण उनको समस्त कवि-समुदाय में से सरलता पूर्वक पहचाना जा सकता है।

शैली का सौन्दर्य और महत्व काव्य के कलेवर अर्थात् भाषा की समृद्धि पर भी आधारित है। सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन करते समय उनकी भाषा-शैली पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है।

सूरदास से पहले की ब्रजभाषा—

सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जो हिंदी का एक विशिष्ट रूप है। यद्यपि सूरदास के पूर्ववर्ती कतिपय कवियों के काव्य में भी ब्रजभाषा के तत्व दिखलायी देते हैं, तथापि व्यवस्थित एवं साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण सूरदास ही ब्रजभाषा के आरंभिक कवि माने जाते हैं। सौरसेनी अपभ्रंश के विकसित रूप में ब्रज बोली का प्रचलन विक्रम की बारहवीं शताब्दी से ही सूरसैन प्रदेश एवं उसके निकटवर्ती बड़े भू-भाग में था। सौरसैनी से संबंधित होने के कारण इस बोली में स्वाभाविक रूप से माधुर्य गुण की विशेषता थी, जिसके कारण यह अपने क्षेत्र के लोक-गीतकारों, साधु-संतों की मंडलियों और संगीतज्ञों द्वारा शीघ्र ही अपनायी गयी। साधु-संतों को धर्म-प्रचार एवं तीर्थ-यात्रा के लिए और संगीतज्ञों को अपनी गायन-कला के प्रदर्शन के लिए दूर-दूर तक भ्रमण करना पड़ता था, जिसके कारण ब्रज की इस मधुर वाणी का परिचय ब्रज प्रदेश से बाहर के व्यक्तियों को भी होने लगा। ब्रज बोली के माधुर्य ने ब्रज प्रदेश एवं सुदूरवर्ती स्थानों के कवियों को विशेष रूप से आकर्षित किया और उन्होंने अपनी कविता में इसका उपयोग करना आरंभ कर दिया।

सूरदास के पूर्ववर्ती ऐसे अनेक कवि होंगे, जिन्होंने ब्रज की बोली में काव्य-रचना की होगी, किंतु उनमें से अधिकांश व्यक्तियों के नाम तक आज कल अज्ञात हैं। हिंदी के इतिहासकारों ने सूरदास के पूर्ववर्ती जिन कवियों का नामोल्लेख किया है, उनमें से खुसरो की पहेलियों, नामदेव की बानियों, कबीर की साखियों और लालचदास हलवाई कृत भागवत-भाषा की दोहा-चौपाइयों में ब्रज-बोली का एक साहित्यिक रूप दिखलायी देता है; किंतु वे कवि न तो एक मात्र ब्रजभाषा के कवि थे और न उन्होंने ब्रजभाषा के व्यवस्थित रूप का उपयोग किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास से पहले ही ब्रज की बोली ने भाषा का रूप धारण कर साहित्य में स्थान तो प्राप्त कर लिया था, किंतु उसे साहित्यिक भाषा का समुचित सामर्थ्य सूरदास एवं उनके सहयोगियों की रचनाओं द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

सूरदास की ब्रजभाषा—

सूरदास के काव्य में जिस ब्रजभाषा का उपयोग हुआ है, उसमें समस्त साहित्यिक गुण विद्यमान हैं। यह ठीक है कि उनकी भाषा का रूप वैसा शुद्ध एवं परिमार्जित नहीं है, जैसा उनके परवर्ती रसखान, मतिराम, बिहारी, घनानंद और देव आदि कवियों की भाषा का है, किंतु अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा उन्होंने आरंभिक अवस्था में ही इसको इतना समृद्ध एवं वैभवपूर्ण बना दिया, यह क्या कम आश्चर्य की बात है! सूरदास और उनके सहयोगियों की रचनाओं ने ब्रज की इस साधारण बोली में वह चमत्कार पैदा कर दिया था कि वह शीघ्र ही उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा के रूप में समस्त कवि-समुदाय के आकर्षण का केन्द्र बन गयी।

सूरदास की भाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ ही साथ संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द भी प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। उनके विशालकाय काव्य-साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके पास शब्दों का अक्षय भंडार था, जिसके कारण वे किसी भी प्रकार के भाव को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने में सर्वथा समर्थ थे। उन्होंने एक ही बात को अनेक प्रकारों और अनेक ढंगों से कहा है, जिसके कारण उनके कथन में पुनरुक्ति का सा आभास होने लगता है, किंतु वास्तव में यह सूरदास के कथन की विशिष्ट शैली है, जिसकी सफलता उनकी भाषा-समृद्धि पर आधारित है। सूरदास जैसे शब्दों के धनी ही इस प्रकार की काव्य-रचना कर सकते थे।

सूरदास की भाषा विषयक विशेषताएँ—

सूरदास की कविता के अधिकांश विषय शृंगार एवं वात्सल्य से संबंधित हैं, अतः उनके काव्य में ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण अधिक परिणाम में हैं। इन गुणों के कारण कोमल-कांत पदावली का बाहुल्य उनकी भाषा की पहली विशेषता है। उनकी भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें भावों के अनुरूप उपयुक्त शब्दों का संगठन है, जिसके कारण उनका कथन चित्र के समान पाठकों को आनंदित करता है। उनकी भाषा की तीसरी विशेषता उनकी सार्थक शब्द-योजना है, जिसका सफलता पूर्वक निर्वाह उनके पदों में आरंभ से अंत तक किया गया है। उनकी चौथी विशेषता भाषा का धारावाही प्रवाह है, जो संगीत के ताल-स्वरों के कारण और भी आनंददायक हो गया है। उनकी भाषा की पाँचवीं विशेषता यह है कि यह अत्यंत बलवती और सजीव है। भावों के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त होती है। ये बातें सूरदास की भाषा में प्रचुरता से मिलती हैं।

सूरदास की मिश्रित भाषा—

जैसा पहले लिखा जा चुका है कि सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया गया है इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में खड़ी बोली, पूर्वी, बुंदेलखंडी, पंजाबी, गुजराती और अरबी-फारसी के शब्द भी प्रचुर परिणाम में मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

उन्होंने अरबी फारसी शब्दों का बड़ी स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग किया है मुसलमानी संसर्ग के प्रभाव से जो शब्द यहाँ की बोलचाल की भाषा में सम्मिलित हो गये थे, सूरदास ने उनका बहिष्कार नहीं किया, बल्कि उनको अपनी भाषा के अनुकूल बना लिया। इन शब्दों के उपयोग से उनकी भाषा मिश्रित हो गयी है, किंतु साथ ही वह बलवती एवं प्रभावशालिनी भी बन गयी है।

सूरदास की कुछ रचनाओं में खड़ी बोली का मिश्रण भी मिलता है यहाँ पर उनका एक खड़ी बोली मिश्रित भाषा का पद दिया जाता है, जिसमें खड़ी बोली का प्राचीन रूप जाना जा सकता है। अकबर के समय में खड़ी बोली का भी एक व्यवस्थित रूप बन रहा था। परमानंददास, नंददास और

रसखान की कतिपय रचनाओं में भी खड़ी बोली का एक रूप दिखलायी देता है। सं० १७५२ की "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में कहीं-कहीं पर शुद्ध खड़ी बोली के गद्य का रूप भी दिखलायी देता है। सूरदास का खड़ी बोली मिश्रित एक पद इस प्रकार है—

मैं योगी यस गाया, रे बाला मैं योगी यस गाया।
तेरे सुत के दरसन कारन, मैं कासी से धाया॥ रे बाला०
परब्रह्म पूरन पुरुषोत्तम सकल लोक जामाया।
अलख निरंजन देखन कारन, तीन लोक फिरि आया॥ रे बाला०
धन तेरा भाग यसोदा रानी जिन ऐसा सुत जाया।
गुनन बड़ा छोटा मत जानौ, अलख रूप धरि आया॥ रे बाला०
जो भावे सो लीजे रावर, करो आपुना दाया।
देहु असीस मेरे बालक को, अविचल बाढ़े काया॥ रे बाला०
ना मैं लैहों पाट-पटंबर, न लैहों कंचन-माया।
मुख देखों तेरे बालक को, यह मेरे गुरु ने बताया॥ रे बाला०
कर जोरे विनवै नंदरानी, सुनि योगिन के राया।
मुख देखन नहिं दैहों रावरे, बालक जात डराया॥ रे बाला०
काला पीला गौर रूप है, बाघंबर ओढ़ाया।
कहुँ डायन सी दृष्टी लागे, बालक जात डराया॥ रे बाला०
जाकी दृष्टि सकल जग ऊपर, सो क्यों जात डराया।
तीन लोक का स्वामी मेरा, सो तेरे भवन छिपाया॥ रे बाला०
बाल-कृष्ण को ल्याइ यसोदा, कर अंचल मुख छाया।
कर पसार चरनन रज लीन्हों, सिंगी-नाद बजाया॥ रे बाला०
अलख-अलख करि पाँय छुये हैं, हँसि बालक किलकाया।
पांच बेर परिक्रमा कीनी, अति आनंद बढ़ाया॥ रे बाला०
हरि की लीला हर मन अटक्यौ, चित नहिं चलत चलाया।
अखिल ब्रह्मांड के नायक कहिये, नंद घरहिं प्रगटाया॥ रे बाला०
इंद्र-चंद्र-सूरज सनकादिक, सारद पार न पाया।
तुमहीं ब्रह्मा, तुमहीं विष्णु, तुमहीं ईस बताया॥ रे बाला०
तुम विश्वंभर, तुम जग-पालक, तुमहीं करत सहाया।
कहाँ बास, यह कहत यसोदा, सुन योगिन के राया॥ रे बाला०
कौन देस के योगी तुम हो, कौने नाम धराया।
"सूरदास" कहै सुनो यसोदा, शंकर नाम बताया॥ रे बाला०

२. सूर-काव्य की सरसता

काव्य की आत्मा—

यदि भाषा काव्य का कलेवर है, तो रसपूर्ण कथन काव्य की आत्मा है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने सरस काव्य को ही वास्तविक काव्य बतलाया है। जिस काव्य में रस नहीं, वह शब्दाडंबर मात्र है। सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र रसपूर्ण कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं।

सूरदास के काव्य में रस-परिपाक—

रसों में शृंगार रस प्रमुख है, जिसका पूर्ण परिपाक सूरदास के काव्य में हुआ है। शृंगार रस के संयोग और विप्रलंभ दो पक्ष होते हैं। सूरदास ने दोनों प्रकार के शृंगार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव-लोक में विचरने लगता है। आचार्यों ने शृंगारिक कथन के जितने अंग बतलाये हैं, सूरदास के काव्य में उनका पूर्ण रूपेण समावेश है।

प्राचीन रस-शास्त्रियों के मतानुसार वात्सल्य भी शृंगार रस के अंतर्गत है। सूरदास के काव्य में वात्सल्य का जैसा स्वाभाविक और मर्म-स्पर्शी कथन हुआ है, वैसा किसी भी भाषा के कवि ने आज तक नहीं किया। उन्होंने वात्सल्य का ऐसा सांगोपांग एवं पूर्ण कथन किया है कि वह शृंगार के अंतर्गत "भाव" की कोटि से निकल कर विभाग, अनुभाव, संचारी आदि से परिपुष्ट स्वयं एक "रस" बन गया है। सूरदास ने शृंगार की तरह वात्सल्य के भी संयोग एवं वियोग पक्षों का कथन किया है। नंद-यशोदा द्वारा बाल कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं के सुखानुभव में वात्सल्य के संयोग पक्ष का निरूपण है, तो उनके मथुरा चले जाने के पश्चात् नंद-यशोदा के करुण क्रंदन में वात्सल्य के वियोग पक्ष का प्रतिपादन है।

हास्य रस शृंगार रस का सहयोगी और मित्र रस है। सूरदास के काव्य में शिष्ट हास्य का भी सफलता पूर्वक कथन हुआ है। अपनी भक्ति-भावना के कारण सूरदास की दृष्टि में "निर्वेद" का विशेष महत्व नहीं है, अतः उन्होंने शांत रस के कथन अपेक्षाकृत कम किये हैं, तब भी उनके "विनय" के पदों में शांत रस का भी यथेष्ट आभास मिल जाता है। इन रसों के

अतिरिक्त अन्य रसों का भी सूरदास ने बड़ी मार्मिकता के साथ कथन किया है। यहाँ पर सूरदास द्वारा रचे हुए विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे उनकी काव्य-प्रतिभा का कुछ ज्ञान हो सकता है।

१. शृंगार रस—

(संयोग शृंगार)

नवल निकुंज, नवल नवला मिलि, नवल निकेतनि रुचिर बनाए।
विलसत विपिन विलास विविध वर, बारिज वदन बिकच सचुपाए॥
लागत चंद्र मयूख सुतौ तनु, लता-भवन-रध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन बल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा धार सत नाए॥
सुनि-सुनि सूचति स्रवन सुंदरी, मौन किए मोदति मन लाए।
"सूर" सखी राधा-माधौ मिलि, क्रीड़त हैं रति-पतिहिं लजाए॥

बल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनैं उर धरिया॥
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकत मनि कंचन में जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
'सूरदास' बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया॥

(विप्रलंभ शृंगार)

बिन गोपाल बैरिन भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम-ज्वाल की पुंजैं॥
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि धनसार संजीवनि, दधिसुत-किरन भानु भई भुंजैं॥
ए ऊधौ! कहियो माधव सों, बिरह-कदन करि मारत लुंजैं।
'सूरदास' प्रभु कौ मग जोवत, अँखियाँ भईं नरव ज्यों गुंजैं।

निसि-दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहू, उर कपोल भए कारे।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर बिच बहत पनारे॥
'सूरदास' प्रभु अंबु बढ्यौ है, गोकुल लेहु उबारे।
कहँ लौं कहौं स्याम घन सुंदर, विकल होत अति भारे॥

वियोग की दस दशाएँ—काव्यशास्त्र के आचार्यों ने विप्रलंभ शृंगार में वियोग की निम्न लिखित दस दशाएँ मानी हैं—

१. अभिलाषा, २. चिंता, ३. स्मरण, ४. गुण-कथन, ५. उद्वेग ६. प्रलाप, ७. उन्माद, ८. व्याधि, ९. जड़ता और १०. मूर्च्छा

सूरदास ने इन दसों दशाओं का बड़ा मार्मिक कथन किया है। यहाँ पर हम उनके तत्संबंधी पद उपस्थित करते हैं—

(१. अभिलाषा)

ऊधौ ! स्याम इहाँ लै आवहु ।
ब्रज-जन चातक मरत पियासे, स्वाँति बूंद बरसावहु ॥
ह्याँ तें जाहु, बिलंब करहु जिनि, हमरी दसा जनावहु ।
घोष सरोज भये हैं संपुट, होइ दिनमनि बिगसावहु ॥
जो ऊधौ हरि इहाँ न आवहिं, तौ हमैं वहाँ बुलावहु ।
"सूरदास" प्रभु हमहिं मिलावहु, तब तिहुँ पुर यस पावहु ॥

(२. चिंता)

मधुकर ! ये नयना पै हारे ।
निरखि-निरखि मग कमल-नयन कौ, प्रेम-मगन भए भारे ॥
ता दिन तें नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे ।
सपन, तुरी, जागत पुनि सोई, जो हैं हृदय हमारे ॥
यह निर्गुन लै ताहि बतावो, जो जानैं याके सारे ।
"सूरदास" गोपाल छाँड़ि कै, चूसैं टेंटी खारे ॥

(३. स्मरण)

मेरे मन इतनी सूल रही ।
वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं, जे नँदलाल कही ॥
एक दिवस मेरे गृह आए, मैं ही मथति दही ।
देखि तिन्हैं मैं मान कियौ सखि, सो हरि गुसा गही ॥
सोचति अति पछितातति राधिका, मुर्छित धरनि ढही ।
"सूरदास" प्रभु के बिछरे तें, बिथा न जाति सही ॥

(४. गुण-कथन)

इहिं बिरियाँ बन तें ब्रज आवते ।
दूरहिं तें वह बैनु अधर धरि, बारंबार बजावते ॥
कबहुँक काहू भाँति चतुर चित, अति ऊँचे सुर गावते ।
कबहुँक लै- लै नाम मनोहर, धवरी धेनु बुलावते ॥
इहि विधि बचन सुनाय स्यामघन,मुरछे मदन जगावते ।
आगम सुख उपचार विरह-ज्वर, बासर-ताप नसावते ॥
रुचि-रुचि प्रेम पियासे नैनन, क्रम-क्रम बलहिं बढ़ावते ।
'सूरदास'स्वामी तिहि अवसर,पुनि-पुनि प्रगट करावते ॥

(५. उद्वेग)

हमारे माई ! मोरउ बैर परे ।
घन गरजै, बरजै नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे ॥
करि एक ठौर बीनि इनके पँख, मोहन सीस धरे ।
याहीं तें हम ही कों मारत, हरि ही ढीठ करे ॥
कह जानिऐ कौनगुन, सखि री ! हम सों रहत अरे ।
"सूरदास" परदेस बसत हरि, ये बन तें न टरे ॥

(६. प्रलाप)

मधुवन ! तुम कत रहत हरे !
बिरह-बियोग स्यामसुंदर के, ठाढ़े क्यों न जरे ?
तुम हौ निलज, लाज नहिं तुम कों, फिर सिर पुहुप धरे ।
ससा, स्यार और बन के पखेरू, धिक-धिक सबद करे ॥
कौन काज ठाढ़े रहे बन में, काहै न उकठि परे ?

(७ उन्माद)

कर धनु लै किन चंदहिं मारि ?
तू हरुवाय जाय मंदिर चढ़ि, ससि सन्मुख दरपन बिस्तारि ।
याही भाँति बुलाय, मुकुर अति खंड-खंड कर डारि ॥

(८. व्याधि)

और सकल अंगन तें ऊधौ ! अँखियाँ बहुत दुखारी ।
अधिक पिराति,सिराति न कबहूँ,अनेक जतन करि हारी ॥

चितवत मग, सुनिमेष न मिलवत, विरह विकल भईं भारी ।
भरि गईं विरह-वाय माधौ के, इकटक रहत उघारी ॥
अलि आली गुरु ज्ञान सलाका, क्यों सहि सकति तुम्हारी ।
"सूर" सु अंजन आँजि रूप-रस, आरति हरो हमारी ॥

(९. जड़ता)

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी ।
हरि के चलत देखि अत ऐसी, मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥
सूखे बदन, स्रवत नैनन तें, जल-धारा उर बाढ़ी ।
कंधनि बाँह धरैं चितवति द्रुम, मनहुँ बेलि दब डाढ़ी ॥
नीरस करि छाँड़ी सुफलक-सुत, जैसै दूध बिन साढ़ी ।
"सूरदास" अक्रूर-कृपा तें, सही विपति तनु गाढ़ी ॥

(१०. मूर्च्छा)

जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं ।
परीं मुरछि धरनी ब्रज-बाला, जो जहँ रही सु तहीं ॥
सपने की रजधानी है गई, जो जागी कछु नाँहीं ।
बार-बार रथ ओर निहारहीं, स्याम बिना अकुलाहीं ॥
कहा आय करि हैं ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी ।
"सूर" कहत सब ऊधौ आए, गईं स्याम-सर मारी ॥

वात्सल्य—

(संयोग

(१) ते चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुंदर बदन विलोकति, उर आनंद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिर जीवहु मेरौ कुंवर कन्हैया ॥
कबहुँक बल कों टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
"सूरदास" स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥

(२) जसुमति लै पलिका पौढ़ावति ।
मेरौ आजु अति ही बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरैं सुर गावति ॥
पौढ़ि गई हरुऐं करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने ।
कर सों ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने ॥
पौढ़ौ लाल, कथा इक कहि हौं, अति मीठी, स्रवननि कों प्यारी ।
यह सुनि "सूर" स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी ॥

(३) आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नँदरानी ।
तारी दै-दै गावहीं, मधुरी मृदु बानी ॥
पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै ।
नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै ॥
जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै ।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै ॥
केहरि-नख उर पर रुरै, सुठि सोभा कारी ।
मनों स्याम घन मध्य में, नव ससि उजियारी ॥
गभुआरे सिर केस हैं, बर घूँघर वारे ।
लटकन लटकत भाल पर, बिधु मधि गन तारे ॥
कठुला कंठ चिबुक-तरै, मुख दसन विराजै ।
खंजन बिच सुक आनि कै, मनु परयौ दुराजै ॥
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखत जिय तें ।
"सूरदास" प्रभु स्याम कौ, सुख टरत न हिय तें ॥

(वियोग)

(१) यद्यपि मन समुझावत लोग ।
सूल होत नवनीत देखि, मेरे मोहन के मुख जोग ।
प्रात काल उठि माखन-रोटी, को बिनु माँगे दैहै ।
अब उहिं मेरे कुँवर कान्ह कों, छिन-छिन अंकम लैहै ॥
कहियो पथिक ! जाइ घर आवहु, राम-कृष्ण दोउ भैया ।
"सूर" स्याम कत होत दुखारी, जिनकें मो सी मैया ॥

(२) सँदेसौ देवकी सों कहियो ।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो ॥
उबटन, तेल और तातौ जल, देखत ही भजि जाते ।
जोइ-जोइ माँगत, सोइ-सोइ देती, करम-करम करि न्हाते ॥
तुम तौ टेव जानतिहिं ह्वै हौ, तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहिं, माखन-रोटी भावै ॥
अब यह 'सूर' मोहिं निसि-बासर, बड़ौ रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलक-लडैते लालन, ह्वै हैं करत सँकोच ॥

(३) मेरैं कुँवर कान्ह बिन सब कछु, वैसैहि धरयौ रहै ।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै ॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गति सूल सहै ।
दिन उठि घेरत घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै ॥
जो व्रज में आनंद हुतौ, मुनि मनसा हू न गहै ।
"सूरदास" स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै ॥

२. हास्य रस —

सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीला के प्रसंगों में ही कई स्थानों पर स्मित हास्य की बड़ी सुंदर व्यंजना की है । जब बालक कृष्ण माखन चुरा कर खाते हुए पकड़ लिये जाते हैं, तब वे अपने मुह पर लगे हुए माखन को पोंछते हुए और हाथ के दोना को पीठ के पीछे छिपाते हुए किस प्रकार अपनी सफाई दे रहे हैं । उनकी इस चेष्टा पर स्वाभाविक रूप से मंद हास्य की छटा छा जाती है—

मैया ! मैं नहीं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ ॥
देखि तुही छीके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ ।
तु ही निरखि नन्हें कर अपनैं, मैं कैसै करि पायौ ॥
मुखि दधि पोंछि, बुद्धि एक कीन्हीं, दौना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ॥
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ ।
"सूरदास" जसुमति कौ यह सुख,सिव-बिरंचि नहिं पायौ ॥

इसी प्रकार स्मित हास्य का एक दूसरा प्रसंग देखिये । राधिका अपनी माता से यशोदा के साथ अपने वार्तालाप की कथा कह रही है और उसकी माता अपनी पुत्री की बालोचित चपलता पर मन ही मन हँस रही है—

मेरे आगें महरि यसोदा, मैया री ! तोहिं गारी दीन्ही ।
वाकी बात सबै मैं जानति, वै जैसी, तैसी मैं चीन्ही ॥
तो कों कहि, पुनि कह्यौ बबा कों, बड़ौ धूर्त्त वृषभान ।
तब मैं कह्यौ, ठग्यौ कब तुम कों, हँसि लागी लपटान ॥
भली कही तैं मेरी बेटी ! लयौ आपुनौ दाउ ।
जो मुहि कह्यौ,सबै उनके गुन, हँसि-हँसि कहति सुभाउ ॥
फेरि-फेरि बूझति राधा सों, सुनति हँसति सब नारि ।
"सूरदास' वृषभान-घरनि,यसुमति कों गावति गारि ॥

उद्धव-गोपी संवाद में सूरदास ने गोपियों द्वारा उद्धव के निर्गुण ज्ञान का मज़ाक़ उड़ाते हुए भी हास्य रस का सुंदर प्रदर्शन किया है—

निर्गुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसौ बरन, भेस है कैसौ, केहि रस कें अभिलासी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपुनौ, जो रे ! गहैगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सौ, "सूर" सबै मति नासी ॥

३. वीर रस—

(१) गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ,
झटकि लीन्हों तुरत पटकि धरनी ।
भटक अति सब्द भयौ, खुटक नृप के हिऐं,
अटक प्रानन परयौ चटक करनी ॥
लटकि निरखन लग्यौ, मटकि सब भूलि गयौ,
हटकि गयौ गटक सब, मीच जागी ।
मुष्टिकै मरदि, चाणूर चुरकट करयौ,
कंसकों कंप भयौ, रंग-भूमि अनुराग रागी ॥

(२) देखि नृप तमकि, हरि चमक तहाँई गए,
दमकि लीन्हों गिरह बाज जैसैं ।
धमकि मारयौ, घाउ गुमकि हृदयै रह्यौ,
झमकि गहि केस, लै चले ऐसैं ॥
ठेल हलधर दियौ, झेल तब हरि लियौ,
महल के तरैं, धरनी गिरायौ ।
अमर जय-ध्वनि भई, धरन-त्रिभुवन गई,
कंस मारयौ निदरि देवरायौ ॥
धन्य बानी गगन, धरनि-पाताल धन्य,
धन्य हो धन्य बसुदेव-ताता ।
धन्य अवतार सुर-धरनि उपकार कों,
"सूर" प्रभु धन्य बलराम भ्राता ॥

(१) आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ ।
तौ लाजौ गंगा जननी कों, सांतनु-सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि, महारथ खंडौ, कपिध्वज सहित डुलाऊँ ।
इती न करौं सपथ मोहि हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ ॥
पांडव दल सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ ।
"सूरदास" रन भूमि विजय बिनु जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

(शृंगार में वीर रस)

रूँधे रति-संग्राम खेत नीके ।
एक तें एक रनवीर जोधा प्रबल, मुरत नहिं नैंक, अति सबल जी के ॥
भौंह कोदंड, रस नैंन जोधान की, काम छूटनि कटाच्छनि निहारें ।
हँसनि द्विज चमक, करि वरनि लोहन झलक, नखन-छत-घात नेजा सँभारें ॥
पीत पट डारि कंचुकी मोचति करनि, कवच सन्नाह ए छुटे तन तें ।
भुजा भुज धरति, मनों द्विरद सुंडनि लरति, उर-उरन-भिरे, दोउ जुरे मनतें ॥
लटकि लपटानि मानों सुभट लरि परे खेत, रति-सेज चुम बितान कीन्हों ।
'सूर' प्रभु रसिक प्रिय, राधिका रसिकिनी, कोक-गुन सहित सुख लूटि लीन्हों ॥

४. करुण रस—

(१) अति मलीन वृषभानु-कुमारी ।
हरि-स्रम-जल अंतर तनु भीजे, ता लालच न धुवावति सारी ॥
अधोमुख रहति, उरधि नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुवारी ।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ॥
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिन दूजै अलि जारी ।
"सूर" स्याम बिनु यों जीवति हैं, ब्रज-बनिता सब स्याम-दुलारी ॥

(२) देखी मैं लोचन चुअत अचेत ।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत, ऊरध स्वांस न लेत ।
स्रवन न सुनत चित्र-पुतरी लौं, समुझावत जितनेत ॥
कहुँ कंकन, कहुँ गिरी मुद्रिका, कहुँ ताटंक, कहुँ नेत ।
धुज होइ सूखि रही "सूरज" प्रभु, बँधी तुम्हारे हेत ॥

५. वीभत्स रस—

सूरदास की कविता का विषय और उनकी प्रकृति वीभत्स रस के सर्वथा प्रतिकूल है, अतः विशाल कार्य सूर-साहित्य में वीभत्स रस के उल्लेखनीय उदाहरण कठिनता से ही मिलेंगे ।

६. अद्भुत रस—

(१) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपने रँग खेलत ॥
सिव सोचत विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यौ, सागर-जल झेलत ।
विडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत ॥
मुनि-मन भीत भए, भुवि कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत ।
उन ब्रज-वासिन बात न जानी, समझे "सूर" सकट पग ठेलत ॥

(२) मुरली सुनत अचल चले ।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल वृच्छहु फले ॥
पय स्रवत गोधननि थन तें, प्रेम पुलकित गात ।
झुरे द्रुम, अंकुरित पल्लव, विटप चंचल पात ॥
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि ।
धरनि उमँगि, न रहति थिर चित, जती जोग बिसारि ॥
ग्वाल घर-घर सहज सोवत, रहे सहज सुभाय ।
"सूर" प्रभु रस-रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाय ॥

(३) देखौ अद्भुत अविगत की गति, कैसौ रूप धरयौ है ।
तीन लोक जाके उदर बसत, सो सूप के कौन परयौ है ॥
जाके नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग व्रत साध्यौ ।
ताकौ नाल छोनि ब्रज-जुवती, बाँटि तगा सों बाँध्यौ ॥
जिहि मुख कौं समाधि सिव साधी, आराधन ठहराने ।
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध-लार लपटाने ॥
जिन स्रवननि जन की विपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै ।
तिन स्रवनन ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै ॥
विस्व भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे हैं ।
रूप विराट कोटि प्रति रोमन, पलना माँझ परे हैं ॥
जिहि भुज-बल प्रहलाद उबारयौ, हिरनकसिप उर फारे ।
सो भुज पकरि कहत ब्रज-नारी, ठाढ़े होहु लला रे ॥
जाकौ ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी ।
सोई "सूर" प्रगट या ब्रज में, गोकुल-गोप बिहारी ॥

७. भयानक रस—

(१) भहरात झहरात दावानल आयौ।
घेर चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन,
धरनि आकास चहुँ पास छायौ॥
बरत बन बाँस, थरहरत कुस-काँस,
जरि उड़त बहु झाँस, अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल फूटत पटकि,
द्रुम चटकि लट लटकि, फाटे नवायौ॥
अति अंगनि भार भंभार धुंधार करि,
उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन-पात, भहरात, झहरात,
अररात तरु महा धरनी गिरायौ॥

(२) मेघ दल प्रबल ब्रज-लोग देखे।
चकित जहँ-तहँ भये, निरखि बादर नये,
ग्वाल-गोपाल डरि गगन पेखे॥
ऐसे बादर सजल, करत अति महा बल,
चलत घहरात करि अंध काला।
चकृत भये नंद, सब महर चकृत भये,
चकृत नर-नारि, हरि करत ख्याला॥
घटा घनघोर घहरात, अररात,
दररात सररात, ब्रज-लोग डरपैं।
तड़ित आघात, तररात, उतपात सुनि,
नर-नारि सकुचि तनु-प्रान अरपैं॥

८. रौद्र रस—

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ।
बज्र-घातनि करौं चूरन, देउँ धरनि मिलाइ॥
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ।
जल बरसि ब्रज धोइ डारौं, लोग देउँ बहाइ॥
खात खेलत रहैं नीके, करि उपाधि बनाइ।
बरस दिवस मोहि देत पूजा, दई सोउ मिटाइ॥
रिस सहित सुरराज लीन्हे, प्रबल मेघ बुलाइ।
"सूर" सुरपति कहत पुनि-पुनि, परौ ब्रज पर धाइ॥

६. शांत रस—

(१) नर ! तैं जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भरयौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ॥
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि गुरुगोविंद नहिं कीनौ ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया में दीनौ ॥
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बल हीनौ ॥
लख चौरासी जौनि भरमि कै, फिरि वाहीं मन दीनौ ।
"सूरदास" भगवंत-भजन बिनु, ज्यों अंजलि-जल छीनौ ॥

(२) माधौ जू ! मन माया बस कीन्हौ ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाँहीं, ज्यों पतंग तन दीन्हौ ॥
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर ।
मैं मति-हीन मरम नहिं जान्यौ, परयौ अधिक करि दौर ॥
विवस भयौ निलिनी के सुक ज्यों, बिन गुन मोहि गह्यौ ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ परि दुख-पुंज सह्यौ ॥
बहुतक दिवस भए या जग में, भ्रमत फिरयौ मति-हीन ।
"सूर" स्यामसुंदर जो सेवै, क्यों होवै गति दीन ॥

(३) थोरे जीवन भयौ तन भारौ ।
कियौ न संत समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ ॥
अति उनमत्त मोह-माया बस, नहिं कछु बात विचारौ ।
करत उपाय न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ ॥
इंद्री स्वाद विवस निसि-बासर, आप अपुनपौ हारौ ।
जल औंड़े में चहुँ दिसि पैरयौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ ॥
बाँधी मोट पसारि त्रिबिध गुन, नहिं कहुँ बीच उतारौ ।
देख्यौ "सूर" बिचारि सीस परी, तब तुम सरन पुकारौ ॥

(४) जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं ।
राज-काज, सुत, बित की डोरी, बिन विवेक फिरयौ भटकैं ॥
कठिन जु गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं ।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीच ही लटकैं ॥
ज्यों बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं ।
"सूरदास" सोभा क्यों पावै, पिय बिहीन धनि भटकैं ॥

सूर-काव्य का नायिकाभेद—

काव्य शास्त्र के अनुसार शृंगार रस के आलंबन विभाग के अंतर्गत नायिकाभेद का स्थान है, इसलिए वह रस प्रकरण का ही एक अंग है, किंतु रीति कालीन कवियों ने उसका ऐसा विस्तृत एवं सांगोपांग कथन किया है कि वह एक स्वतंत्र विषय बन गया है।

भक्ति कालीन कवियों ने अपने भक्ति भाव की अभिव्यक्ति के लिए अपने इष्ट देव का शृंगार रस पूर्ण कथन करने की पद्धति प्रचलित की, जिसमें नायिकाभेद का स्वतः समावेश हो गया। रीति कालीन कवियों को भक्त कवियों के नायिका-वर्णन के रूप में शृंगारिक कथन की एक आकर्षक शैली प्राप्त हुई, जिसमें आलंबन का भेद कर उन्होंने अपना चमत्कारिक कवित्व उपस्थित किया। उन्होंने लक्षण और उदाहरण के रूप में नायिकाभेद का ऐसा व्यापक वर्णन किया कि वह शृंगार रस के उपांग की कोटि से निकल कर स्वयं एक शास्त्र बन गया।

भक्ति कालीन कवि होने के कारण सूरदास ने नायिकाभेद का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत नहीं किया है, किंतु उनके शृंगारिक कथन में नायिकाभेद का स्वाभाविक विकास है। कुछ विद्वान "साहित्य-लहरी" की रचना में रीति कालीन कवियों की सी प्रवृत्ति पाते हैं, किंतु इसमें भी नायिकाओं का लक्षण रहित वर्णन है, जो रीति कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

सूरदास ने राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का ऐसा विशद वर्णन किया है कि इसमें नायिकाभेदोक्त कथन भी प्रचुर परिमाण में आ गये हैं। राधा-कृष्ण के पारस्परिक अनुराग के क्रमिक विकास, उनके संयोग एवं वियोग की अनेक चेष्टाओं तथा उनके मान, उपालंभ, मिलन आदि के विविध कथनों में नायिका के अधिकांश भेदोपभेदों के तत्व आगये हैं।

पुष्टि संप्रदाय में स्वकीया भक्ति का महत्व है, अतः सूर-काव्य में स्वकीया नायिका के अनुकूल अज्ञातयौवना से लेकर मध्या, प्रौढ़ा नायिकाओं के प्रायः समस्त भेदोपभेदों का समावेश हो गया है। चैतन्य संप्रदाय की भाँति बल्लभ संप्रदाय में परकीया भक्ति ग्राह्य नहीं है, अतः सूर-काव्य में परकीया नायिका के कथन कम मिलते हैं। बल्लभ संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुसार राधाजी स्वकीया और चंद्रावली जी परकीया हैं। गोपियों में अधिकांश

ने स्वकीया भाव से ही श्री कृष्ण प्रेम से किया था, इसलिए उनके वर्णन में भी स्वकीया तत्व का प्राधान्य है, किंतु उनके प्रेमानुराग और तत्संबधी उनकी विविध चेष्टाओं में कहीं-कहीं परकीया तत्व की भी अभिव्यंजना हो जाती है। इसके अतिरिक्त सूर-काव्य में गर्विता, मानवती आदि दशानुसार तथा प्रोषितपतिका, अभिसारिका, खंडिता आदि अवस्थानुसार नायिकाओं के बड़े विस्तृत वर्णन मिलते हैं। रीति कालीन कवियों की भाँति सूरदास ने लक्षण सहित नायिकाओं का नामोल्लेख नहीं किया है, तब भी उनके पदों में नायिका-भेद की अधिकांश नायिकाओं का कथन हो गया है। यहाँ पर हम उनके कुछ ऐसे पद उपस्थित करेंगे, जिनमें नायिकाभेद के अनुकूल कथन मिलते हैं।

दान-लीला में श्रीकृष्ण ने ब्रज-बालाओं के विकसित अंगों का ध्यान उनके उपमानों द्वारा दिलाया है, किंतु उनको इनका ज्ञान नहीं है। इस प्रकार निम्न पद में 'अज्ञातयौवना' के अनुकूल कथन मिलता है—

यह सुनि चकृत भईं ब्रज-बाला।
तरुनी सब आपुस में बूझति, कहा कहत गोपाला॥
कहाँ तुरग, कहाँ गज-केहरि, कहाँ हंस-सरोवर सुनिऐ।
कंचन कलस गढ़ाए कब हम, देखे धौं यह गुनिऐ॥
कोकिल, कीर, कपोत बरन में, मृग, खंजन, सुक संग।
तिनकौ दान लेत है हम सों, देखहु इनकौ रंग॥
चंदन, चौर, सुगंध बतावत, कहाँ हमारे पास।
"सूरदास" जो ऐसे दानी, देखि लेहु चहुँ पास॥

निम्न लिखित पदों में प्रौढ़ा के अंतर्गत "रतिप्रीता" और 'आनंद संमोहिता' नायिकाओं के अनुकूल तत्व मिलते हैं—

(१) नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे।
नव तरुवर बिहार दोउ क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागे॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे।
मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे॥
कबहुँक बैठि अंस भुज धरिकै, पीक कपोलनि दागे।
अति रस-रासि लुटावत लूटत, लालचि लाल सभागे॥
मानहुँ "सूर" कल्पद्रुम की निधि, लै उतरी फल आगे।
नहिं छूटति रति रुचिर भामिनी, वा सुख में दोउ पागे॥

(२) नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ॥
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर, स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया ।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकतमनि कंचन में जरिया ॥
उपमा काहि देउँ, को लाइक, मनमथ कोटि वारनै करिया ।
"सूरदास" बलि-बलि जोरी पर, नंदकुँवर वृषभानु कुँवरिया ॥

निम्न लिखित पद में अधीरा नायिका के अनुकूल कथन हुआ है—

मोहि छुवौ जिनि दूरि रहौ जू ।
जाकों हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू ॥
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी और दासी ।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुमकों भई हाँसी ॥
बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माँही ।
सुनहुँ 'सूर' मो तन कों इकटक चितवति,डरपति नाँही ॥

परकीया प्रेम के उदाहरण सूर-काव्य में कम मिलते हैं, फिर भी निम्न पदों में परकीया नायिका के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

(१) पलक ओट नहिं होत कन्हाई ।
घर गुरुजन बहुतै बिधि त्रासत, लाज करावत लाज न आई ॥
नयन जहाँ दरसन हरि अटके, स्रवन थके सुनि बचन सोहाई ।
रसना और नहीं कछु भाषत, स्याम-स्याम रट रहै लगाई ॥
चित चंचल संगहिं सँग डोलत, लोक-लाज- मर्याद मिटाई ।
मन हरि लियौ "सूर" प्रभु तबहीं, तनु बपुरे की कहा बसाई ॥

(२) थकित भए मोहन-मुख-नैन ।
घूँघट ओट न मानत कैसैहुँ, बरजत-बरजत कीन्हौं गौन ॥
निदरि गई मर्यादा कुल की, अपनौ भायौ कीन्हौं ।
मिले जाय हरि आतुर ह्वै कै, लूटि सुधा-रस लीन्हौं ॥

नायिकाभेद के आचार्यों ने परकीया नायिका के अंतर्गत 'वचन विदग्धा' और 'क्रिया विदग्धा' का वर्णन किया है । सूरदास ने राधा और गोपियों की चेष्टाओं में कई स्थानोंपर वचन और क्रिया की विदग्धता दिखलायी है । चाहें इन पदों में परकीत्व की भावना न हो, किंतु इनमें विदग्धता अवश्य है । निम्न लिखित पद में 'वचन विदग्धा' नायिका के अनुकूल कथन हुआ है—

तब राधा इक भाव बतावति ।
मुरु मुसुकाइ सकुचि पुनि लीन्हौं, सहज चली अलकैं निरुवारति ॥
एक सखी आवत जल लीन्हें, तासों कहति सुनावति ।
टेरि कह्यौ घर मेरे जैहौ, मैं जमुना तें आवति ॥
तब सुख पाइ चले हरि घर कों, हरि प्यारीहिं मनावत ।
"सूरज" प्रभु वितपन्न कोक-गुन, तातें हरि-हरि ध्यावत ॥

निम्न लिखित पद में 'क्रिया विदग्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

स्याम अचानक आय गये री ।
मैं बैठी गुरु जन बिच सजनी, देखत ही मेरे नैन नये री ॥
तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी, बेंदी सों कर परस किये री ।
आपु हँसे उत पाग मसकि हरि, अंतरयामी जान लिये री ॥
लै कर कमल अधर परसायौ, देखि हरषि पुनि हृदय धरयौ री ।
चरन छुवै दोउ नैन लगाये, मैं अपुने भुज अंक भरयौ री ॥
ठाढ़े रहे द्वार अति हित करि, तब ही तें मन चोरि गयौ री ।
"सूरदास" कछु दोष न मेरौ, उत गुरुजन, इत हेतु नयौ री ॥

नायिका के दशानुसार भेदों में 'अन्यसंभोग दुःखिता' के अनुकूल कथन सूरदास के निम्न पद में इस प्रकार प्राप्त होता है—

यह कहि मुख, मन सोचई, भई सौति हमारी ।
ऐसी सुंदर नारि कों, जब ही वे पैहैं ।
दोउ भुज भरि अँकवारि कै, हँसि कंठ लगै हैं ॥
यह बैरिन मो कों भई, धौं कहँ तें आई ।
स्यामहिं बस करि लेइगी, मैं जानी माई ॥

दशानुसार भेदों में मानवती नायिका का प्रमुख स्थान है । नायक के दोष का अनुमान कर नायिका का कोप पूर्वक मान करना और नायक द्वारा उसे मनाना शृंगारिक प्रकरण का महत्वपूर्ण अंग है। सूरदास ने 'मानवती' नायिका का इस प्रकार कथन किया है—

कहा भई धन बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ ।
तुमतें को है भावती, सो हृदय बसाऊँ ॥
तुमहिं स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान अधारा ।
वृथा क्रोध तिय क्यों करौ, कहि बारंबारा ॥
भुज गहि ताहि बतावहू, जो हृदय बतावति ।
"सूरज" प्रभु कहै नागरी, तुम तें कों भावति ॥

शृंगार रस के अंतर्गत "दूती" का भी कथन किया जाता है। नायक-नायिका को मिलाना उसका मुख्य कार्य है। एक दूती मानवती नायिका से अपना मान छोड़ कर प्रियतम से मिलने का किस प्रकार आग्रह कर रही है, यह निम्न लिखित पद में देखिये। इस पद में बसंत ऋतु का उद्दीपक प्रभाव बतलाया गया है—

यह ऋतु रूसिवे की नाँहीं।
बरसत मेघ मेदिनी के हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाहीं, ते तरुवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं॥
जोबन-धन है दिवस चारि कौ, ज्यों बदरी की छाहीं।
मैं दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीं॥

अवस्था के अनुसार दश विध नायिकाओं का कथन किया जाता है। निम्न लिखित पद में 'बासकसज्जा' नायिका के अनुकूल कथन किया गया है—

राधा रचि-रचि सेज सँभारति।
भवन गमन करि हैं हरि मेरे, हरषि दुखहिं निरबारति।
ता पर सुमन सुगंध बिछावति, बारंबार निहारति॥ ×

निम्न लिखित पद में "उत्कंठिता" नायिका की प्रिय-मिलन विषयक उत्सुकता दिखलायी गयी है—

चंद्रावली स्याम-मग जोवति।
कबहुँ सेज कर झारि सँवारति, कबहूँ मलय-रज भोवति॥
कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै-लै पुनि धोवति।
कबहुँ भवन, कबहूँ आँगन ह्वै, ऐसै रैनि बिगोवति॥
कबहुँक विरह जरति अति व्याकुल, आकुलता मन में अति।
"सूरस्याम" बहु रमनि-रमन पिय, यह कहि तव गुन तोवति॥

निम्न लिखित पद 'अभिसारिका' नायिका का उदाहरण है—

प्यारी अंग शृंगार कियौ।
बैनी रची सुभग कर अपने, टीकौ भाल दियौ॥
मोतियन माँग सँवारि प्रथम ही, केसरि-आड़ सँवारि।
लोचन आँजि, स्रवन तरवन छवि, को कवि कहै निवारि॥
नासा नथ अति ही छवि राजत, बीरा अधरन रंग।
नवसत साजि चली चोली बनि, "सूर" मिलन हरि संग॥

निम्न लिखित पद में 'विप्रलब्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

सोचति चली कुँवर घर ही तें, खरिकहिं गइ समुहाइ ।
कब देखौं वह मोहन मूरति, जिन मन लियौ चुराइ ॥
देखौ जाइ तहाँ हरि नाँहीं, चकृत भई सुकुमारि ।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलत, लागी प्रीति खुम्हारि ॥

सूरदास के पदों में 'खंडिता' नायिका के अनुकूल कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। निम्न लिखित पद में प्रातःकाल आये हुए नायक के तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्नों का कथन किया गया है—

जानति हौं जैसे गुननि भरे हो ।
काहे कों दुराव करत मनमोहन, सोइ पै कहौ तुम जहाँ ढरे हो ।
निसि जागत, निज भवन न भावत, आलसवंत सब अंग धरे हो ॥
चंदन तिलक मिल्यौ कहाँ बंदन, काम कुटिल कुच उर उघरे हो ॥
तुम अति कुसल किसोर नंद-सुत, कहौ कौन के चित्त हरे हो ।
औचक ही जिय जानि "सूर" प्रभु, सौंह करन कों होत खरे हो ॥

सूरदास ने वियोग शृंगार का बड़ा मार्मिक कथन किया है । उन्होंने ऐसे अनेक पदों की रचना की है, जिनमें 'प्रोषितपतिका' विरहणी नायिका के अनुकूल कथन प्राप्त होता है। श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् गोपियों का करुण क्रंदन इसी प्रकार का है ।

(१) हरि ! परदेस बहुत दिन लाये ।
कारी घटा देखि बादर की, नैन नीर भरि आये ॥
बीर बटाऊ पंथी हौ तुम, कौन देस तें आये ?
इह पाती हमरी लै दीजो, जहाँ साँवरे छाये ॥
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, मोवत मदन जगाये ।
"सूरदास" गोकुल के बिछुरे, आपुन भये पराये ॥

(२) बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि, नैनन की परतीति गई ।
उड़ि न मिले हरि संग विहंगम, ह्वै न गए घनस्याम-मई ॥
यातें क्रूर कुटिल सह मेचक, वृथा मीन-छवि छीनि लई ।
रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु नौ न भई ॥
अब काहै सोचत, जल मोचत, समय गए नित सूल नई ।
"सूरदास" याहीं तें जड़ भए, जब तें पलकन दगा दई ॥

३. सूर-काव्य की कलात्मकता

भक्ति और कला का मिश्रण—

यद्यपि सूरदास अपने काव्य-महत्व के कारण हिंदी कवियों के मुकुट-मणि माने जाते हैं, तब भी यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। उनके काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे पहले भक्त हैं और बाद में कवि। अपने इष्टदेव की भक्ति-भावना में आनंद विभोर होकर उन्होंने जो कुछ गाया है, वह भक्ति-काव्य की श्रेष्ठतम कृति है, इसलिए वह भक्ति रस से ओत-प्रोत है; किंतु साथ ही साथ उसमें काव्य-कला के भी समस्त गुण विद्यमान हैं। इन गुणों को लाने के लिए उनको अपनी ओर से कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ी है। उनके स्वाभाविक भक्ति-काव्य के धारावाही महानद में काव्य-कला के अनेक गुण छोटे-बड़े नदी-नालों की तरह स्वयं आकर मिल गये हैं! अवश्य ही इनके कारण उनके काव्य का महत्व और भी अधिक हो गया है। यहाँ पर हम कला की दृष्टि से सूर-काव्य की आलोचना करेंगे।

कोई कवि अपने भावों को किस प्रकार चमत्कार ढंग से व्यक्त करता है, इसकी छान-बीन करना उक्त कवि के कला-कौशल की आलोचना कहलाती है। कवि शब्द द्वारा अथवा अर्थ द्वारा अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है। इस काव्योक्त चमत्कार को काव्य शास्त्रियों ने 'अलंकार' कहा है, जो शब्दालंकार और अर्थालंकार के नाम से दो वर्गों में विभाजित है। शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार होने से उभयालंकार कहा जाता है। कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि के लिए अलंकार रूपी वस्त्राभूषण यदि अनिवार्य नहीं, तो कुछ न कुछ आवश्यक अवश्य हैं। दंडी आदि प्राचीन आचार्यों ने अलंकार को काव्य की आत्मा बतलाया है। अन्य आचार्यों ने भी किसी न किसी रूप में इसका महत्व माना है।

हिंदी कवियों में दो प्रकार के कवि पाये जाते हैं। इनको भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के रूप में दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। साधारणतया भक्ति-कालीन कवि भाव-पक्ष के एवं रीति-कालीन कवि कला-पक्ष के कवि कहे जाते हैं। सूरदास यद्यपि भाव-पक्ष के कवि हैं, तथापि उनकी भाव रूपी भागीरथी में कला रूपी कालिंदी भी आ मिली है। इस संगम के फल स्वरूप उनका काव्य अतीव आनंददायक हो गया है।

काव्य-कला और अलंकार—

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन के लिए अलंकारों पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है। सूर-काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट रूप का भी समावेश है। सूरदास ही अलंकार-योजना केशवदास जैसे चमत्कारवादी कवि की भाँति साध्य रूप में नहीं है, वरन् वह भाव-पक्ष की अभिव्यंजना का साधन मात्र बन कर आयी है।

रीति काल के कुछ कवियों ने अलंकारों के अपरिमित आग्रह में अपने काव्य के स्वरूप को ही बिगाड़ लिया है। उनके काव्य में अलंकारों की इतनी अधिकता है कि वे कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि करने की अपेक्षा उसके लिए भार स्वरूप हो गये हैं! इस प्रकार के कवियों की भाँति सूरदास अलंकारों के पीछे नहीं पड़े हैं, वरन् स्वयं अलंकार ही भावुक भक्तों की भाँति उनकी कविता-देवी का शृंगार करने को उपस्थित हो गये हैं!

वास्तविक बात यह है कि अंधे कवि सूरदास को सप्रयास कविता लिखने का सुयोग ही कहाँ था! वे तो नियमित कीर्तन के रूप में अपनी भक्ति-भावना के प्रसूनों की श्रद्धांजलि श्रीनाथ जी के चरणों में प्रति दिन अर्पित किया करते थे। इस कीर्तन के फल स्वरूप धारावाही रूप में जो काव्य-रचना हो जाती थी, उसमें अलंकारों का भी उचित रूप से स्वतः समावेश हो जाता था। इसके लिए उनके मस्तिष्क को कठिन व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती थी।

दृष्टकूट पदों की कलात्मकता—

उनके दृष्टकूट पदों को उपर्युक्त कथन के अपवाद स्वरूप उपस्थित किया जा सकता है। इस प्रकार के पद सूरसागर में भी हैं, किंतु उनकी 'साहित्य-लहरी' तो इसी प्रकार की शैली में रची गयी रचना है। 'साहित्य-लहरी' के दृष्टकूट पदों में सूरदास भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष का आग्रह करते हुए दिखलायी देते हैं, इसलिए कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना ही नहीं मानते हैं। हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं कि साहित्य-लहरी निश्चय पूर्वक सूरदास की कृति है, किंतु इसकी रचना का एक विशेष हेतु था, इसलिए यहाँ पर उसके कलात्मक रूप के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

जहाँ तक 'सूरसागर' के दृष्टकूट पदों का संबंध है, उनकी सार्थकता भी स्वयंसिद्ध है। "परोक्ष प्रियाह वै देवा"—देव को परोक्ष गानादि प्रिय होते हैं—इस श्रुति वाक्य के अनुसार सूरदास ने दृष्टकूट पदों द्वारा अपने इष्टदेव का परोक्ष गायन किया है, अतः इन पदों को कला-प्रदर्शन की अपेक्षा परोक्ष गायन के साधन मानना उचित है। तभी हम सूरदास के साथ वास्तविक न्याय कर सकते हैं।

सूरदास का एक दृष्टकूट पद देखिए—

देख री ! एक अदभुत रूप
एक अंबुज मध्य देखियत, बीस दधिसुत जूप॥
एक अवली दोय जलचर, उभय एक सरूप।
पाँच वारिज, ढिंग सोभित, कहो कौन स्वरूप ?
सिसु गति में भई सोभा, देखो चित्त विचार।
"सूर" श्री गोपाल की छवि, राखिए उर धार॥

इस पद के आरंभ में जो समस्या उपस्थित की गयी है, उसका अंत में उत्तर भी दे दिया गया है। इस पद के अलंकारिक कथन द्वारा सूरदास ने बुद्धिवादियों के सम्मुख एक पहेली सी उपस्थित की है, किंतु वास्तव में उनका अभिप्राय भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-छवि का गायन करना है।

सूर-काव्य के अलंकार—

वैसे तो सूरदास के काव्य में प्रभी प्रमुख अलंकारों का समावेश है, तथापि कुछ चुने हुए अलंकार उनको विशेष प्रिय ज्ञात होते हैं। ये अलंकार उनके काव्य मे पग-पग पर दिखलायी देते हैं। भावपक्ष के कवि होने के कारण उनके काव्य में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का आधिक्य है। अर्थालंकारों में भी सादृश्यमूलक—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि—अलंकारों का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। इन अलंकारों द्वारा उन्होंने अपने भावों का चित्र सा खींच दिया है।

सूर-काव्य में भाव-सौन्दर्य के साथ ही साथ भाषा का लालित्य भी दर्शनीय है, इसलिए इसमें शब्दालंकार भी जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक प्रधान हैं। इन अलंकारों का उत्कृष्ट रूप सूर-काव्य में मिलता है। कुछ आचार्यों ने श्लेष और वक्रोक्ति को भी शब्दालंकारों के अंतर्गत माना है, किंतु उनको अर्थालंकारों में ही रखना उचित है। 'साहित्य-लहरी' में श्लेष एवं यमक का प्राधान्य है और 'भ्रमरगीत' में वक्रोक्ति की छटा दिखलायी देती है।

सूरदास के निम्न लिखित पदों में अनुप्रासों की छटा देखिये—

(१) जागिऐ गोपाल लाल, आनँदनिधि नंद-बाल,
जसुमति कहै बार-बार भोर भयौ प्यारे।
नैन कमल-दल विसाल, प्रीति-बापिका-मराल,
मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे॥ ×
सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल-जाल, दुख-कदंब टारे।
त्यागे भ्रम-फंद-द्वंद, निरखि कै मुखारविंद,
"सूरदास" अति अनंद, मेटे मद भारे॥

(२) जागिऐ गोपाल लाल, प्रगट भई हंस-माल,
मिटयौ अंध-काल, उठौ जननि मुख दिखाई।
मुकुलित भए कमल-जाल, कुमुद वृंद बन विहाल,
मेटहु जंजाल, त्रिविध ताप तन नसाई॥
ठाड़े सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,
टेरत हैं बार-बार, आइए कन्हाई। ×
धेनु दुहन चले धाइ, रोहिनी तब लै बुलाइ,
दोहिनी मुहि दै मँगाइ, तब ही लै आई॥ ×

(३) चटकीलौ पट, लपटानौ कट, बंसीवट--
यमुना के तट नागर नट।
मुकुट लटक अल भ्रकुटी मटक देखौ,
कुंडल की चटक सों अटकि परी दृगनि लपट॥
आछी कंचन लकुट, ठटकीली बन-माल, कर टेके द्रुम डार,
टेढ़े ठाड़े नँदलाल छवि छाई घट-घट।
"सूरदास" प्रभु की बनक देखें गोपी-ग्वाल,
टारे न टरत, निपट आवै सौंधे की लपट॥

(४) ब्रज घर-घर सब होत बधाये।
कंचन कलस दूब दधि रोचन, महरि-महर वृंदाबन आये॥ ×
सकसकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढ़े।
"सूर" उपंग-सुत बोलत नाँहीं, अति हिरदै ह्व गाढ़े॥

सूरदास के कथन की शैली ही इस प्रकार की है कि इसमें सादृश्य मूलक अलंकारों के समावेश का अधिक अवसर रहता है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रमुख स्थान है, अतः सूर-काव्य में इनके अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। यहाँ पर उपमा अलंकार के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जिसमें सूरदास की कल्पना की उड़ान जानी जा सकती है—

(१) राधे ! तेरो बदन विराजत नीकौ।
जब तू इत-उत बंक विलोकति, होत निसापति फीकौ॥
भ्रकुटी धनुष, नैन सर साधे, सिर केसरि कौ टीकौ।×
"सूरदास" प्रभु विविध भाँति कर, मन झिझयौ हरि पी कौ॥

(२) सुधा सरोवर, छिटकि अनूपम।
ग्रीव कपोत मनों नास कीर सम॥

कीर नासा, इंद्र-धनु भू, भँवर से अलकावली।
अधर विद्रुम, बज्र कन दाड़िम किधौं दसनावली॥
ग्वौर केसरि अति विराजति, तिलक मृगमद कौ दियौ।
काम रूप विलोकि मोह्यौ, बास पद अंबुज कियौ॥१॥
हरि स्याम घन तन परम सुंदर, तड़ित बसन विराजई।
अँग-अंग भूषन सुरस ससि-पूरनकला मनौं भ्राजई॥
कमल मुख-कर, कमल लोचन, कमल मृदु पद सोहहीं।
कमल नाभिः, कमल सुंदर निरखि सुर-मुनि मोहहीं॥२॥

निम्न लिखित पद में सूरदास ने उपमाओं की झड़ी लगादी है, अतः इसमें 'मालोपमा' अलंकार है —

स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाँति, चकोर चंद्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसे॥×
ज्यों चकोर बस सरद चंद्र के, चक्रवाक बस भान।
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यों बस स्याम सुजान॥
ज्यों चातक बस स्वाँति बूँद है, तन के बस ज्यों जीय।
"सूरदास" प्रभु अति बस तेरे, समझि देखि धौं हीय॥

सूरदास के काव्य में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार स्थान-स्थान पर दिखलायी देते हैं। इन अलंकारों के सहारे उन्होंने अपने कथन को बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है। निम्न लिखित पद में उन्होंने उत्प्रेक्षाओं की भी माला सी पिरोदी है—

देखन बन ब्रजनाथ आजु, अति उपजत है अनुराग ।
मानहुँ मदन-बसंत मिले दोउ, खेलते फूले फाग ॥

माँझ झालरन झर निसान डफ, भँवर, भेर गुंजार ।
मानहुँ मदन मंडली रचि, पुर-बीथिन विपुल विहार ॥

द्रुम गन मध्य पलास-मंजरी, उड़त अगिन की नाईं ।
अपने-अपने घरैं मनोहर, होरी हरषि लगाईं ॥

केकी, काग, कपोत और खग, करत कुलाहल भारी ।
मानहुँ लै-लै नाम परस्पर, देत-दिवावत गारी ॥

कुंज-कुंज प्रति कोकिल कंजत, अति रस विमल बढ़ी ।
मनौ कुल-बधू बन लज्जित भई, गृह-गृह गावति अटन चढ़ी ॥

प्रफुलित लता जहाँ-तहाँ देखियत, तहाँ-तहाँ अलि जात ।
मानहुँ विटप बहुत अवलोकत, परसत गनिका गात ॥

बहु विधि सुमन अनेक रंग छवि, उत्तम भाँति धरे ।
मनु रतिनाथ हाथ से सबहुन, लौने रंग भरे ॥

और कहाँ लौं कहौं कृपानिधि ! वृंदा-विपिन विराज ।
"सूरदास" प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे काज ॥

कथन की दृष्टि से इस पद में ऋतुराज बसंत की शोभा का वर्णन किया गया है, जो प्रकृति-चित्रण का एक सुंदर उदाहरण है। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे वर्णन की पूर्ति की गयी है। इस पद में कवि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। मालोपमा की तरह मालोत्प्रेक्षा लिखने में भी सूरदास को कमाल हासिल है। समस्त पद में अनुप्रास का सौन्दर्य दृष्टव्य है। इस प्रकार यह पद उत्प्रेक्षा और अनुप्रास का सुंदर उदाहरण है।

आगे के कुछ पदों में उत्प्रेक्षाओं की और भी बहार देखिए—

(१) गागरि नागरि लिऐं पनघट तें चली घरहिं आवै ।
ग्रीवा डोलत, लोचन लोलत, हरि के चितहि चुरावै ॥
ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै ।
मनहुँ काम-सैना अँग सोभा, अँचल ध्वज फहरावै ॥
गति गयंद, कुच कुंभ किंकिनी, मनहुँ घंट फहरावै ।
मोतिन-हार जलाजल मानौं, खुभी दंत झलकावै ॥

मानहुँ चंद्र महावत मुख पर, अंकुस बेसरि लावै ।
रोमावली सुंडि तिरनीलौ, नाभि सरोसर आवै ॥
पग जेहरि जंजीरनि जकरयौ, यह उपमा कछु पावै ।
घट-जल झलकि,कपोलनि किनुका,मानों मदहिं चुवावै ॥
बैनी डोलत दुहुँ नितंब पर, मानहुँ पूंछ हलावै ।
गज सिरदार "सूर" कौ स्वामी, देखि-देखि सुख पावै ॥

(२) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई ।
खेलत कुँवर कनक-आँगन में, नैन निरखि छवि पाई ॥
कुलही लसत सिर स्याम सुभग अति,बहु विधि सुरंग नाई ।
मानहुँ नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई ॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन, मोहन-मुख बगराई ।
मानहुँ प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिर आई ॥
नील-सेत अरु पीत-लाल मनि, लटकत भाल रुलाई ।
सनि, गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, भनु भौम सहित समुदाई ॥

(३) रसना जुगल रसनिधि बोल ।
कनक बेलि तमाल अरुझी, सुभुज बंधन खोल ॥
भृंगु-जूथ सुधाकरनि, मनौं घन में आवत जात ।
सुरसरी पर तरनि-तनया, उमँगि तट न समात ॥
कोकनद पर तरनि तांडव, मीन खंजन संग ।
करति लाजै सिखिर मिलिकैं, युग्म संगम रंग ॥
जलद तें तारा गिरत मानौं, परत पयनिधि माँहिं ।
युग भुजंग प्रसन्न ह्व कर, कनक-घट लपटाहिं ॥

सूरदास के कुछ अपूर्व शब्द चित्र देखिए । इनमें उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे श्री कृष्ण और राधिका के स्वरूप का कैसा भव्य चित्र खींचा गया है—

नटवर वेष काछै स्याम ।
पद कमल नख इंदु सोभा, ध्यान पूरन काम ॥
जानु जंघ सुघटनि करभा, नाँहिं रंभा तूल ।
पीट पट काछिनी मानहुँ, जलज केसर झूल ॥
कनक छुद्रावली सोभित, नाभि कटि के भीर ।
मनहुँ हंस रसाल पंगति, रहे हैं ह्रद तीर ॥

झलक रोमावली सोभा, ग्रीव मोतिन हार।
मनहुँ गंगा बीच जमुना, चली मिलि त्रय धार॥
बाहु दंड विसाल तट दोउ, अंग चंदन रेनु।
तीर तरु बन माल की छबि, ब्रज-जुवति सुख देनु॥
चिबुक पर अधरनि हसन दुति, बिंब बीज लजाइ।
नासिका सुक, नयन खंजन, कहत कवि सरमाइ॥
स्रवन कुंडल, कोटि रवि-छवि, भृकुटि काम कोदंड।
"सूर" प्रभु हैं नीप के तट, सिर धरैं श्रीखंड॥

निम्न पद में सूरदास ने राधिका के स्वरूप वर्णन में उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

बरनौं श्री वृषभानु-कुमारि।
चित्त दै सुनहु स्याम सुंदर, छवि रति नाँहीं अनुहारि॥
प्रथमहिं सुभग स्याम बैनी क, सोभा कही विचारि।
मानहुँ फनिग रह्यौ पीवन कों, ससि-मुख सुधा निहारि॥
कहिऐ कहा सीस सेंदुर कौ, कितौ रही पचि हारि।
मानहुँ अरुन किरनि दिनकर की, परसी तिमिर विदारि॥
भृकुटी विकट निकट नैननि के, राजत अति वर नारि।
मनहुँ मदन जग जीति जेर करि, राख्यौ धनुष उतारि॥
ता बिच बनी आड़ केसरि की, दीन्हीं सखिन सँवारि।
मानहुँ बँधी इंदु-मंडल में, रूप-सुधा की पारि॥
चपल नैन नासा बिच सोभा, अधर सुरंग सुनारि।
मनहुँ मध्य खंजन सुक बैठ्यौ, लख्यौ बिंब बिचारि॥
तरिवन सुघर अधर नकबेसरि, चिबुक चारि रुचिकारि।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी पर, नहिं उपमा कहुँ चारि॥
सुरंग गुलाल भाल कुच मंडल, निरखत तन-मन वारि।
मानहुँ निसि निर्धूम अगिन के, तप बैठे त्रिपुरारि॥

सूरदास के पदों में रूपक अलंकार भी प्रचुरता से मिलता है। रूपक का एक भेद सांग अथवा सावयव रूपक होता है। रूप वर्णन में सूरदास ने सांग रूपक अलंकार की बड़ी सुंदर योजना की है। नीचे उदाहरणों में सांग रूपक के भव्य चित्र देखिए—

(१) बरनौं बाल-भेष मुरारि ।
थकित जित-तित अमर-मुनि गन, नंदलाल निहारि ॥
केस सिर बिन पवन के, चहुँ दिसा छिटके झारि ।
सीस पर धरैं जटा मानौं, रूप किय त्रिपुरारि ॥
तिलक ललित ललाट, केसरि-बिंदु सोभाकारि ।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन, रह्यौ निज रिपु जारि ॥
कंठ कठुला नील मनि, अंभोजमाल सँवारि ।
गरल ग्रीव, कपोल उर, यहि भाय भये मदनारि ॥
कुटिल हरिनख हिऐं हरि के, हरषि निरखत नारि ।
ईस जनु रजनीस राख्यौ, भाल हू तें उतारि ॥
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग यहि अनुहारि ।
मनहुँ अंग विभूति राजत, संभु सों मधु हारि ॥
त्रिदसपति-पति असन कों अति, जननि सों कर आरि ।
"सूरदास" विरचि जाकों, जपत निज मुख चारि ॥

(२) सखी री ! नंदनंदन देखु ।
धूरि धूसरि जटा जूटनि हरि किऐं हर भेषु ॥
नील पाट पिरोइ मनिगन फनिस धोखौ जाइ ।
खुनखुनाकर हँसत मोहन नचत डौंरु बजाइ ॥
जलज-माल गोपाल पहिरैं कहौं कहा बनाय ।
मुंडमाल मनों हर-गर ऐसि सोभा पाइ ॥
स्वांति सुत माला विराजत स्याम-तन यों भाइ ।
मनौं गंगा गौरि डर हर लिऐं कंठ लगाइ ॥
केहरी के नखहिं निरखत रही नारि विचारि ।
बाल ससि मनौं भाल तें ल उर धरयौ त्रिपुरारि ॥
देखि अंग अनंग डरप्यौ नंदसुत कों जानि ।
"सूर" हियरे बसौ यह स्याम सिव कौ ध्यान ॥

निम्नांकित पद में श्याम के शरीर की सागर से उपमा देते हुए कवि ने सांग रूपक का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

देखौ माई सुंदरता कौ सागर ।
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर ॥
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटि पटपीत तरंग ।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अंग ॥

मीन नैन, मकराकृत कंडल, भुजबल सुभग भुजंग ।
मुकुत-माल मिलि मानौं सुरसरि, द्वै सरिता लिऐं संग ॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषन, कटिकिंकिन नख चंद ।
मनु अडोल बारिधि में बिंबित, राका उडगन वृंद ॥
वदन चंद्रमंडल की सोभा, अवलोकत सुख देत ।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत ॥
देखि सुरूप सकल गोपीजन, रहीं निहारि-निहारि ।
तदपि "सूर" तर सकी न सोभा, रहीं प्रेम पचिहार ॥

विनय संबंधी पदों में भी उन्होंने दार्शनिकता के साथ ही साथ कई अति सुंदर रूपक उपस्थित किये हैं। भक्तवर सूरदास संसार-सागर का सांगोपांग चित्रण करते हुए अपने पतित-पावन प्रभु से प्रार्थना करते हैं—

अब कैं नाथ मोहि उधारि ।
मगन हौं भव-अंबुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि !
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग ।
लिए जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इंद्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार ।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार ॥
क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर ।
नाँहिं चितवन देत सुम-तिय, नाम नौका ओर ॥
थक्यौ बीच विहाल, विह्वल, सुनौ करुनामूल ।
स्याम ! भुज गहि काढ़ि लीजै, 'सूर' ब्रज कैं कूल ॥

नीचे के पदों में अपने को पतितराज बतलाते हुए उन्होंने तदनुरूप राजसी ठाट-बाट का कैसा शानदार कथन किया है—

हरि हौं ! सब पतितन कौ राजा ।
पर निंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा ॥
तृष्ना देस रु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी ।
मंत्री काम कुमति दीबै कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी ॥
गज-अहँकार चढ़यौ दिग-बिजयी, लोभ छत्र धरि सीस ।
फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसों हौं मैं ईस ॥
मोह-मया बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार ।
'सूर' पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किंवार ॥

नीचे के पद में उन्होंने नृत्यकार के सांग रूपक द्वारा अपने दोषों का विस्तृत विवरण देते हुए उनके दूर करने की भगवान् से प्रार्थना की है—

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥
महा मोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल ।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल ।
"सूरदास" की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ॥

सूरदास ने 'रूपकातिशयोक्ति अलंकार के सहारे राधा-कृष्ण के स्वरूप संबंधी कितने ही अद्भुत शब्द-चित्र खींचे हैं। निम्न लिखित प्रसिद्ध पद में राधा के शरीर को अनुपम बाग बतलाते हुए उन्होंने उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध कराया है—

अद्भुत एक अनूपम बाग ।
जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग ॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग ।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग ।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर एक मनिधर नाग ॥
अंग-अंग प्रति और-और छवि, उपमा ताकौं करत न त्याग ।
"सूरदास" प्रभु ! पियहु सुधा रस, मानहुँ अधरनि के बड़ भाग ॥

निम्न लिखित पद में रूपकातिशयोक्ति द्वारा श्री कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया गया है। इसमें नेत्र, नासिका, ओष्ठ, दंत आदि उपमेयों का बोध उनके उपमान मीन, कीर, विद्रुम, दाड़िम-कण द्वारा ही कराया गया है—

नंदनँदन-मुख देखौ माई । × ×
खंजन, मीन, कुरंग, भृंग वारिज पर अति रुचि पाई ।
स्रुति मंडल कुंडल विवि मकर सु, बिलसत मदन सहाई ॥
कंठ कपोत, कीर, विद्रुम पर, दारिम-कननि चुनाई ।
दुइ सारँग बाहन पर मुरली, आई देत दुहाई ॥

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त सूर-काव्य में अन्य अलंकारों के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिनको स्थानाभाव से यहाँ पर देना संभव नहीं है।

नख-शिख वर्णन—

सूरदास ने काल, अवस्था और परिस्थिति के अनुसार तो राधा कृष्ण की रूप-माधुरी के अनेक शब्द-चित्र खींचे ही हैं, किंतु उन्होंने उनके विविध अंगों के पृथक-पृथक् वर्णन भी किये हैं। सूरदासादि भक्त कवियों ने अपने मन को रमाने के लिए अपने उपास्य देव की अंग-छवि के वर्णन करने की पद्धति प्रचलित की थी, जो आगे चल कर नायिका-नायक के 'नख-शिख' के नाम से एक पृथक् विशाल साहित्य निर्माण का कारण हुई।

वैसे तो सूरदास ने राधा-कृष्ण के अनेक अंगों का आकर्षक वर्णन किया है, किंतु उन्होंने सब से अधिक नेत्रों का कथन किया है। विविध उपमाओं उत्प्रेक्षाओं और रूपकों के सहारे उन्होंने नेत्रों का ऐसा अपूर्व चित्रण किया है कि उनकी अद्भुत उद्भावना और कल्पना की भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है।

छंद विधान—

सूरदास ने अपने अधिकांश काव्य की रचना गायन अथवा कीर्तन के लिए की थी, अतः इसमें पिंगल शास्त्रोक्त छंदों की अपेक्षा संगीत शास्त्रानुकूल गेय पदों की अधिकता है। उन्होंने अपने काव्य के वर्णनात्मक भाग में कुछ छंदों का भी प्रयोग किया है। यह भाग काव्य-परिमाण और काव्योत्कर्ष दोनों दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

सूर-काव्य में जिन थोड़े छंदों का प्रयोग किया गया है, उनमें चौपाई, चौबोला, चौपई, दोहा, सोरठा, रोला और लावनी मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त और भी कुछ छंदों का प्रयोग किया गया है। इन छंदों के प्रयोग में उन्होंने यथेष्ट स्वच्छंदता से काम लिया है।

कला पक्ष की अन्य बातें—

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने काव्य कला संबंधी जिन विषयों का उल्लेख किया है, वे न्यूनाधिक रूप में प्रायः सभी सूर-काव्य में मिल जाते हैं। विभिन्न विषयों पर अनोखी उद्भावनाएँ, चमत्कार पूर्ण कल्पनाएँ और सूक्तियाँ सूर-काव्य में भरी पड़ी हैं। सूर के व्यंग्यात्मक कथन और उनकी वक्रोक्तियों ने उनके काव्य को अपूर्व सजीवता प्रधान की है, जिसके कारण पाठक का मन खिल उठता है। उनके कथन की शैली में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की अधिकता है, जिनके कारण उनके काव्य की सरलता और सरसता दर्शनीय है। सूर-काव्य की प्रवाहमयी एवं सजीव भाषा ने उसे और भी गौरव प्रदान किया है। सारांश यह है कि भाव पक्ष के कवि होते हुए भी सूरदास के काव्य में अलंकरण और कलात्मकता की भी कमी नहीं है।

प्रासंगिक–पदावली—

पुस्तक में आये हुए कुछ महत्त्वपूर्ण अपूर्ण पदों की संकेत सहित पूर्ति—

आजु हौं एक एक करि टरि हौं ।
मोहि कहा डरपावत हो प्रभु, अपने पूरे पर लरि हौं ॥
†हौं तो पतित सात पीढ़ी कौ, जो जिय ऐसी धरि हौं ।
हौं तो फिरि वैसोई ह्वै हौं, तुमहिं बिरद बिनु करि हौं ॥
अब तो तुम परतीत नसाई, क्यों मानें मेरौ हियरा ।
"सूरदास" साँची तब थपि हौं, जो हँसि दैहौ बीरा ॥ १ ॥

प्रभु मैं सब पतितन कौ राजा ।
करि नहिं सकैं बराबरि मेरी, पाप करन कौं ताजा ॥
चारि चुगली के चँमर ढुरत हैं, काम क्रोध दुल बाजा ।
निंदा के मेरैं छत्र फिरत हैं, तौऊ न उपजी लाजा ॥
‡चल्यौ सवेरौ, आयौ अवेरौ, लैकर अपने साजा ।
"सूरदास" प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा ॥ २ ॥

* मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै ।
बेग ही चेत सकल सिर ऊपर, काल सदा मँडरावै ॥
[illegible]

† मन रे तैं आयुष वृथा गँवाई ।
इंद्री वस्य परायन डोलत, उदर भरन के ताँई ॥

---

† पृष्ठ ७६ के आरंभ की अधूरी पंक्ति

‡ पृष्ठ ८० के अंत में अधूरा पद

* पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद

† पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद

सेव्यौ न लाल चरन गिरिधर के, बेर बेर चित लाई ।
निसि दिन फिरत विषय रस माँतौ, सुत दारा कों लड़ाई ॥
यह संसार रैन कौ सुपनौ, मात पिता पति भाई ।
बिनु ब्रजराज नहीं कोई तेरौ, वेद पुरानन गाई ॥
कहा भयौ संपति बहु बाढ़ी, पाई बहुत बड़ाई ।
दिवस चार में खेह उड़ैगी, यह सब सोंज पराई ॥
धन जोबन गृह देखि भुलानौ, कुबिद्धि कुबुध कमाई ।
रंचक स्वाद जीभ के कारन, तोरी स्याम सगाई ॥
जन्म पाय जग में कहा कीनों, कीनी कहा कमाई ।
जा सुख कों सुख मानि रहे हो, सो सुख है दुखदाई ॥
बहुत दिवस भटकत भये तोकों, अजहू सुधि नहीं आई ।
'कौड़ी मार, बिटौरा चूकत', छार परी चतुराई ॥
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्रीबल्लभ सुखदाई ।
"सूरदास" सरनागति हरि की, और न कछू उपाई ॥ ४ ॥

$ अजहू सावधान किन होहि ।
माया सुखहिं भुवंगन कौ विष, उतरयौ नाहिंन तोहि ॥
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ ।
बार बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुड़ी सुनायौ ॥
बहुत अध्यास देह अभिमानी, मो देखत इन खायौ ।
कोउ-कोउ उबरे साधु सँगति मिलि, स्याम धनंतर पायौ ॥
सलिल मोह नदी क्यों तरि सकि, बिना गीत ताके गाये ।
" सूर " मिटै अज्ञान मूरछा, ज्ञान मूरि के खाये ॥ ५ ॥

‡ श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई ।
श्री लक्ष्मन सुत द्विज के राजा, कीजै कहा बड़ाई ॥
बहुरि कृष्ण अवतार लियौ है, सदन तुम्हारे आई ।
कोटि कोटि कलि जीव उद्धारन, प्रगटे श्री जदुराई ॥
चिरजीवो अक्काजी कौ सुत, श्री विट्ठल सुखदाई ।
गिरिधरलाल कौ ढाढ़ी कहावै, " सूरदास " बलि जाई ॥ ६ ॥

$ पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद

‡ पृष्ठ ८३ पर अधूरी पंक्ति

† नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवर्धन तें आयौ ।
तुम्हारे पुत्र भयौ हौं सुनिकै, अति आतुर उठि धायौ ॥
बंदीजन और भिक्षुक सुनि सुनि, देस देस तें आये ।
एक पहले ही आसा लागी, बहुत दिनन के छाये ॥
तुम दीने कंचन मनि मुक्ता, नाना बसन अनूप ।
मोहि मिले मारग में, मानों जात कहूँ के भूप ॥
दीजै मोहि कृपा करि सोई, जो हौं आयौ माँगन ।
जसुमति सुत अपने पाँयन चलि, खेलन आवै आँगन ॥
कोटि देहुँ तौ परयौ रहूँगौ, बिनु देखे नहिं जाऊँ ।
नंदराय सुनि बिनती मेरी, तबहिं बिदा भले पाऊँ ॥
तुम तो परम उदार नंद जू, जो माँग्यौ सो दीनौं ।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन में, तुम सरखौ को कीनों ॥
मदनमोहन मैया कहि बोलै, यह सुनि कें घर जाऊं ।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, "सूरदास" मेरौ नाँऊं ॥ ७

* हैं हरि मोहू तें अति पापी ।
घातक कुटिल चवाई कपटी, मोह क्रोध संतापी ॥
लंपट धूत पूत दमरी कौं, विषम जाप नित जापी ।
काम विवस, कामिनि ही के रस, हठ करि मनसा थापी ॥
भक्ष अभक्ष अपय पीवन कौं, लोभ लालसा धापी ।
मन क्रम बचन दुसह सबहिन सों, कटुकै वचन अलापी ॥
जेते अधम उधारे प्रभु तुम, मैं तिन को गति मापी ।
सागर "सूर" विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी ॥ ८ ॥

‡ तुम देखो सखी री आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा ।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत, कीजियत हैं जिहि लोभा ॥
चारु चक्रमनि खचित मनोहर, चंचल चँमर पातका ।
स्वेत छत्र जनु ससी प्राचि दिसि, उदित भयौ निसि राका ॥
स्याम सरीर सुकेस पीत पट, सीस मुकुट और माला ।
मनों दामिनि घन रवि तारागन, उदित एक ही काला ॥

---

† पृष्ठ ८५ और ५७ * पृष्ठ ८८ ‡ पृष्ठ ६७ के अंत में

उपजत छबि कर अधर संख ध्वनि, सुनियत सब्द प्रसंसा ।
मानहु अरुन कमल मंडल में, कूजत है कल हंसा ॥
आनंदित पित भ्रात जननि सब, कृष्ण मिलन जिय भावै ।
"सूरदास" गोकुल के बासी, प्राननाथ वर पावै ॥ ६ ॥

† रे मन चिंता ना कर पेट की ।
हलन चलन में कछु नाहिंन ह्वै, कलम लिखी जो ठेट की ॥
जीव जंतु जेते जल थल के, तिन विधि कहा समेट की ।
समै पाय सबहिन कों पहुँचे, कहा बाप कहा बेट की ॥
जाकों जितनों लिख्यौ विधाता, ताकों तितनौ पहुँचै तेटकीं ।
"सूरदास" ताहि क्यों नहिं सुमरै, जो तू है ऐसौ चेटकी ॥१०॥

‡ गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।
माला तिलक तिलक मनोहर बानों, सिर पर छत्र धरें ॥
भवसागर तें बूड़त राखे, दीपक हाथ धरें ।
"सूरस्याम" गुरु ऐसे समरथ, जिहिं तैं लै उधरें ॥११॥

* कृष्ण भक्ति करि कृष्णहिं पावै ।
कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है, हरि में लय ह्वै जावै ॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही, हरि लीला जग देखै ।
तौ तिहिं दुख सुख निकट न आवें, ब्रह्म रूप करि लेखै ॥
अज्ञानी मैं-मेरौ करिकै, ममता बस दुख पावै ।
फिरि फिरि जोनि भ्रमै चौरासी, मद मत्सर करि आवै ।
हरि हैं तिहूँलोक के नायक, सकल भली सो करि हैं ।
"सूरदास" यह ज्ञान होय जब, तब सुख सों नर तरि हैं ॥१२॥

‡ हरिजन संग छिनक जो होई ।
कोटि स्वर्ग सुख, कोटि मुक्ति सुख, वा सम लहै न कोई ॥
महद भाग्य पुन्य संचित फल, कृष्ण कृपा ह्वै जाके ।
"सूरदास" हरिजन पद महिमा, कहत भागवत ताके ॥१३॥

❀ इति ❀

---

† पृष्ठ १२० ‡ पृष्ठ १७१ * पृष्ठ १८६
‡ पृष्ठ २५६

अनुक्रमणिका

★

१. पदानुक्रमणिका

[पुस्तक में आये हुए पदों की अकारादि क्रम से सूची]

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
१.	अति मलीन वृषभानु-कुमारी	२६१
२.	अद्‌भुत एक अनूपम बाग	३११
३.	अपने-अपने टोल कहत ब्रजवासियाँ	२३३
४.	अपुनपौ आपुन जरि मरि है	२६५
५.	अपुनपौ आपुनहिं बिसरयौ	२००
६.	अपुनपौ आपुन ही में पायौ	२०१
७.	अब कैं नाथ ! मोहि उधारि	३१०
८.	अब तौ साँचौ कलियुग आयौ	२७६
९.	अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल	३११
१०.	अब ही जसोदा माखन लाई	२२३
११.	अविगत गति कछु कहत न आवै	१८६
१२.	अहो मेरी प्रान पियारी	२३७
१३.	आँखिन में बसै, जियरे में बसै, हियरे में बसै, निस-दिन प्यारौ ...	२१३
१४.	आँगन खेलै नंद के नंदा	३२०
१५.	आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नँदरानी	२८८
१६.	आज गृह नंद महरि कैं बधाई	२३०
१७.	आज दसरथ कै आनंद भीर	२४४
१८.	आज दिपत दिव्य दीप-मालिका	२४०
१९.	आज बने गिरिधारी दूलहै, चंदन कौ तन लेप किऐं ...	२५१
२०.	आज वृषभान कैं आनंद	२३०
२१.	आज हौं गाय चरावन जैहौं	२३६
२२.	आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ	२९१
२३.	आजु बने नँदनंदन री नव, चंदन अंग अरगजा लाये ...	२८८
२४.	इहिं बिरियाँ बन तें ब्रज आवते	२८६

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
२५.	उठो इन नैनन अंजन देहु	२७३
२६.	ऊधौ कौ उपदेस सुनो किनु कान दै ...	१५६
२७.	ऊधौ ! स्याम इहाँ लै आवहु	२८५
२८.	एक हार मोहि कहा दिखावति ...	२५२
२९.	और सकल अंगन तें ऊधौ ! अँखियाँ बहुत दुखारी ...	२८६
३०.	कथा सुनि तजी मसूर की दाल	२५७
३१.	करति शृंगार मैया मन भावत	२२३
३२.	करनी करुनासिंधु की कछु कहत न आवै	१८६
३३.	कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत	२९२
३४.	करुनानिधि ! तेरी गति लखि न परै	१८८
३५.	कहति नंद-घर मोहि बतावहु	२०७
३६.	कहा चाकरी अटकी जन की २५८,	२७५
३७.	कहावति ऐसे त्यागी दानि	७४
३८.	कहा भई धन बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ ...	२९८
३९.	कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई	३०७
४०.	कहूँ देख्यौ माई, श्री गोकुल कौ बासी ...	२७२
४१.	कहै न कोई परदेसी की बात	१५२
४२.	किन तेरौ गोविंद नाम धरयौ	७४
४३.	कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै	१८६
४४.	कैसै-कैसै आये हो पिय, ऐसी दुपहरी तपन में	२२८
४५.	कौन सुकृत इन ब्रजवासिन कौ बदत विरंच-सिव सेष ...	१८७
४६.	खेलत बसंत वर विट्ठलेश राय	९९
४७.	खंजन नैन रूप-रस माते ... १०३,	३२५
४८.	गढ़ तें ग्वालिनि ऊतरी हो, सीस दही कौ माट	२३१
४९.	गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पार	२४०
५०.	गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ	२९०
५१.	ग्वालिन आपु तन देखि, मेरे लाल तन देखिए	२७४
५२.	ग्वालिन तैं मेरी गेंद चुराई	२४३
५३.	गागरि नागरि लिऐं पनघट तें चली घरहिं आवै... ...	३०६
५४.	गिरिधरन सैन कीजै आय	२२६

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
५५.	गोकुलनाथ बिराजत डोल	२३६
५६.	गोपी-पद-रज-महिमा विधि भृगु सों कही	१६२
५७.	घोष-नागरी-मंडल मध्य नाँचत गिरिधारी लाल	२३३
५८.	चकई री ! चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहिं प्रेम-वियोग ...	२७३
५६.	चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार, नंद के कुमार मेरौ ...	२२४
६०.	चटकीलौ पट, लपटानौ कट, बंसीवट यमुना तट नागर नट ...	३०४
६१.	चरन कमल बदौं हरिराई	६४
६२.	चंद्रावली स्याम-मग जोवति	२६६
६३.	छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख ज्योती ...	३२१
६४.	जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं	२६४
६५.	जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं	२८७
६६.	जब संतोष हाकिम आवै, तब काया नगर सुख पावै ..	२५८
६७.	जरी कों जरायवे कों,तती तन तायवे कों,कटी लौन ल्यायवे कों	२७८
६८.	जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी ...	३३८
६६.	जसुमति लै पलिका पौढ़ावति	२८७
७०.	जसोदा मैया काहैं न मंगल गावै	२२५
७१.	जाके हृदै हरि–धर्म नाँहीं	२५५
७२.	जागिऐ गोपाललाल, आनँद-निधि नंद-बाल जसुमति कहै ...	३०४
७३.	जागिऐ गोपाललाल, प्रगट भई हंस-माल, मिट्यौ अंध-काल...	३०४
७४.	जानति हौं जैसे गुननि भरे हो	३००
७५.	जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि	२७०
७६.	जैबत कान्ह नंद जू की कनियाँ	२२४
७७.	जो दस-बीस पचास मिलै, सत होय हजार, तौ लाख मँगैगी	२५८
७८.	जो सुख होत गोपालहिं गाये	२४८
७६.	जौलौं सत्य स्वरूप न सूझत ८०,	२००
८०.	झूलै माई गिरिधर सुरंग हिंडोरे	२३७
८१.	तब राधा इक भाव बतावति	२६८
८२.	तौलौं हौं बैकुंठ न जैहौं	२४४
८३.	थकित भए मोहन-मुख-नैन	२६७
८४.	थोरे जीवन भयौ तन भारौ	२६४

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
८५.	द्वारैं ठाढ़े हैं द्विज बामन	२४४
८६.	देख री ! एक अद्भुत रूप	३०३
८७.	देखि नृप तमकि, हरि चमक तहाँई गए, दमकि लीन्हों गिरह	२६०
८८.	देखी मैं लोचन चुअत अचेत	२६१
८९.	देखे नंद चले घर आवत	३३८
९०.	देखे री ! हरि नंगम नंगा	२६८
९१.	देखो अद्भुत अविगत की गति, कैसौ रूप धरयौ है २४४,	२६२
९२.	देखो माई ! रथ बैठे गिरिधारी	२२६
९३.	देखो माई ! रथ बैठे हरि आजु	२२६
९४.	देखो माई ! सुंदरता कौ सागर	३०६
९५.	दै मैया री ! दोहिनी दुहि लाऊँ गैया	२२४
९६.	द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ	६८
९७.	दोउ भैया माँगत मैया पै, दै री मैया ! दधि-माखन रोटी...	२२३
९८.	दौरि-दौरि आवत, मोहि मनावत, दाम खरच कछु मोल लईरी	१५४
९९.	धरयौ सिर फेंटा आज पचरंगी	२५१
१००.	नटवर वेष काछे स्याम	३०७
१०१.	नर ! तैं जनम पाइ कहा कीनौ	२६४
१०२.	नवल किसोर नवल नागरिया ...	२६७
१०३.	नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे... ...	२६६
१०४.	नवल निकुंज, नवल नवला मिलि, नवल निकेतनि रुचिर .	२८४
१०५.	नाथ ! मोहि अब की बेर उबारौ	७६
१०६.	नाम-महिमा ऐसी जानौं	२६६
१०७.	नाहिंन रह्यौ मन में ठौर	२७३
१०८.	निगम कल्पतरु सीतल छाया	२७६
१०९.	निर्गुन कौन देस कौ बासी	२६०
११०.	निपट छोटे कान्ह, सुनि जननी कहूँ बात	२७४
१११.	निसि-दिन बरसत नैन हमारे	२८४
११२.	नंद जू ! दुःख गयौ, सुख आयौ, सबन कौं दियौ पुत्र-फल...	५८
११३.	नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ सुनि मथुरा तें आयौ ...	१४६
११४.	नंदनँदन मुख देखौ माई	३११

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
११५.	नंदनँदन हंसे नागरी हर्ष चंदावलि कंठ लाई ...	१५०, २१३
११६.	पलक ओट नहिं होत कन्हाई	२०७, २६७
११७.	पवित्रा पहरन कौ दिन आयौ	२३०
११८.	प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ	२६३
११६.	पाये हौ जू जान, लाल ! तुम पाये हौ जू जान	२७८
१२०.	प्यारी अंग शृंगार कियौ	२६६
१२१.	प्रेम में निसि-दिन बसत मुरारी	२१३
१२२.	फूलन के महल, फूलन की सिज्या, फूले कुंज बिहारी० ...	२३६
१२३.	बड़ौ निठुर विधना यह देख्यौ	२२५
१२४.	बनी मोतिन की माल मनोहर	२६८
१२५.	बनी सहज यह लूटि हरि केलि गोपिन के सपुने यह कृपा० ...	२०६
१२६.	बरनौं बाल-भेष मुरारि	३०६
१२७.	बरनौं श्री वृषभानु-कुमारि	३०८
१२८.	वलि-वलि चरित गोकुलराय	१८६
१२६.	वलि-वलि मदन गोपाल	२५१
१३०.	बहुत फिरी तुम काज कन्हाई	२२४
१३१.	ब्रज घर-घर सब होत बधाए	३०४
१३२.	ब्रज-बनिता रवि कों कर जोरैं	२३६
१३३.	ब्रजवासिन सों कह्यौ, सबन तें ब्रज-हित मेरे	३३०
१३४.	ब्रज-मंगल की मंगल आरती	२२३
१३५.	ब्रज ही में बसै आपुनहिं बिसरायौ	२१२
१३६.	बात बूझतहिं यों बहरावति	३२६
१३७.	बिकानी हरि-मुख की मुसकानि	५६
१३८.	बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि ! नैनन की परतीति गई ...	३००
१३६.	बिन गोपाल बैरिन भई कुंजैं	२८४
१४०.	बिनती जन कासों करें गुसाईं	२५४
१४१.	विप्र जी पावन पुन्य हमारे	१४६
१४२.	बिरह बिनु नाँहिन प्रीति की खोज	२६७
१४३.	भजि सखि ! भाव-भाविक देव ६६,	२०६
१४४.	भजौ गोपाल भूलि जिनि जावो	२२०

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
१४५.	भरोसौ दृढ़ चरननि केरौ	२१६
१४६.	भहरात झहरात दावानल आयौ	२६३
१४७.	भाव बिनु माल नफा नहिं पावै	२१३
१४८.	भोजन करत गोवर्धन धारी	६७
१४९.	भोजन भयौ भाँवतौ मोहन १००,	२४६
१५०.	मधुकर ! ये नैना पै हारे	२८५
१५१.	मधुबन ! तुम कत रहत हरे	२८६
१५२.	माई री ! कृष्ण-नाम जब तें स्रवन सुन्यौरी, तब तें भूलीरी ...	१५४
१५३.	माखन-रोटी लेउ कान्ह बारे	२२६
१५४.	माधौ जू ! मन माया बस कीन्हौ	२६४
१५५.	मिलिबौ नैनन ही कौ नीकौ	२६४
१५६.	मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ ११,	२७२
१५७.	मुनि पुनि रसन कौ रस लेख ३,	१५२
१५८.	मुरली सुनत अचल चले	२६२
१५९.	मेघ दल प्रबल ब्रज लोग सब देखे	२६३
१६०.	मेरें आए भोर प्यारे, वाकें सब निसि जागे	२७८
१६१.	मेरे आगें महरि यशोदा, मैया री ! तोहिं गारी दीन्हीं ...	२८६
१६२.	मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु बैसेहि धरयौ रहै	२८६
१६३.	मेरे जीय सु ऐसी आय बनी	५६
१६४.	मेरे मन इतनी सूल रही	२८५
१६५.	मेष सी अचल कहा बैठी वृषभानु लली, मिथुन के काजें० ...	१५५
१६६.	मैया ! मैं नहीं माखन खायौ	२८६
१६७.	मैं योगी यस गाया रे बाला ! मैं योगी यस गाया ...	२८२
१६८.	मोर-मुकुट कटि काछनी, जननी पहरावै	२५०
१६९.	मोहन निरखि सिहाई अँखियाँ	२५२
१७०.	यद्यपि मन समुझावत लोग	२८८
१७१.	यमुना-जल गिरिधर करत बिहार	२४३
१७२.	यसोमति जब ही कह्यौ न्हावन, रोय गये हरि लोटत री ...	२२३
१७३.	यह ऋतु रूसिबे की नाँहीं	२६६
१७४.	यह कहि मुख, मन सोचई, भई सौत हमारी	२६८

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
१७५.	यह सुनि चकृत भई ब्रज-बाला	२६६
१७६.	यामैं कहा घटैगौ तेरौ	२१८
१७७.	रसना जुगल रसनिधि बोल	३०७
१७८.	रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी	२८७
१७९.	राखी बँधावत मगन भए	२४०
१८०.	राखौं तैसे रहौं जैसे, तुम राखौ तैसे रहौं	२५६
१८१.	राधा रचि-रचि सेज सँभारति	२६६
१८२.	राधिका-गेह हरि देह बासी	२१२
१८३.	राधे ! तेरौ बदन बिराजत नीकौ	३०५
१८४.	रिझवति पिय ही बारंबार	२३७
१८५.	रीझे परसपर नर-नारि	२३७
१८६.	रुँधे रति-संग्राम खेत नीके	२६१
१८७.	रूप-रस पुंज वरनौं कहा चातुरी	२०८
१८८.	ललित लाज कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ मेरी माई... ...	२५०
१८९.	ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर २४८,	३१५
१९०.	लाल कौ फेंटा ऐंठा अमेंटा बन्यौ, भ्रकुटी भाल पर ...	२५१
१९१.	लाल ! तेरी बंसी नैंक बजाऊँ	२१४
१९२.	लालै नाँहिं जगाय सकत, सुन जो बात सजनी	२२२
१९३.	वह देखो नंद कौ नंदन आवत	२२५
१९४.	वा पट पीत की फहरानि	२२६
१९५.	श्री कृष्ण-नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि में	२६५
१९६.	श्री बल्लभ अब की बेर उबारो	२१६
१९७.	श्री बल्लभ भले-बुरे तौऊ तेरे २१६,	२५४
१९८.	श्री भागवत सकल गुन-खानि	१२३
१९९.	श्री यमुना जी ! अपुनौ दरस मोहि दीजै	२६६
२००.	श्री यमुने ! पतित पावन करेउ	२६६
२०१.	सखियन संग राधिका बीनत, सुमनन बन माँह... ...	२३२
२०२.	सखीरी ! नंदनंदन देखु	३०६
२०३.	सखी री ! सुन परदेसी की बात	१५१
२०४.	सखी री ! सुंदरता कौ रंग	३२४
२०५.	सब दिन तुम ब्रज में रहो हरि, होरी है, कबहु न मथुरा ...	२४१

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ				पृष्ठ सं०
२०६.	स्याम अचानक आय गये री	...	...	...	२६८
२०७.	स्याम भए राधा बस ऐसे	...	...	...	३०५
२०८.	स्यामा जू ! होरी खेलन आई	...	...	...	२३६
२०९.	सिखवति चलन जसोदा मैया	...	...	...	२८७
२१०.	सिव सों विनय करति कुमारि	...	...	...	२२८
२११.	सुधा-सरोवर छिटकि अनूपम	...	...	...	३०५
२१२.	सुरभी कान्ह जगाय खरिक बल-मोहन बैठे राजत हटरी			...	२५१
२१३.	सुंदर बदन देख्यौ आज	...	...	...	२५०
२१४.	सुंदर स्याम सलौनौ ढोटा, डारि गयौ मोपै मदन ठगोरी			...	२५२
२१५.	सूर आयौ सीस पर, छाया आई पाँयन तर, पंथी सब झुक रहे				१५५
२१६.	सो कहा जू मैं न कियौ, जो पै तुम सोई-सोई चित्त धरि हौं				२६३
२१७.	सोवत नींद आय गई स्यामहिं	...	...	...	२२६
२१८.	सोभित कर नवनीत लिएं	...	...	...	२६८
२१९.	सँदेसौ देवकी सों कहियो	. .	...	...	२८८
२२०.	हमारे माई ! मोरउ बैर परे	...	...	...	२८६
२२१.	हमारैं सब रस गोविंद गीता	...	...	...	२७५
२२२.	हरि के जन की अति ठकुराई	...	...	...	२६४
२२३.	हरि जू की बाल-छबि कहौं बरनि	..	...	...	३१६
२२४.	हरिजू ! तुम तें कहा न होई	...	...	...	६४
२२५.	हरि परदेस बहुत दिन लाये	...	...	...	३००
२२६.	हरि बिन व्यथा कौन सों कहिये	...	...	...	२१४
२२७.	हरि बिन संकट में को का कौ	...	...	...	७५
२२८.	हरि-भक्तन कों गर्व न करनौ	...	...	...	२७७
२२९.	हरि ! मैं तुम सों कहा दुराऊँ	...	...	२५७	२५६
२३०.	हरि-हरि-हरि सुमिरन करो	...	...	...	२१७
२३१.	हरि ! हौं सब पतितनि कौ नायक	...	...	...	७६
२३२.	हरि ! हौं सब पतितनि कौ राजा	...	...	...	३१०
२३३.	हा-हा हो हरि नृत्य करो	...	...	...	२३३
२३४.	हंस-सुता, जल-स्वरूप, पुष्टि-रूप, अति अनूप, करत स्नान			...	२७६
२३५.	हौं पतित-सिरोमनि सरन परयौ	...	...	...	२६६

२. नामानुक्रमणिका

अ

अकबर—६, ५१, ५५, ७१, ८६, ९१, ९२, २८१
अलीखान—२०
आशकरण—२७

क

कबीर—२८०
कृष्णदास—६१, ८६, ८९, ९०, ९१, ९६, १७२
कृष्ण भट्ट—१९
काका बल्लभ—२३
कील्हदेव—२७
कुंभनदास—८६, ८८, ८९, ९०, ९२, ९९, १०२, १७१, १७२, २१०

ख

खुसरो—२८०

ग

गिरिधर जी—२६, ९२
गोकुलनाथ जी—१७, १९, २०, २२, २३, ३४, ७१, ९३, १५९
गोकुल भट्ट—१९
गोपीनाथ जी—८४, ८९, १३२
गोवर्धनदास—१९
गोविंदस्वामी—८९, १०२, १७२,

घ

घनानंद—२८०

च

चतुर्भुजदास—८९ १०२, १७२
चैतन्य महाप्रभु—२१०
चंडीदास—३१३, ३१४

छ

छीतस्वामी—८९, १७२

ज

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—३३, ४०, ३२३
जमुनादास—३०
जयदेव—३१३, ३१४

त

तानसेन—५५, ९१
तुलसीदास—९३, १५९, ३१५, ३१३

द

द्वारकेश—३२, ९०
दुर्गावती—९८
देव—२८०

ध

ध्रुवदास—२८

न

नागरीदास—२८,
नाभाजी—१९, २३, २६, २८, ५४, ७०
नामदेव—२८०
नंददास—८९, ९०, ९१, ९३ १२५, १५३, २८१, ३१६

प

परमानंददास—६६, ८६, ८८, ८६, ६०, ६६, १७२, २२८, २८१

पद्मनाभदास—२१०

पद्मावती जी—६८

प्राणनाथ—२६, ६०, ७०

प्रियादास—२३, २८

पूरनमल खत्री—८४

ब

बल्लभाचार्य जी—२, ५, १६, २३, ५१, ६५, ७१ ८१, ८३, १८५, २०८, २०६, २१०

बालकृष्ण—१६८

बिहारी—२८०

बीरबल—६८

म

मट्टू जी—३२

मतिराम—२८०

मानसिंह (कृष्णगढ़ नरेश)—३०

मियासिंह—२८, ७०, ७७

य

यदुनाथ जी—२५, ६०, ८४

र

रघुनाथ जी—६४

रघुराज सिंह—२८, ७०

रसखान—२८०, २८२

राधाकृष्ण दास—३३, ४०

रामदास—१०२

रामदास बाबा—५५

रुक्मिणी जी—६८

ल

लालचदास ललबाई—२८०

व

व्यासदेव—१८३

वाल्मीकि—३१३

विट्ठलनाथ जी—४, ५, ६, १६, २६ ८३, ८५, ८६, ८६ ६८, १०२, १०३, १०६, १४०, १७२, १७३, २०६, २२६,

विट्ठलनाथ भट्ट—३०

विट्ठलेशराय—१६

विट्ठलविपुल—१४

विद्यापति—३१३, ३१४

विष्णुदास—६०

श

श्यामसुंदर दास—३७

श्रीनाथ भट्ट—२५, ६०, ७०

श्रीमट्टू—२१०, २११

ह

हरिदास स्वामी—१४, ६२

हरिराय जी—६, २०, २२, २३, ५० ५४, ६०, ७१, ७२, ७७, १०३, २१२

हरिश्चंद्र (भारतेन्दु)—४०, १४३

३. ग्रंथानुक्रमणिका

अ

अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय—४५
अष्टछाप परिचय—४५
अष्टसखामृत—२६, ४८, ७०
अष्टसखान की वार्ता—६, ६१, ६६, १०३

आ

आईन-ए-अकबरी—२८, ५५, ८६
आचार्यजी महाप्रभु की प्रा० वार्ता—५३

ए

एकादशी माहात्म्य—१०६

क

कृष्ण गीतावली—६५
कृष्णाश्रय—२७६

ख

खट ऋतु की वार्ता १०२

ग

गायत्री भाष्य—२०६
गीता—२७५
गीतावली—६५, ३१८, ३१६, ३२३

च

चौरासी वैष्णवन की वार्ता—५, ६, १६, २०, ३४, ६१, ७१, ७२, ७७, ८१, ८६, ६१, ६४

ज

जानकी मंगल—३१६

द

दशम स्कंध की अनुक्रमणिका—८३, ८८, १२१
दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता—२०, १६६

ध

धौल (जमुनादास)—३०

न

नल-दमयंती—१०६
नागर समुच्चय—२८
निकुंज विलास—११०
निज वार्ता—१६, २२, ५२, ५३

प

परिवृढाष्टक—२०८
प्राचीन वार्ता रहस्य—६
पुरुषोत्तम सहस्रनाम—८३ ८८, १२१ १२२, १२०
पंचश्लोकी—२७७

ब

बल्लभ दिग्विजय—१, २०, २५, ८४, ८५
ब्रह्मवैवर्तपुराण—३३१

भ

भक्तनामावली—२८
भक्तमाल—१, १६, २३, २६, ५४, ६७, ६३
भक्तविनोद—२८, ३३, ४६, ७०, ७७
भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास—४१
भ्रमरगीतसार—३४
भागवत—१६, ६०, १२१, १२२, १५८, १६३, २७५, ३३१
भाषा भागवत—१२५
भावप्रकाश—२३, ५४, ७२, ७७
भावसंग्रह—३२, ५२, ५३

म

मुन्तखिबउलतवारीख--२८, ५५
मुंशियात अबुलफजल--२८
मूल गोसाईं चरित--२८, ६३
मिश्रबंधु विनोद--३६, ३७
मथुराष्टक--२०८
यमुनाष्टक--२७६

र

रामचरितमानस--६३, ३१६
रामजन्म--१०६
रामरसिकावली--२८, ३३, ७०
रामलला नहछू--३१६
रामाज्ञा प्रश्न--३१६
रास-पंचाध्यायी--१११

व

वार्तामणिमाला--१, २५, ७०
विवेक धैर्याश्रय--२७७
वैराग्य संदीपनी--३१६
वैष्णवाह्निक पद--३२

श

शिवसिंह सरोज--३६
शिक्षापत्र--२३
श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता--८४
शृंगार रस मंडन--११०

स

साहित्य लहरी--१, २, ३४, ५४, ५६, ७७, १४३, १५३ ३०२
सिद्धांत पंचाध्यायी--१११
सुबोधिनी--१६, ६६, ८३, २०१, २०८, २०६, २११, २७४, २७५, २७७
सूर : एक अध्ययन--४१
सूर : जीवनी और ग्रंथ--४३
सूरदास (जनार्दन मिश्र)--४१
सूरदास (ब्रजेश्वर वर्म्मा)--४४, १०८ १४३
सूरदास : एक अध्ययन--४१
सूरदास के पद--१६६
सूर पच्चीसी--६१, १५३, १६६
सूर पदावली--३४
सूरसागर--१, ७, ३३, १५३, १६०, ३०२, ३१६, ३२३
सूर-साठी--१५३, १६६
सूर-सारावली--१, २, ८३, १०७, १५३, २४८
सूर-साहित्य--४१
सूर-साहित्य की भूमिका--४२
सूर साहित्य-सुधा--३४
सूर-सुषमा--३४
सूर-सौरभ--४३
सूर-संग्रह--३४
सूर-संदर्भ--३४
सेवा फल--११०, १४०, १६६

ह

हरिवंश टीका--१५५
हिंदी नवरत्न--४१
हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास--३६
हिंदी भाषा और साहित्य--३६, ३७
हिंदी साहित्य का इतिहास--३६, ३७
हिंदी साहित्य का इतिहास (रसाल)--३६
हिंदी साहित्य का आलो० इतिहास--३६

उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों एवं काव्य-प्रेमियों के लिए—

'ब्रज-साहित्य-माला' की नवीन पुस्तकें

अध्ययन, अनुसंधान एवं अध्यवसाय पूर्वक लिखित
अधिकारी विद्वानों, धुरंधर साहित्यकारों एवं प्रतिष्ठित पत्रों द्वारा प्रशंसित

पृष्ठ ४०० **अष्टछाप-परिचय** मूल्य ५)

[संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

लेखक—श्री प्रभुदयाल मीतल

भूमिका लेखक—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अधीक्षक-राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

शुद्धाद्वैत एकेडेमी द्वारा सन्मानित एवं पुरस्कृत
हिंदी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा एवं विश्वविद्यालयों की एम० ए०
परीक्षाओं के लिए स्वीकृत पाठ्यग्रंथ।

पृष्ठ ३८० **सूर-निर्णय** मूल्य ५)

लेखक—श्री द्वारकादास परीख और श्री प्रभुदयाल मीतल

परिचय लेखक—डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष-हिंदी विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग।

हिंदी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा एवं विश्वविद्यालयों की एम० ए०
परीक्षाओं के लिए स्वीकृत पाठ्य ग्रंथ।

पृष्ठ ४५६ **ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद** मूल्य ६)

[संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

लेखक—श्री प्रभुदयाल मीतल

भूमिका लेखक—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष-इतिहास विभाग, प्रयाग वि० वि०

विश्वविद्यालयों की एम० ए० परीक्षा के लिए स्वीकृत
यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत!

पृष्ठ २१६ **ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौन्दर्य** मूल्य ४)

संकलयिता—श्री प्रभुदयाल मीतल

प्रस्तावना लेखक—महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन, अध्यक्ष-हिं० सा० सम्मेलन

ब्रजभाषा काव्य के सुप्रसिद्ध महाकवियों की षट् ऋतु विषयक सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संकलन और ऋतुओं का साहित्यिक परिचय। षट् ऋतुओंका ऐसा सुसंपादित एवं बढ़िया सकलन हिंदी साहित्य में प्रथम बार प्रकाशित हुआ है।

मिलने का पता— **अग्रवाल प्रेस, मथुरा.**

अष्टछाप-परिचय

[संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

इस अपूर्व ग्रंथ में हिंदी के महान् कवि महात्मा सूरदास और नंददास आदि अष्टछाप के आठों भक्त कवियों का आलोचनात्मक सचित्र जीवन-वृत्तांत और उनकी दुर्लभ रचनाओं का प्रामाणिक संकलन है। साथ में वल्लभ संप्रदाय का खोजपूर्ण विवरण भी है। कई वर्षों के अनुसंधान एवं गंभीर अध्ययन के उपरांत इस विद्वतापूर्ण ग्रंथ की रचना हुई है।

एक प्रतिष्ठित पत्र की सम्मति—

"इसमें अष्टछाप-कवियों की आलोचना सहित सचित्र जीवनियाँ हैं और काव्य-संग्रह भी। वल्लभ संप्रदाय के आचार्यों की सचित्र चरित-चर्चा प्रथम परिच्छेद में है। इसी में शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टिमार्ग का विस्तृत विवेचन भी है। दूसरे परिच्छेद में अष्टछाप के स्थापना-काल, महत्व और क्रम तथा वार्ता-साहित्य पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद में अष्टछाप के आठों कवियों की आलोचनात्मक जीवनियाँ और चुनी हुई कविताएँ हैं। चतुर्थ में अष्टछाप के गीति-काव्य और संगीत-पद्धति का समीक्षात्मक प्रदर्शन किया गया है। अंत के पंचम परिच्छेद में अष्टछाप का सिंहावलोकन है। सब के अंत में पुस्तक-गत नामों, ग्रंथों, स्थानों और पदों की अक्षरानुक्रमणिका है।

इस प्रकार यह पुस्तक घोर परिश्रम एवं अनवरत अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अतीव सुंदर बन पड़ी है।....पुस्तक के प्रत्येक प्रसंग से लेखक की गहरी छानबीन का पता चलता है। इस पुस्तक से साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। ...हम लेखक के इस सत्प्रयास एवं अथक अध्यवसाय का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।"

—"हिमालय" पटना (जनवरी १९४८)

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त धुरंधर विद्वानों की सम्मतियाँ—

"यह पुरानी हिंदी के साहित्य तथा मध्यकालीन भारत की धार्मिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली विशेष महत्वपूर्ण पुस्तक है। पुराने हिंदी साहित्य की आलोचना में आपकी यह देन प्रथम श्रेणी की है। सद्भाव, पांडित्य और श्रम से की हुई इस गवेषणा का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके लिए मैं न केवल आपको, परंतु हिंदी-प्रेमी समाज को और हिंदी संसार को बधाई देता हूँ।"

कलकत्ता, —सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

ता० २७-१-४८ (अध्यक्ष—तुलनात्मक भाषा विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

"श्री मीतल जी की अष्टछाप-परिचय पुस्तक ब्रजभाषा के आदिम आठ महाकवियों पर गंभीर कृति है। इसमें कवियों और उनके संरक्षकों की जीवनियों पर अच्छा प्रकाश डालते हुए, उनकी कविताओं का भी सुंदर संग्रह किया गया है। अपने ढंग का यह एक बहुत अच्छा और गंभीर प्रयत्न है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिए मीतल जी को बधाई!

—राहुल सांकृत्यायन

ता० ३१-१-४८ (भू० पू० अध्यक्ष—हिंदी साहित्य संमेलन)

बड़े आकार के ४०० पृष्ठ, सुंदर छपाई, १२ चित्र, दुरंगी कवर, पक्की जिल्द, मू० ५

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

(यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत । परिवर्धित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण)

भूमिका लेखक—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष-इतिहास विभाग, प्रयाग वि० वि०

यह अपने विषय की हिंदी में एक मात्र रचना है। इससे लेखक का गंभीर साहित्यिक ज्ञान, उसकी अध्यवसायपूर्ण शोध और संकलन की सुरुचि प्रकट है।

प्रतिष्ठित पत्रों एवं विख्यात विद्वानों की सम्मतियाँ—

"लेखक ने इसके निर्माण में काफ़ी परिश्रम और ब्रजभाषा साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया है।....समस्त प्राप्त सामग्री और विचारों का समन्वय कर लेखक ने नायिका-भेद के विभिन्न विषयों के संबंध में एक निश्चित और निर्भ्रांत मत स्थिर करने की चेष्टा की है। उदाहरणों के संग्रह में भी उसने कठिन परिश्रम और सुंदर साहित्यिक रुचि का परिचय दिया है।"

—"सरस्वती" प्रयाग.

"विद्वान् लेखक ने रीति-कविता का संक्षिप्त इतिहास और नायिकाभेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अनेकों आचार्यों ने जो क्रम इस संबंध में उपस्थित किया है, उस पर लेखक ने गंभीरता से अपने विचार व्यक्त किये हैं और अंत में एक वैज्ञानिक क्रम निश्चित करके नायिकाओं के लक्षण और उनके चुटीले उदाहरण उपस्थित किये हैं। यह संतोष की बात है कि उदाहरण अश्लील नहीं हैं और पुस्तक ब्रजभाषा में साहित्य के एक अभाव को पूरा करने में सफल हुई है।"

—"हिन्दुस्तान", दिल्ली.

"There is no doubt the author has made a sincere and conscientious effort to give an exhaustive exposition of the subject. We are sure the book will prove entertaining to lovers of Hindi poetry and helpful to students interested in its systematic study."

—"LEADER", *ALLAHABAD*

"आपने पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी है और निस्संदेह इससे साहित्य के विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होगा।"

—अमरनाथ झा

प्रयाग, १६-१२-४४ (वायस चांसलर—अलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

"निस्संदेह इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में आपने श्रम, शोध, निर्णय शक्ति और सहृदयता का पूर्ण उपयोग किया है।"

—केशवप्रसाद मिश्र

बनारस, २७-१२-४४ (अध्यक्ष—हिंदी विभाग, हिंदू विश्व-विद्यालय)

"नायिका निरूपण पर हिंदी में कोई स्वतंत्र पुस्तक अभी तक नहीं थी। आपने समस्त सामग्री को एक सूत्र में एकत्रित कर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का उपकार किया है।"

—धीरेन्द्र वर्मा

प्रयाग, २८-११-४४ (अध्यक्ष—हिंदी विभाग, अलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

"आपने बड़े परिश्रम से अपने विषय का प्रतिपादन किया है।....आपकी पुस्तक ने इस ओर महत्वपूर्ण सामग्री दी है।"

—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

बोलपुर, ६-१०-४६ (अध्यक्ष—हिंदी भवन, शान्ति निकेतन)

"लेखक ने इस ग्रंथ के लिखने में बहुत परिश्रम किया है। इसमें नायिकाभेद विषयक बहुमूल्य और दुष्प्राप्य सामग्री है। ग्रंथ उपयोगी है और लेखक वास्तव में बधाई का पात्र है।"

—दीनदयालु गुप्त

लखनऊ, १०-११-४८ (अध्यक्ष—हिंदी विभाग, लखनऊ विश्व विद्यालय)

बड़े आकार के ४५६ पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगी कवर, पक्की जिल्द, मू० ६)

ब्रज-साहित्य-माला सं० २

सूर-निर्णय

परिचय लेखक—डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष—हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय.

यह सूर-साहित्य की नवीनतम कृति है, जिसमें महाकवि महात्मा सूरदास के जीवन, ग्रंथ, सिद्धांत और काव्य की निर्णयात्मक समीक्षा की गयी है। लेखकों ने ब्रजभाषा साहित्य और पुष्टि संप्रदाय के धर्म ग्रंथों की कई वर्षों तक शोध करने के अनंतर इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में सूर संबंधी नवीनतम सामग्री का समावेश है, जिसे अवलोकन किये बिना किसी भी व्यक्ति का सूरदास विषयक अध्ययन पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस ग्रंथ की मान्यताओं ने हिंदी साहित्य में क्रांति उत्पन्न करदी है।

अनुसंधान, अध्ययन, आलोचना और संकलन सभी दृष्टियों से इस ग्रंथ का सूर-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रंथ पाँच बड़े-बड़े अध्यायों में समाप्त हुआ है—
१. सामग्री-निर्णय, २. चरित्र-निर्णय, ३. ग्रंथ-निर्णय, ४. सिद्धांत-निर्णय ५. काव्य-निर्णय

प्रतिष्ठित पत्र एवं विख्यात विद्वानों की सम्मतियाँ—

"हिंदी साहित्य में जहाँ तक सूर विषयक गवेषणात्मक अध्ययन एवं वाद-विवाद का प्रश्न है, 'सूर-निर्णय' का प्रकाशन एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है। सूर-साहित्य में अभिरुचि रखने वाले प्रत्येक विद्यार्थी तथा साहित्यिक के लिए इस विषय पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक से परिचित होना अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य भी है। सूर संबंधी अब तक उपलब्ध सारी सामग्री और तद्विषयक सारी चर्चा का विश्लेषण करने के साथ-साथ लेखकों ने कुछ नवीन सामग्री भी उपस्थित की है।....'सूर-निर्णय' साहित्य के क्षेत्र में एक प्रशंसनीय प्रयास है। लेखकों को विषय पर इतनी गंभीरता से विचार करने तथा उसको सर्व सुलभ बनाने के लिए बधाई है।" —"संगम", प्रयाग

"पुस्तक बहुत उपयोगी जान पड़ी। आपने सूर-साहित्य संबंधी सभी उपयोगी सामग्रियों का संकलन कर दिया है।...इस सुंदर पुस्तक के लिए आपको हार्दिक बधाई!"
—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (हिंदी भवन, शांति निकेतन, बंगाल)

"सूर-निर्णय ग्रंथ में श्री सूरदास जी से संबंध रखने वाले अनेक ज्ञातव्य विषयों पर अत्यंत गवेषणापूर्ण आलोचनात्मक विवेचन द्वारा यथेष्ट प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है, जो विद्वान लेखकद्वय के परिश्रम एवं विद्वत्ता का परिचायक है।"
—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार (साहित्य-वाचस्पति, मथुरा)

"अब तक सूरदास जी पर जो कुछ लिखा गया है, उसके पढ़ लेने पर भी आपकी पुस्तक के बिना तत्संबंधी आकांक्षा की पूर्ति न हो सकेगी। एतदर्थ अनेक धन्यवाद!"
—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र (हिंदू विश्वविद्यालय, काशी)

"सूर-निर्णय ग्रंथ लिखकर आप ने अत्यंत सराहनीय कार्य किया है। पुष्टिमार्गीय संप्रदाय की अंतरंग बातों को प्रकाश में लाकर आपने कई गुत्थियों को सुलझा दिया है। ऐसे उपयोगी ग्रंथ को प्रकाशित करने के कारण आप हम सब की बधाई के पात्र हैं।"
—श्री मुंशीराम शर्मा (डी० ए० वी० कालेज, कानपुर)

बड़े आकार के ३८० पृष्ठ, सुंदर छपाई, दुरंगी कवर, पक्की जिल्द, मूल्य ५)

पता— **अग्रवाल प्रेस, मथुरा.**